छायावादी कवियो के काव्य-चिन्तन के सन्दर्भ में उनके काव्य का अध्ययन

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

शोधकर्त्री :

श्रीमती रानी रीता त्रिपाठी

निर्देशिका :

डा० मालती तिवारी

रीडर हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

(सन् १९९३-९४)

भूमिका

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध "छायावादी कवियों का काव्य और उनका काव्य-चिन्तन" पर विस्तृत चर्चा करते हुए शोध-प्रबन्ध को विषय-वस्तु की दृष्टि से आठ अध्यायों में विभाजित किया गया है। इसमें छायावादी कवियों के काव्य और उनके दृष्टिकोण का विशेष अध्ययन किया गया है। आठ अध्यायों में वर्णित शोध-प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में "काव्य साहित्य के चिंतन की परम्परा" पर प्रकाश डाला गया है। इसके अन्तर्गत संस्कृत काव्य चिंतन व रीतिकालीन काव्य चिंतन पर विचार किया गया है। संस्कृत काव्य चिंतन की परम्परा में, संस्कृत आचार्यो में से किसी ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकारा है, तो किसी ने ध्वनि को। कोई अलंकारवादी है, तो कोई रीति को ही काव्य की आत्मा मानता है। सस्कृत काव्य शास्त्रियों के बाद रीतिकालीन काव्य परम्परा आती है। रीतिकालीन काव्य चिंतन आधुनिक और सस्कृत आचार्यो के काव्य चितन के मध्य एक ऐसा युग है, जो काव्य दारा ही काव्य चितन के क्षेत्र में प्रवेश करता है। अलंकारों, शब्द-शक्तियों और नायिका भेद आदि का ही वर्णन रीति काल में मिलता है। रीतिकालीन काव्य में काव्य का गुण तो दिखायी पड़ता है, परन्तु सामाजिक सन्दर्भो में उभरते हुए जीवन का काव्य रस नही। बिहारी, देव, पद्माकर, भूषण, केशव, मतिराम आदि इस काल के मुख्य कवि थे।

शोध-प्रबन्ध का दूसरा अध्याय "आधुनिक कवियों का काव्य-चिन्तन" है। इसमें प्रसाद के पहले व रीतिकाल के बाद के मुख्य कवि जैसे - भारतेन्दु, मिश्र-बन्धु, पद्म सिह आदि को रखा गया है। रामचन्द्र शुक्ल और दिवेदी जी उस समय के महान आलोचक हुए। उस समय समाज-चिन्तन, भक्ति-भावना और राष्ट्र-प्रेम को काव्य का मुख्य मुद्दा बनाया गया। इस काल की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय और सास्कृतिक हलचल ने विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ने में बहुत सहायता पहुँचाई। इस समय गद्य के भी माध्यम से जन-जीवन के चित्रण में सहायता मिली। सामन्ती व्यवस्था के बाद पूँजीवाद का सूत्रपात हुआ जिससे भुखमरी, सामाजिक-विषमता व असन्तोष व्याप्त हो गया। इसके फलस्वरूप भारतीयता जब व्यापक सन्दर्भ में देखी जाने लगी तभी छायावाद का उदय हुआ। छायावादी कवियों ने समाज को एक नयी दिशा प्रदान की। देश अंग्रेजों के अधीन था। फलस्वरूप कवि राष्ट्रवादी होने लगे और एक बार पूरा देश राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत दिखायी देने लगा।

शोध-प्रबन्ध का तीसरा अध्याय "प्रसाद का काव्य और उनका काव्य-चिन्तन" है प्रसाद राष्ट्रीयता को काव्य का गुण मानते हैं। उनके काव्य व नाटकों में समाज-सुधार, लौकिक-प्रेम व ढौंग, समाज में व्याप्त अन्ध विश्वास पर विशेष जोर दिया गया है। इनकी रचनाओं में छायावाद आरम्भ होकर अपनी विशालता को भी प्राप्त कर लिया है अभिव्यंजना के क्षेत्र में प्रसाद अपने अलंकार, शैली, छन्द, रस, बिम्ब व प्रतीकों में प्राचीनता से आधुनिकता की ओर उन्मुख दिखायी देते है और इनका अभिव्यंजना पक्ष विशद रूप से समन्वय युक्त है। प्रसाद की कविता एक नवीन संस्कृति और दार्शनिकता को जन्म देती है।

शोध-प्रबन्ध का चौथा अध्याय "निराला का काव्य और उनका काव्य-चिन्तन" है। निराला मुक्ति-दूत के रूप में काव्य-क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं। इनके मुक्ति आन्दोलन का उद्देश्य काव्य तक ही नही सीमित था, वे समाज को भी प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त करना चाहते थे। निराला भारतीय संस्कृति के शक्ति पक्ष को विशेष महत्व देते हैं। निराला ने अपने जीवन में सदा विरोध ही पाया, लेकिन उनके स्वाभिमान में कमी नहीं आयी। काव्य-शिल्प के अन्तर्गत इन्होंने भाषा, छन्द व अलकार पर विशेष ध्यान दिया है। इनके बिम्ब, प्रतीक व शैली पर भी छायावाद का स्पष्ट प्रभाव है। निराला मुख्यतः मुक्त छन्द के समर्थक थे। लेकिन उन्होंने अपने काव्य में अन्य छन्दों की भी अवहेलना नहीं की। इनका अभिव्यंजना पक्ष छायावादी भावना से ओत-प्रोत है।

शोध-प्रबन्ध का पंचम् अध्याय "पंत का काव्य और उनका काव्य-चिंतन" है। पंत के काव्य में पाश्चात्य कवियों की स्पष्ट छाप है। इन्होंने रोमानी प्रवृत्ति पाश्चात्य कवियों से ही ग्रहण किया है। पत को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। इनकी कविता पर प्रकृति की स्पष्ट छाप दिखायी देती है। पन्त मुख्य रूप से सौन्दर्यवादी कवि है। ये जीवन का भव्य रूप देखना चाहते हैं। ये समाज में व्याप्त कुरूपता को दूर करना चाहते हैं, लेकिन इनका विचार है कि यह तभी दूर हो सकती है, जब विश्व का प्रत्येक व्यक्ति और राष्ट्र सुसंस्कारों से सम्पन्न होकर विश्व शान्ति के लिए संलग्न हो। पल्लव की विस्तृत भूमिका में पन्त ने भाषा, शब्द-सौन्दर्य और अभिव्यंजना की प्रभाव शक्ति पर बल दिया है। ब्रज भाषा में यह सम्भव नहीं था। इसीलिए खड़ी बोली को उन्होंने काव्य में स्थान दिया। पंत ने काव्य के अन्य अंगो की अपेक्षा काव्य-शिल्प का विवेचन विशेष तौर पर किया।

शोध-प्रबन्ध का षष्ठम् अध्याय "महादेवी का काव्य और उनका काव्य-चिन्तन" है। महादेवी जीवन में आस्था और विश्वास को विशेष स्थान देती है। भारतीय दर्शन को भी ये जीवन में उपयोगी मानती हैं, तथा विश्व जीवन में एक स्वस्थ संस्कृति के निर्माण में उसे आवश्यक मानती है। इन्होंने नारी को भी प्रगति के रास्ते पर लाने का प्रयास अपने काव्य व निबन्धों तथा उपन्यासों के माध्यम से किया है। इनका काव्य वेदना-मूलक है। और इन्होंने वेदना को ही स्वीकार किया है। भाव पक्ष के अतिरिक्त इन्होंने कला पक्ष का भी विवेचन किया है। इनकी भाषा, छन्द, अलंकार, बिम्ब व प्रतीक पर छायावाद का पुष्ट प्रभाव दिखायी देता है। तथा इस क्षेत्र में अन्य छायावादी कवियों का इन्होंने अनुकरण किया है।

शोध-प्रबन्ध का सातवाँ अध्याय - "अन्य छायावादी कवियों का काव्य और उनका चिन्तन" है। इसमें उन कवियों का वर्णन है जो पूर्णतया छायावादी तो नही है, लेकिन उन पर कहीं न कहीं छायावाद का प्रभाव दिखायी पड़ता है। अन्य कवियों में मुख्य रूप से मुकुटधर पाण्डेय, माखन लाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण, नवीन, दिनकर, वियोगी, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह का नाम आता है। ये कवि स्वतंत्र चेत्ता अधिक है, विशिष्ट भाव से सलग्न कम। इनमें व्यक्तिवादिता का बोल बाला है। इन कवियों की रचनाओं में छायावाद का पूर्ण परिपाक प्रविष्ट नहीं हो पाया। इसलिए इनकी गणना अन्य कवियों में की गई है।

अष्टम् अध्याय "उपसंहार" है। उपसंहार में शोध-प्रबन्ध में स्थापित की गई मान्यताओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः छायावाद में चार प्रमुख कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी ऐसे महत्त्वपूर्ण हैं जिन्हें छायावाद के समग्र अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक लगा। इन दोनों प्रकार के कवियों के काव्य चिंतन की समीक्षा तथा उनके दृष्टिकोण पर विचार किया गया है।

शोध-प्रबन्ध का लेखन और टंकण न केवल श्रम साध्य वरन् अत्यधिक व्यय साध्य भी होता है, किन्तु जैसा कि महापुरूषों की अवधारणा है कि दृढ़ इच्छा शक्ति और प्रबल संकल्प शक्ति से दुरूहतम कार्य भी सरल हो जाते हैं। फलत· अनेक आदरणीय जनों एवं

गुरूजनों के स्नेह सहयोग एवं प्रोत्साहन तथा स्वयं के कठिन प्रयत्नों से प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का लेखन एव टंकण कार्य सम्भव हो सका।

इस सदर्भ में मैं सर्वप्रथम अपने माता-पिता की चिरऋणी हूँ, जिन्होंने मुझे सतत प्रेरणा व आशीर्वाद प्रदान कर इस योग्य बनाया। इसके बाद मैं अपनी शोध निर्देशिका आदरणीया डॉ0 {श्रीमती} मालती तिवारी, रीडर हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद की आजीवन आभारी रहूँगी, जिन्होंने अपना अमूल्य समय निकालकर इस शोध-प्रबन्ध की कतिपय त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करते हुए स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन भी प्रदान किया तथा समय-समय पर हमारा उचित मार्ग दर्शन करती रहीं। तत्पश्चात् मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे छात्रवृत्ति प्रदान कर इस कार्य को सरल बनाया। इसके अतिरिक्त मैं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग की आभारी हूँ जिनका स्नेहपूर्ण सहयोग मेरे साथ रहा। इसके अतिरिक्त मैं साहित्य-सम्मेलन इलाहाबाद, पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की आभारी हूँ, जहाँ मुझे अनेक ग्रंथों का अध्ययन करने का अवसर मिला, जिसके बिना यह शोध-प्रबन्ध पूरा नहीं हो सकता था। इसके बाद मै श्री रामआसरे पाण्डेय {श्वसुर}, की आभारी हूँ, जिनके सहयोग व प्रेरणा के बिना यह कार्य पूरा ही नहीं हो सकता था। तत्पश्चात् मैं श्री योगेन्द्र प्रसाद पाण्डेय {पति} की चिरऋणी हूँ, जिनके सहयोग का वर्णन मैं अपनी लेखनी द्वारा नहीं कर सकती। इसके अलावा मैं सत्यम्, शिवम् व शुभम् की आभारी हूँ जिन्हें बार-बार हमारे ममत्व से वंचित होना पड़ा। तत्पश्चात मैं श्री रमेश चन्द्र केशरवानी की आभारी हूँ, जिन्होंने बाहर रहते हुए भी घर जैसी रहने की व्यवस्था प्रदान की।

अत मे मै उन समस्त विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी उत्कृष्ट कृतियों का प्रयोग इस पुस्तक में किया गया है। साथ ही उन समस्त व्यक्तियों को भी हृदय से आभारी रहूँगी। जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस पुस्तक के लेखन तथा टंकण में सहयोग प्रदान किया।

मानव-सुलभ न्यूनताओं के कारण इस शोध प्रबन्ध में त्रुटि का रह जाना स्वाभाविक है, जिनके लिए मैं विदत समाज से सुझाव एवं क्षमा की प्रार्थिनी हूँ। ईश्वर के प्रति मैं श्रद्धा व नतमस्तक हूँ।

विषय सूची

छायावादी कवियों के काव्याचिंतन के संदर्भ में उनके काव्य का अध्ययन

पृष्ठ सं0

§क§ निराला का काव्य और उनकी विचारधारा ऐतिहासिक दृष्टिकोण, दार्शनिक दृष्टिकोण, सामाजिक दृष्टिकोण, राष्ट्रीय औरमानवतावादी दृष्टिकोण, आध्यात्मिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण, समकालीन कवि और निराला।

§ख§ निराला का काव्य और उनका शिल्प-विधान– काव्य-भाषा §खड़ी बोली§, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना, छन्द योजना, अलकार योजना, रस योजना।

अध्याय पाच **पंत का काव्य और उनका काव्य-चिंतन**

§क§ पत का काव्य और उनकी विचारधारा - दार्शनिक विचार, नव संस्कृति के निर्माण की चिंतना, सामाजिक विचार, प्रकृति के साहचर्य का महत्व, राष्ट्रीय और मानवतावादी दृष्टिकोण, विश्व ऐक्य की भावना, आध्यात्मिक दृष्टिकोण।

§ख§ पत का काव्य और उनका शिल्प-विधान भाषा, अलकार योजना, छन्द योजना, कल्पना, बिम्ब विधान, प्रतीक योजना।

अध्याय छ. **महादेवी का काव्य और उनका काव्य-चिंतन**

§क§ महादेवी का काव्य और उनकी विचारधारा- दार्शनिक पृष्ठाधार, आध्यात्मिक विचार, प्रकृति और गीतो का स्थान, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक दृष्टिकोण, विश्व वेदना व सामाजिक चितन।

§ख§ महादेवी का काव्य और उनका शिल्प-विधान - काव्य-भाषा, छन्द-योजना, अलंकार-योजना, प्रतीक-योजना, बिम्ब-विधान।

अध्याय - 1

हिन्दी काव्य साहित्य में काव्य-चिंतन की परम्परा

संस्कृत काव्य-चिंतन की परम्परा

कवि और समीक्षक दो भिन्न भाव भूमियों पर साहित्य सृजन करते हैं। हिन्दी आलोचना भारतेन्दु काल से ही शुरू हुई यह बात खरी नहीं उतरती। छायावादी कवियों के काव्य चिंतन के अध्ययन से पूर्व यह आवश्यक लगता है कि इस परम्परा के अतीत पर एक दृष्टि डाली जाय। यदि संस्कृत काव्य चिंतन से प्रारम्भ करें तो कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उद्‌घाटन होता है, और यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काव्य चिंतन की यह परम्परा नितान्त आधुनिक नहीं है। विभिन्न आचार्यों ने समय-समय पर काव्य के गुण-दोष तथा उसके सौन्दर्य पर विचार करते हुए महत्त्वपूर्ण स्थापनाएं की है। संस्कृत साहित्य में काव्य चिंतन के मुख्यतया पांच रूप हो गये - अलकार सम्प्रदाय, वक्रोक्ति सम्प्रदाय, रस सम्प्रदाय रीति और ध्वनि सम्प्रदाय।

अलंकार सिद्धान्त का प्रतिपादक मुख्य रूप से दण्डी, भामह, कुंतक और उद्‌भट हैं। ये विद्वान अलंकार को ही काव्य का मुख्य अंग मानते हैं। "शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से शोभित शब्द और अर्थ का समन्वय काव्य कहलाता है।"[1] दण्डी अलंकार के अन्तर्गत समग्र काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के समाहितता को स्वीकार करते हैं। इन्होंने काव्य के गुण, रस, महाकाव्य की कथा-वस्तु, विशिष्टताएं, रचनाकार के मन्तव्य नाटकीय सन्धि, वृत्ति, अन्यान्य लक्षण एवं दोषों को अलंकार की सीमा में समाहित करने का प्रयास किया है। इसी तरह कुंतक भी अलंकार को केवल एक जगह नहीं समारोपित करते वरन् उसे पूरे काव्य में समाहित करने का प्रयास करते हैं। उनकी धारणा है कि रमणीयता का अकेले में कोई अस्तित्त्व नहीं है "न शब्दस्येत रमणीयता विशिष्टस्य केवलस्य काव्य त्वम् नाप्यर्थस्येति"[2] अतः अर्थ रचना भी शब्द रचना की भाँति काव्य का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। संस्कृत काव्य शास्त्र में इसकी शुरूआत भामह से मानी जाती है। मम्मट भी अलंकार को काव्य मानते हैं। ये आचार्य गुण दोष रहित व गुण सहित शब्दार्थ को ही काव्य मानते हैं। इस प्रकार न अकेले शब्द ही काव्य है और न अर्थ ही। इस संदर्भ में डॉ० सचदेव का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है - "इन दोनों के सहित भाव का नाम काव्य है। भामह और रूद्रट भी यही धारणा स्थापित कर चुके थे। पर कुंतक ने सहित भाव को वक्रोक्ति से पुष्ट करने का निर्देश किया है, जिसके बिना शब्दार्थ का सहित भाव काव्य पद का अधिकारी नहीं बन [illegible] ा।"[3]

अतः इन अलंकार वादियों के अलंकारिक विचार को देखकर यह स्पष्ट होता है कि इन लोगों ने अलंकार सिद्धान्त को सर्वोपरि सिद्ध करने के लिए निरन्तर प्रयास किया है, तथा काव्य की समग्रता को अलंकार सिद्धान्त के अन्तर्गत् समाहित करने का प्रयास किया है। कुछ काव्यशास्त्री युग की श्रेष्ठता प्रदान करने वाले तत्त्व को भी अलंकार कहते हैं। आचार्य वामन ने अलंकारवादियों की दोनों धारणाओं के बीच सामंजस्य उपस्थिति किया है। आचार्य भोज भी "सरस्वती कंठा भरण"[4] के अन्तर्गत इस दृष्टि कोण को प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार अलंकार अर्थ रचना के स्तर पर काव्य कों चिंतन के तरफ ले जाता है। आनन्दवर्धन द्वारा अलंकार के स्वरूप का विवेचन अभिनव गुप्त तथा मम्मट द्वारा प्रचारित किया गया, इसलिए इससे मुक्त होकर इस पर चिन्तन करने की आवश्यकता अन्य आचार्यो को नहीं पड़ी। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के समर्थक आचार्य कुंतक है। आचार्य कुंतक वक्रोक्ति को ही काव्य मानते हैं। शब्दार्थ का साहित्य ही इनकी मान्यता का मुख्य आधार है। इन्होंने काव्य को वक्रता के रूप में देखा है -

शब्दार्थौ सहितौ वक्र कवि व्यापार शालिनि।
बन्ध व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लाद कारिणी।[5]

प्रस्तुत श्लोक में निम्न बातें स्पष्ट होती है - {1} शब्दार्थ मिलकर काव्य बनते है। {2} यही वक्रता व्यापार है, {3} कवि व्यापार इसी से शोभित होता है, {4} इसके एकीकरण से ही काव्य की रचना होती है। शब्दार्थ से युक्त वक्रता इन दोनों से भिन्न है, क्यों कि शब्दार्थ की सत्ता काव्य में अलग से नहीं रहती। काव्य वक्रता व्यापार से ही शोभित होता है। इसी तरह कुन्तक भी समान, सर्वगुणों की संयुक्तता से सिद्ध एक दूसरे के अन्योन्याश्रिता को काव्य मानते है। आचार्य भामह भी वक्रोक्ति को काव्य का प्रमुख आधार मानते है। काव्यालंकार में ये इसकी विवेचना करते हैं -

रूप कादिम लंकार ब्राह्याचक्षते परे[6]

इनके अनुसार काव्य की शोभा अर्थ रचना से होती है। सस्कृत काव्यों में वक्रोक्ति शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के प्रयोग से प्राचीन है।। कादम्बरी में "वक्रोक्ति निपुणेव व विलास जनेन्" शब्द का प्रयोग है। अमरूक शतक में भी इसका वर्णन मिलता है। कुन्तक ने अपनी मौलिक प्रतिभा के प्रभाव से सभी काव्य शास्त्रियों को काटते हुए "वक्रोक्ति जीवितम्" नामक ग्रन्थ के दारा जिन काव्य सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है, वे निश्चित रूप

से ग्रहण करने योग्य है। कुन्तक व्यंग्य के सौन्दर्य को ही काव्य के सौन्दर्य का मुख्य आधार मानते हैं। कुन्तक के अलावा महिम भट्ट व भोज भी वक्रोक्ति को काव्य का आधार मानते है। ये आचार्य वक्रोक्ति को अनुमान से जोड़ते है और दोनों में तारतम्य जोड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। इस सन्दर्भ में रेवा प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि - "अभेद होने पर बहुत नहीं बनेगा, क्योंकि {उस वक्र} उक्ति का कोई दूसरा प्रकार हो ही नही सकता। इसलिए ध्वनि के समान यह वक्रोक्ति की अनुमान ही क्यों नही मानी जाय।"[7]

आचार्य कुन्तक के अनुसार काव्य में वक्रोक्ति भंगिमा आवश्यक है। बिना वक्रोक्ति के काव्य में सुन्दरता आ ही नही सकती। कुन्तक काव्य चितन में वक्रोक्ति के साथ-साथ अलंकार, ध्वनि, प्रतिभा आदि को भी महत्त्व देते हैं। उनके विचार से इन तत्त्वों के बिना काव्य की रचना हो ही नहीं सकती। भामह, वामन भी इसको काव्य में मान्यता देते हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में वक्रोक्ति काव्य रचना में बहुत आवश्यक है। इसके बिना काव्य रचना निष्प्राण लगेगी।

इसके अतिरिक्त कुछ लोग रीति को ही काव्य की आत्मा स्वीकार करते हैं। इसके प्रमुख समर्थक आचार्य वामन है -

"रीति रात्मा काव्यस्य विशिष्ट पद रचना रीति"[8]

रीति सिद्धांत की प्राचीनता पर विवाद अभी भी है। परन्तु सर्वप्रथम इसका प्रयोग आचार्य वामन ने ही किया। इसके अलावा बाणभट्ट व सुबन्धु भी इसका उल्लेख करते हैं। यद्यपि बाण भट्ट चार काव्य शैलियों का उल्लेख करते है लेकिन दण्डी तक दो ही थी। इनके अनुसार उत्तर वासियों की शैली श्लेष युक्त, पश्चिम की अर्थ बोधक दक्षिण की उत्प्रेक्षा युक्त तथा गौण प्रदेश की अक्षराडम्बर से युक्त है। आचार्य भरत भी प्रवृत्ति के सन्दर्भ में इसी क्रम को बताते हैं। वे वृत्ति तथा प्रवृत्ति में अन्तर नहीं स्वीकार करते हैं। आचार्य दण्डी प्रवृत्ति के लिए मार्ग शब्द का उल्लेख करते हैं। इस विषय में डॉ० दीक्षित का यह मन्तव्य उचित प्रतीत होता है - "मार्ग शब्द निश्चित रूप से काव्य शैली के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। काव्य शैली वैशिष्ट्य के अर्थ में यह शब्द दण्डी के पूर्व अवश्य वर्तमान था।"[9] आचार्य भामह तो वैदर्भ व गौणीय पद्धति से काव्य की रचना करते है, वे पूर्णत. रचना को विशिष्ट स्थान देते है। वक्रोक्ति तथा स्वाभावोक्ति से युक्त काव्य

की चर्चा करते हुए वे आगे बढते है। इनके विचार से काव्य न तो वक्रोक्ति है, और न स्वाभावोक्ति है बल्कि यह एक तरह से भिन्न है। लेकिन यह भिन्नता कहां से शुरू होती है, इसको नहीं स्पष्ट करते है। ये वेदर्भी व गौणीय, इन्हीं दो शैलियों व मुख्य बताते है। दण्डी जिसे मार्ग बताते हैं, आचार्य वामन सबसे पहले उसे रीति की संज्ञा देते हैं। परन्तु व्यापक रूप से रीति को काव्य ही नही कहते वरन् उसकी विस्तृत विवेचन भी करते हैं - "रीवन्ति गच्छन्ति अस्यां गुणा इति।"[10] यानी जिसमें गुण प्रवेश करते हैं वह रीति है। इस तरह यदि वामन द्वारा निर्विष्ट रीति की परिभाषा दी जाय तो - "गुण वैशिष्ट्य" से युक्त पद रचना को ही रीति कहा जा सकता है। रीति को काव्य की आत्मा कहने का अर्थ है उसे काव्य का प्रधान तत्त्व मानना। आचार्य वामन ने इसका दो रूप बताया है। प्रथम वे रीति को इस तरह सिद्व करते हैं कि वह काव्य का मुख्य तत्त्व प्रतीत हो। दूसरे उन्होंने अपने युग के प्रचलित अलकार व गुण को रीति से जोड़ने का प्रयास किया है। डॉ0 सिंह के शब्दों में - "इस प्रकार गुण पर्यवसायी रीति अलंकारादि से पुष्ट प्रधान भूत तत्त्व होने के कारण काव्यात्मा है।"[11] रीति के काव्यात्मक होने के लिए दूसरा तर्क यह है कि काव्य सिद्वान्त रीति का मुखोपेक्षी है। क्योंकि वे रीति से उत्पन्न होकर उसी में समाहित होते हैं।

आचार्य रूद्रट, आनन्द वर्धन, राजशेखर कुन्तक आदि भी रीति की अवधारणा स्वीकार करते हैं। आचार्य भरत, दण्डी, भामह इसे काव्य पन्थ के ही रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य भरत तो रसोचित शब्द व्यवहार को ही वृत्ति कहते हैं। इस विषय में सिंह जी लिखते हैं - "भारती, सात्वती, कौशिकी, आरभटी नामक वृत्तियां नाट्य को उपकृत करती है।"[12] भरत तो प्रदेश के क्रम में इसे निर्दिष्ट करते हैं - मागधी, प्राच्या, अवन्तिजा, दक्षिणात्या। लेकिन वामन ने तो प्रादेशिक और भौगोलिक स्तर परउसे विवेचित किया है। इसी तरह रीति कालीन साहित्य में भी रीति की विस्तृत विवेचना है - दूलह व प्रताप साहि इसके विषय में कुछ कहते हुए दिखायी देते हैं। दूलह कहते हैं - "थोरे काल क्रम ते कहों अलंकार की रीति"। आचार्य शुक्ल भी रीति शब्द का अर्थ रीति रचना में निहित मानते हैं। इस विषय में डॉ0 योगेन्द्र सिंह लिखते हैं - "जिसने रीति काव्य की रचना की है, वही रीति कवि नहीं है, जिसका काव्य के प्रति दृष्टिकोण रीतिबद्व होवही रीति कवि है।[13]

यदि विचार किया जाय तो रीति का प्रारम्भिक सम्बन्ध शैली से ही रहा है आचार्य वामन तो इससे सम्बन्धित मत का पूर्णतया खण्डन करके इसका सम्बन्ध गुण र बताकर इसे काव्यात्मा मानते है। आचार्य रूद्रट यदि रीति को भाषा की प्रौढ़ मधुर व ललित स्वभाव बताते है तो मम्मट इसे मधुर प्रारूप व कोमल रूप में स्वीकार करते है और ध्वनि वादी आनन्द वर्धन इसे पद संघटना रूप में देखते हैं। भाषा स्वभाव के साथ-साथ शैली स्वभाव का निर्माण काव्य की मुख्य चेष्टा है। वृहत् भाषिक प्रभाव क्षेत्र को संस्कृत आचार्यो ने रीति के नाम से पुकारा है। भामह के विचार के अनुसार हम कह सकते हैं कि वामन रीति को तो काव्य की आत्मा मानते ही है, लेकिन रस, अलंकार व गुण की सहयोजना के बिना आगे नहीं बढ़ते हैं। वामन जहा काव्य में संपूर्ण धर्मो का महत्त्व स्वीकार करते हैं तथा रीति को ही काव्य की आत्मा मानते हैं, वहीं हम देख सकते है कि वामन के बाद रीति को काव्य की आत्मा मानने का विचार तिरोहित ही नहीं हो गया वरन् इसके अस्तित्त्व को ही नकार दिया गया। वामन का रीति सिद्धान्त मूलतः अपने अन्दर काव्य के सम्पूर्ण भाव को समेटे हुए है।

संस्कृत काव्य चिन्तन की परम्परा में ध्वनि सम्प्रदाय का भी वर्णन है। इसके प्रतिपादक आनन्दवर्धन है। ये ध्वनि की परिभाषा देते हैं -

"अर्थ सहृदय श्लाध्यः काव्यात्मा यो व्यवस्थितः
वाच्य प्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।[14]

उपरोक्त परिभाषा से यह स्पष्ट होता है कि आनन्दवर्धन ध्वनि में रस की मान्यता स्वीकार करते हैं; उनका विचार है कि बिना रस के काव्य सार्थकता नहीं प्राप्त करता है। ध्वनि सिद्धान्त का विभाजन करते हुए उसे वस्तु रूप अलंकार व रस के अन्तर्गत मानते हैं। इन रूपों से युक्त प्रतीय मान ही काव्यात्मा है। आनन्द वर्धन जिस ध्वनि सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, वह व्याकरण व शैव दर्शन के आधार पर ही आगे बढ़ता है। इसको अपने काव्य में स्वीकार भी करते हैं - "प्रथमों विदांसो हि वैयाकरणः। ते च श्रूयमाणेषु वर्णेसु ध्वनि रिति व्यवहरन्ति।"[15] इस तरह उन्होंने श्रूयमाण वर्णो में ही व्याकरणिक ध्वनि का व्यवहार बताया है। इन्होंने व्यवहारिक व सैद्धान्तिक दोनों ही दृष्टियों से ध्वनि को मूलाधार बताया है। ध्वनि सिद्धान्त के प्रवर्तक आनन्दवर्धन विधि व निषेध दो तत्त्वों ध्वनि विषयक मान्यता को सबके सामन ते है। ये जिस ध्वनि को प्रतिस्थापित करते

हैं , वह न लक्षणा है, न तात्पर्य/अनुमान, न रस रूप, न अलंकार्य, न अर्थोपत्ति, न अलंकार रूप। बल्कि यह सबसे भिन्न पद, वाक्य व वर्ण में ही सुन्दर लगती है। उनके अनुसार -

मुख्या महाकवि गिरामलंकृति भूतामपि,
प्रतीयमानच्छायैषा भूषा लज्जेव योषित।[16]

इस तरह ध्वनिकार आचार्य आनन्दवर्धन अलंकार के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करना चाहते थे। अलंकार की अंगभूतता के लिए आनन्दवर्धन द्वारा दिये गये तर्क निश्चित रूप से प्रभावशाली है। गुण सिद्धांत की भी यही स्थिति है। रस पर आश्रित रहने वाला गुण स्वयं स्वतन्त्र नहीं है। इसे स्पष्ट करते हुए वे लिखते है -

ये रसयाङ्गिनो धर्मा शौर्यादिव आत्मनः
उत्कर्ष हेत वह्तेस्युरचल स्थितयो गुणा·।[17]

इस तरह इनके विचार से यह स्पष्ट होता है कि रीति पद रचना के रूप में गुणों पर आश्रित होकर परोक्ष में रस को प्रकट करने के लिए परिस्थिति का निर्माण करती है। अलंकार गुण रीति के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यह काव्य प्रधान तत्त्व नहीं है। इसलिए ध्वनिकार इन्हें काव्यात्मा नहीं मानते हैं। ध्वनिवादी अलंकारों के बढ़ते हुए महत्त्व को समाप्त भी करना चाहते थे। आनन्दवर्धन इसमें सफल भी हुए। वे अलंकारों का महत्त्व तब स्वीकार करते है जब उसमें ये बातें मौजूद हो (1) रस की प्रधानता का ध्यान (2) अलंकारों का अंगी रूप में प्रयोग (3) यथावसर ग्रहण व त्याग (4) प्रयोग की अतिशयता(5)प्रयोग के आवश्यक होने पर इसे अप्रधान मानना। इस विचारधारा का तथ्य यह है कि अलंकार की महत्ता ध्वनि के अन्तर्गत तभी हो सकती है, जब वे स्वार्थ को छोड़कर उसके निमित्त प्रयुक्त हो। डॉ0 सिंह के शब्दों में - "अलंकारों का सम्बन्ध अर्थ रचना से है। अर्थ रचना के लघुतम एवं वृहत्तम स्वरूप को निर्दिष्ट करके उसे सरल, वक्र, संश्लिष्ट, सादृश्य गर्भित आदि प्रकारों को ध्वनि के अन्तर्गत समाविष्ट किया।"[18] अतः ध्वनिकार रस को ध्वनि की आत्मा मानते हैं। लेकिन यदि काव्य ध्वनि पर आधारित है तो ध्वनि की आत्मा रस ही है। इस सम्प्रदाय के ध्वनिकार आचार्य अभिनव गुप्त भी इसका नवीनीकरण करते हैं। इन्होंने सभी विवादों को समाप्त करके ध्वनि को प्रतिष्ठित किया है।

अब हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते है कि ध्वनिकार ने सभी सिद्धान्तों को समावेशित करके जिस ध्वनि सिद्धांत को प्रतिष्ठित किया है, उसमें उचित सार्थकता देखने को मिलती है। इस प्रकार इन आचार्यो ने ध्वनि को काव्य का मूलाधार बताया है। अतः ध्वनि में न केवल सपूर्ण काव्य सिद्धात अपितु काव्य रूप आदि सम्मिलित है।

संस्कृत काव्य-चिंतन की परम्परा में कुछ विद्वान रस को ही काव्य की आत्मा मानते हैं। इसमें प्रमुख भरत व आचार्य विश्वनाथ है। यह सम्प्रदाय सबसे ज्यादा प्रभावशाली रहा। भट्टलोल्लट , शंकुक और अभिनव ने भी इसकी विस्तृत व्याख्याए प्रस्तुत की है। पंडित राज जगन्नाथ व विश्वनाथ, रस का विवेचन जिस दृष्टि से करते हैं, यह उनकी रस के प्रति आसक्ति है। आचार्य भरत नाट्य शास्त्र मे, वक्रोक्तिकार वक्रोक्ति विवेचन में, रूद्रट अलंकार में, ध्वनिकार ध्वनि विवेचन में, वामन रीति विवेचन में रस की महत्ता स्वीकार करते हैं। आचार्य भरत रस को काव्य का मुख्य आधार बताते हुए कहते हैं -

"न हि रसादृते कश्चितदर्थः प्रवर्तते"[19]

यानी भरत मुनि काव्य में रस के अतिरिक्त कोई प्रयोजन ही नहीं स्वीकार करते। इनके अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय के आचार्य केवल मानते ही नहीं, वरन् रस को काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार करते हैं। आचार्य कुन्तक भी इसकी महत्ता को स्वीकार करते हैं। इस विषय में डॉ0 नगेन्द्र लिखते हैं कि - "कुन्तक के अनुसार काव्य वक्रोक्ति अर्थात कला है। इस कला की रचना के लिए कवि शब्द अर्थ की अनेक विभूतियों का उपयोग करता है। अर्थ की विभूतियों में सबसे अधिक मूल्यवान रस है। अतएव रस वक्रोक्ति रूपिणी काव्य का परम तत्त्व है।"[20] आचार्य भरत नाट्य शास्त्र में रस विषयक सामग्री का ब्यौरा छठवें व सातवें अध्याय में देते है। इसके महत्त्व का सम्पादन इन शब्दों में करते हैं -

सत्व प्रयोजितों हार्यो प्रयोगोऽत्र विराजते,

येत्वेते सात्विका भावा नानाभिनयं संश्रिताः।

रसेष्वेतेषु सर्वैतेज्ञेया नाट्य प्रयोक्तृभिः।[21]

आचार्य भोज भी रस को काव्य की आत्मा स्वीकार करते है। "श्रृंगार प्रकाश" इसका प्रमुख उदाहरण है। भोज तो श्रृंगार को सभी रसों का अंगी स्वीकार करते हैं। रस-सिद्धांत यद्यपि काव्य का केन्द्रीय आधार है फिर भी यह विविध क्षेत्रों में विवादास्पद है। इसकी मुख्य समस्या भाव विवेचन की है। आचार्य भरत भाव शब्द का प्रयोग भावित अर्थ में करते हैं।

परन्तु हमारे विचार से काव्य के सभी तत्त्व मिलकर पाठक को जिस तरह भाव विभोर करते हैं, वही रस है, वही काव्यात्मा है। विश्वनाथ, मम्मट व पंडित राज जगन्नाथ इसके स्वरूप की जो चर्चा करते है वह मूलतः ब्रह्मानन्द सहोदर के रूप में दिखायी पड़ता है। इसलिए इनकी विवेचना उचित दिखायी देती है।

संस्कृत-काव्य-चिंतन की परम्परा में इन पाँच सम्प्रदायों के अलावा संस्कृत आचार्यों ने गुण-सिद्धान्त पर भी प्रकाश डाला है। आचार्य दण्डी की गुण विषयक धारणा अधिक विकसित व परिपक्व है। कुछ विद्वानों ने तो दण्डी को ही गुण-सिद्धान्त का प्रतिपादक माना है। इन्होंने अलंकार, रस, रीति, की विवेचना करते हुए उसकी मूलात्मा में गुण को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। इस मार्ग को परिभाषित करते हुए लिखते है -

इति वैदर्भ मार्गस्य प्राणा दशगुणाः स्मृताः
एषां विपर्ययः प्रायो दृश्यते काव्यवर्त्मनि।[22]

काव्य में शोभा कारक धर्म अलंकार के रूप में प्रतिष्ठित होते है। आचार्य दण्डी शोभाकार धर्म को काव्य के भाषिक गुणों के रूप में देखते है। भरत, भामह, वामन आदि भी इसकी विवेचना करते हैं।

गुण विहीन अलंकृत होता हुआ भी सुन्दर नहीं होता। जो काव्य में महती शोभा उत्पन्न करता है, वही गुण है। गुण काव्य के अन्य तत्त्वों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण है। इसलिए काव्य गुणों के बिना काव्य भाषा की कल्पना करना सभव नही है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सभी आचार्यों का मत काव्य चिंतन की दृष्टि से अलग-अलग है और काव्य चिंतन की यह परम्परा नयी नहीं है बल्कि संस्कृत आचार्यो ने ही अपने मत से इस पर सोचना आरम्भ कर दिया था और यही आगे चलकर आधुनिक काव्य चिंतन में आलोचना के रूप में विकसित हुई। किन्तु इससे पूर्व हमें एक सामान्य सा परिचय रीति कालीन काव्य का भी पाना जरूरी है। क्यों कि आधुनिक और संस्कृत के आचार्यो के काव्य चिंतन के मध्य यह एक ऐसा युग है जो कही न कही हमें सोचने पर बाध्य कर रहा है।

रीतिकालीन काव्य-चिंतन की परम्परा

काव्य चिंतन की परम्परा में हमारी दृष्टि रीतिकाल से पहले भक्ति काल पर जाती है। भक्ति काल के प्रायः सभी कवियों की रचनाओं में भक्ति के साथ-साथ उस समय के देश, काल, परिस्थिति और समाज का चित्रण भी दिखायी पड़ता है। भक्ति कालीन साहित्य जनता का साहित्य है। सन्त कवि भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते है। क्योंकि इन कवियों की सामाजिक चेतना बहुत तीव्र थी। सन्त साहित्य में भक्ति तत्व विशेष प्रबल हैं जो हमे जगह-जगह पर यह उपदेश देता है कि संसार असार और शरीर क्षण भंगुर है और सांसारिक सुख तुच्छ है। सासारिक जीवन तो धूएँ के महल के समान नष्ट हो जाता है। कबीर दास जी इस विषय में लिखते हैं -

कबीर हरि की भगति बिनु, ध्रिग जीमण ससार।
धूँवा केरा धोल हर, जात न लागे बार।।[23]

कबीरदास बार-बार हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक ईश्वर की सत्ता मानते है और उनमें भाई-चारा पैदा करने के लिए अपने काव्य के माध्यम से शिक्षा देते हैं -

हमारे राम रहीम करीमा केसे, अलह, राम सहि सोई
विसमिल मेरि विसम्भर एकै और न दूजा कोई।[24]

इसी तरह कबीरदास जी अपने काव्य के माध्यम से ढोग, आडम्बर, जाँति-पाँति का डट कर विरोध करते है। कृष्ण-मार्गी शाखा मे सूरदास जी अपने काव्य में परिभाषा भेद आदि तो नही लिखते लेकिन सूरसागर में भक्ति का भेद देखने को मिलता है। सूरदास जी भक्ति को एक कहते हुए अनेक भेद वाली कहा है -

भक्ति एक पुलि बहु विधि होई।
ताके शत्रु मित्र नही कोई।[25]

कृष्ण-भक्ति काव्य में जाँति पाँति का भेद-भाव तथा पूजा-उपासना से सम्बन्धित ढोंगो पर कवियों का ध्यान नहीं गया है। पति-पुत्र, माता तथा पिता आदि जो सांसारिक सम्बन्ध है उन सब का खण्डन करते हुए एक मात्र भगवान को ही प्रसन्न रखने के लिए तत्पर रहते है। मीरा लिखती हैं -

राणां जी रूठयो बांरो देस रखासी

हरि रूठयो कुम्हलास्यां हो माई।[26]

इसका मतलब यह नहीं है कि कृष्ण काव्य के कवियों ने अनाचार को बढ़ावा दिया। मीरा के अनुसार आचरण मर्यादित और लोक मर्यादा के अनुसार रखने मे ही जीव का कल्याण सम्भव है -

छैल विराणो लाख को हैं अपणे काज न होई

बांके सग सीधा रता है भला न कहसी कोई।[27]

कृष्ण भक्ति काल के कवियों ‖सूर, मीरा आदि‖ का योगदान सांस्कृतिक जीवन से भी बहुत है। वसंत, होली आदि उत्सवों पर इन कवियों ने अपने वाणी के माध्यम से खुलकर साथ दिया है -

होरी खेलत हैं गिरधारी[28]

तुलसीदास भक्ति काल के कवियों में सबसे ज्यादा लोक- मगल की भावना रखते है। तुलसी भी समाज के विविध पहलुओ पर विचार करते हुए दिखायी देते हैं। इसके साथ-साथ वे काव्य और भाषा के विषय में भी कही-कही मुखर होते हैं। उनके अनुसार कविता गंगा के समान होनी चाहिए जो सबका हित करे, ताकि कहीं एक पहलू को प्रकाशित न करें -

कीरति भनिति भूत भल सोई

सुरसरि सम सब कर हित होई।[29]

तुलसीदास भी भक्ति को मुख्य तत्व बताते है। उनके अनुसार चण्डाल उत्तम है जो राम को भजता है -

तुलसी भगत सुपच भलो भजे रैनि दिन राम,

ऊँचों कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम।[30]

इसी तरह इन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, धर्म आदि विविध पहलुओं पर अपना विचार प्रकट किया है और अपने काव्य के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर जमकर प्रहार किया है। और एक आदर्श की शिक्षा देते हैं।

परन्तु उस काल के कवियों ने अपने काव्य की विवेचना स्वय नही की है यह पाठक पर निर्भर था कि उसके उचित, अनुचित, सत्य-असत्य का बोध करे। तुलसीदास जी रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में पूरे रामचरित मानस की प्रासगिकता को सिद्ध करते है। लेकिन भक्ति काल के कवियों का काव्य आत्म प्रेरणा का फल है। अतः यह स्वामिन सुखाय न होकर स्वान्तः सुखाय अथवा सर्वान्तः सुखाय सिद्ध हुआ। इन कवियों का साहित्य निश्छल आत्माभिव्यक्ति है, जिसमें सत्य, उल्लास आनन्द और युग निर्माणकारी प्रेरणा है। आदि काल और रीति काल भक्तिकालीन साहित्य की तुलना में आगे नहीं जा सकता। आधुनिक काल का साहित्य अपनी व्यापकता और विविधता की दृष्टि से भक्ति काल के साहित्य की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा जा सकता है, लेकिन अनुभूति की गहनता व भाव की विशालता के क्षेत्र में वह पीछे ही छूट जाता है। भक्ति काल का काव्य जहां उच्चतम धर्म की व्याख्या करता है वही उसमे उच्चकोटि के काव्य व दर्शन की झलक दिखायी देती है। यह काव्य एक साथ हृदय मन और आत्मा को शान्ति प्रदान करता है। भारतीय काव्य जगत तुलसी के द्वारा अभूतपूर्व महिमा से गर्वित है। सूर के काव्य में भक्ति कविता और सगीत एक साथ दिखायी देती है। कबीर, जायसी, मीरा, रसखान, नन्ददास, नानक आदि की कृतियों पर हिन्दी साहित्य विश्व के सामने गर्व कर सकता है। क्योंकि भक्ति काल शाश्वत व विश्व का कल्याण करने वाला है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति और सभ्यता, आचार और विचार सभी कुछ भक्ति काव्य में दिखायी पड़ते हैं। रीतिकालीन भारतीय संस्कृति के सम्यक जानकारी के लिए भक्ति का अध्ययन अनिवार्य है। आधुनिक भारतीय धर्म और सस्कृति तुलसी निर्मित है। क्योंकि तुलसी का मानस नाना पुराण निगमागम का सार है। मेरे विचार में भक्ति काल का समूचा साहित्य समन्वय की विराट चेष्टा है। निर्गुणवादी कबीर व जायसी ने अपने-अपने माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता के लिए भरसक प्रयत्न किया है। यह साहित्य कविता सम्बन्धी दृष्टिकोण काव्य सौष्ठव, भाव पक्ष और कला पक्ष, संगीत, भिन्न काव्य रूपों, लोक मंगल और भाषा भारतीय संस्कृति और सभ्यता सभी दृष्टियों में सर्वोत्तम है। लेकिन उस काल के कवियों ने जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को इतना बल दे दिया कि भौतिक पक्ष उपेक्षित हो गया। इसके अलावा गद्य काव्य के विविध रूपो उपन्यास, नाटक, कहानी, निबन्ध, आलोचना और एकांकी आदि का सर्वथा अभाव है। इसलिए इसमें साहित्य के विविध रूपों की व्यापकता और विविधता नहीं आ सकी। इसलिए कविता के क्षेत्र में यह हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-युग तो है। लेकिन गद्य व पद्य दोनों की उच्चता व्यापकता और गहनता के क्षेत्र मे आधुनिक

हिन्दी साहित्य में साहित्यशास्त्र की चर्चा कृपाराम §1598§ से प्रारम्भ होती है, किन्तु काव्य के सभी अंगो का शास्त्रीय विवेचन आचार्य केशव ने ही किया। आचार्य केशव के बाद लगभग पचास वर्षो तक शास्त्रीय निरूपण की यह पद्धति शुष्क रही फिर से धारा के रूप में बहकर पूरे रीतिकाल तक चलती रही। हिन्दी में रीति का प्रयोग प्रायः लक्षण ग्रंथों के लिए होता है। रीति कालीन कवि रचना अथवा बाह्याकार को ही काव्य का सर्वस्व मानते हैं। रीतिकाल में अनेक कवियों ने प्रायः शुरू से ही काव्य की रीति, अलंकार रीति व कविता रीति आदि का प्रयोग किया है। रीति कालीन कविता रईसों व राजाओं के आश्रय मे ही विकसित हुई। ये रईस व राजा अधिकतर हिन्दू रीति-रिवाजों से मिले जुले हिन्दी रसिक मुसलमान थे और रीतिकालीन कविता का सम्पूर्ण गौरव इनकी काव्य कला पर ही था। उस समय की कविता में आत्मा की काँपती हुई आवाज दिखायी ही नही देती है। कविता मे काव्य लक्षण, काव्य प्रयोजन, रस भाव, ध्वनि नायक, अलंकार, रीति गुण-दोषो आदि का यथोचित निरूपण किया गया है। इन तत्वों के विषय में देव, प्रताप, साही, केशव, पद्माकर आदि कवियों ने कही न कहीं अपने काव्य में कुछ न कुछ जरूर कहा है। श्रीपति व दास को भी हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान था। श्रीपति ने केशव को उदाहरण देकर दोषों को स्पष्ट किया है। केशव अलंकारों पर ही इतना ज्यादा जोर देते हैं कि इनका काव्य दुरूह लगने लगता है। ये लोग प्रायः श्रृगार रस को मुख्य मानते हैं। श्रृगार वर्णन की महत्ता केशव किस तरह देते हैं -

सबको केशव दास है हरिनायक श्रृंगार[31]

रीति काल का प्रतिनिधित्व ये ही कवि करते हैं। इनकी पद्धति तर्क-सिद्ध न होकर रस सिद्ध है। केशव आदि रीति कालीन आचार्यो ने अपने रीति ग्रन्थों में चित्र काव्य का विवेचन किया है। केशव रीति काल के पहले आचार्य हैं, जिन्होने काव्य रीति के प्रति सचेत होकर विभिन्न अंगों का गम्भीर व पांडित्य पूर्ण विवेचन किया है। रीतिकालीन कवियो में केशव ही एक ऐसे कवि है जिन्होंने विचारपूर्वक सस्कृत रीति काव्य परम्परा को हिन्दी में अवतरित किया और अपने व्यवहार से भी उसे वॉछित बनाया। संस्कृत के आचार्यों की तरह इन लोगों में किसी ने §कुलपति§ ध्वनि को आत्मा कहा है तो किसी §दास§ ने रस व अलंकार को महत्व दिया है प्रताप साहि व बिहारी ध्वनि वादी थे। घनानन्द, ठाकुर, नेवाज, बोधा और देव

आदि रस वादी थे।

रीतिकालीन कवि ने अपनी काव्य अभिव्यक्ति के लिए उक्तियों का विशेष रूप से प्रयोग किया है। बिहारी सतसई इसका सटीक उदाहरण है। क्योंकि बिहारी अपनी कविता द्वारा ही मिर्जा राजा जय सिंह को जागृत करते हैं -

> नहीं पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल,
> अली कली ही सो विधो, आगे कौन हवाल।[32]

बिहारी के मुक्तकों में भाव और कला दोनों पक्षों का सुन्दर योग हुआ है। बिहारी ने ऐसे सरस सन्दर्भो को ग्रहण किया है जो पाठकों को रस मग्न बना देते है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि रीतिकाल तक भारतीय आलोचना का रूप ज्यादातर सैद्धान्तिक रहा। सिद्धान्त-निरूपण में भी युग और समाज के बदलते हुए रूपों तथा भावों के साथ-साथ बदली हुई साहित्यिक विषय वस्तुओं और शैलियोंको आधार मानकरसाहित्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का ही खण्डन और मण्डन चलता आ रहा था। इन सिद्धान्तों में गतिशीलता स्थिरता व रूढिबद्धता थी। व्यावहारिक आलोचना का मार्ग प्रशस्त नहीं था। कवि शास्त्रीय मार्ग से कहीं भी विचलित हुआ कि दोष का भागी हो जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की बंधी-बंधाई आलोचना मे किसी कवि की अर्न्तवृत्तियों की छानबीन उसकी कविता में सामाजिक विकास के कारण आये हुए नये युग सत्यों, नई समस्याओं और इस प्रतिक्रियाओ की परीक्षा के उपरान्त उसकी कृतियों का मूल्याकन असम्भव था।

रीतिकालीन काव्य व काव्यशास्त्र मे पुस्तकीय रस रह गया था। जीवन काव्य का सामाजिक रूप से कोई रस नही था। हिन्दी नवरत्न में मिश्र बन्धु (1) तुलसीदास (2) सूरदास (3) देव (4) बिहारी लाल (5) त्रिपाठी बन्धु भूषण और मतिराम (6) केशवदास (7) कबीर दास (8) चन्द वरदाई (9) हरिश्चन्द्र को हिन्दी नवरत्न की संज्ञा देते हैं। मिश्र बन्धु हिन्दी नवरत्न में वह सारी सामग्री देते हैं जो आलोचक व इतिहाकार के लिए आवश्यक था। उन्हें रीतिकालीन काव्य शास्त्र का [illegible] ज्ञान था। "स्याम गोर किमि कहौ बखानी, गिरा अनैन नैन बिनु बानी।" की आल[illegible] इस प्रकार करते है - "इस छन्द

में क्या ही बढ़िया भाव, कितने कम शब्दों में व्यक्त किया गया है नन्ददास ने भी यही भाव कहा है यथा - नेन के नहि बेन, बेन के नेन नहीं है।[33]

कालान्तर में जो प्रवृत्ति तुलनात्मक आलोचना के नाम से विख्यात हुई उसके जन्म दाता इन्हीं को कहना चाहिए। मिश्रबन्धु बिहारी के कविता का विश्लेषण करते हुए कहते हैं - "इन्होंने शब्दों को बहुत तोड़ा मरोड़ा है और इनकी शब्द सम्बन्धी निरकुंशता प्रशंसनीय नहीं है। तुकान्त के लिए इन्होंने शब्द मरोड़े है।"[34] फिर कवियों का अवलोकन करते हुए ये कहतें है कि - "कुल बात सोचकर हम बिहारी को एक बड़ा सत्कवि समझते है। तुलसीदास, सूर, देव को छोड़कर यह महाशय हिन्दी के सर्वोत्कृष्ठ कवि है।"[35] इस प्रकार "मिश्र जी ने केशव, बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर के साथ-साथ तुलसी व सूर को भी श्रृंगारी कवियों की कोटि में रखा है। लेकिन देव व बिहारी इसके नेता है।"[36]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकाल पूरी तरह से आलोचना से परे था। इसके बाद कवियों ने थोड़ा बहुत स्वयं अपने विषय में कहना शुरू किया। फिर साहित्य को देखने व समझने की दृष्टि बदली तो उसके मूल्यांकन का भी ढाँचा बदल गया। और हिन्दी आलोचना में युगान्तर उपस्थिति हुआ। "जन समूह के हृदय की भावनाओं का आग्रह करके ही हिन्दी की आलोचना रीति कालीन केंचुल उतारकर आधुनिक बनी।[37] उस युगान्तर की विशेषता बताते हुए डॉ0 नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा है - "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से स्थिति मे परिवर्तन हो चला। आँखे खुली और यह आभासित हुआ कि रस किसी छन्द में नहीं है, वह तो मानव संवेदना विस्तार मे है। नायक-नायिका कवि जी की कल्पनाएँ निर्माण होने के लिए नहीं है, प्रगतिशील संसार की नाना विध परिस्थितियों और सुख दुःख की तरंगो में डूबते-उतराने और घुलकर निखरने के लिए है और काव्य कला का सौष्ठव भी अनुभूति की गहराई में शब्द कोश के पन्ने पलटने मे नहीं।[38] इस प्रकार आधुनिक काव्य चिंतन की परम्परा का विकास हुआ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	रचनाकार		पृ0 सं0
1·	काव्य का स्वरूप	सचदेव चौधरी		42
2·	वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तक		24
3·	काव्य का स्वरूप	डॉ0 सचदेव चौधरी		48
4·	"तत्र काव्य शोभा करा नित्येन श्लेषोपमा वद् गुण रसभावतदाभास प्रशया दीनप्युप गृहणति"			
	भारतीय काव्य शास्त्र	योगेन्द्र प्रताप सिंह		169
5	वक्रोक्ति जीवितम	आचार्य कुन्तक		
6·	काव्यालकार	भामह		
7·	व्यक्ति विवेक	रेखा प्रसाद द्विवेदी		143-44
8·	काव्यालंकार सूत्र	आचार्य वामन		
9·	भारत और भारतीय नाट्यशास्त्र	डॉ0 सुरेन्द्र नाथ दीक्षित		265
10	काव्यालंकार सूत्र	आचार्य वामन		1/9
11·	भारतीय काव्यशास्त्र	डा0 योगेन्द्र सिंह		157
12·	भारतीय काव्य शास्त्र	"		35
13	"	"		39
14·	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन		1/1
15·	"	"		1
16·	"	"		3-37
17	"	"		2-5
18·	भारतीय काव्यशास्त्र	डा0 योगेन्द्र सिंह		250
19··	नाट्यशास्त्र	भरत		2/3
20·	रस सिद्धान्त	डा0 योगेन्द्र प्रताप सिंह		51
21·	नाट्यशास्त्र	भरत		6/8
22·	काव्यादर्श	दण्डी		2/5
23·	कबीर ग्रंथावली	स0 पारसनाथ	पद	26
24·	कबीर ग्रंथावली	"	पद	58

25·	सूरसागर	सं0 नन्द दुलारे	3/394
26	मीराबाई की पदावली	सं0 परशुराम चतुर्वेदी	35
27·	"	"	26
28·	"	"	175
29·	रामचरित मानस	तुलसीदास	26
30·	रामचरित मानस	तुलसीदास	55
31	रसिक प्रिया	केशव	20
32·	बिहारी सतसई	बिहारी	33
33·	हिन्दी नवरत्न	मिश्र बन्धु	147
34·	"	"	147
35	"	"	265-66
36	"	"	82
37·	हिन्दी आलोचना	डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी	17
38·	हिन्दी साहित्य; बींसवी शताब्दी	नन्द दुलारे बाजपेयी	56

अध्याय - 2

खड़ी बोली के आधुनिक कवियों का काव्य-चिंतन

पृष्ठभूमि

आलोचना की कुछ समस्याओं को समझने व सुलझाने के पहले यह जान लेना आवश्यक हो जाता है कि आलोचना का साहित्य मे क्या स्थान है। आलोचना में साहित्यकार सीधे जिन्दगी से प्रेरणा लेता है। आलोचना के विकास पर यदि शुरू से लेकर आज तक हम दृष्टिपात करे तो हम पाते है कि सस्कृत काव्य-चिंतन की परम्परा के बाद काव्य चितन के इतिहास में काफी अन्तराल आया। सस्कृत काव्य-चिंतन के बाद वीरगाथा व भक्ति काल इससे बिल्कुल अछूता रहा। वीर गाथा काल ऐसा युग था जब राजा महाराजा आपसी फूट से पीड़ित थे। फलस्वरूप राजकवियों का उदय हुआ जो युद्ध में प्रशंसा करते थे। उस समय श्रृंगारिकता का बोल बाला था, इसलिए श्रृगारिक रचनाए होने लगी। फिर एक के बाद एक मुसलमानो के आक्रमण होने लगा, जिससे भारतीय जनता त्राहि-त्राहि हो उठी। ऐसे समय में कवियों का ध्यान कृष्ण व राम के बाल लीला वर्णन से ओत-प्रोत होने लगा और भक्ति रसपूर्ण रचनाएँ होने लगी। उस समय सामाजिक परिवेश ऐसा था कि किसी भी कवि को अपने विषय या किसी के ऊपर टीका-टिप्पणी करने का विचार ही नही उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे भक्ति काल व्यतीत हुआ और अंग्रेजो का साम्राज्य उदय हुआ। 1857, भारतीय राष्ट्रीय क्षितिज पर ही नही साहित्य के क्षितिज पर भी अपनी अमिट छाप छोड़ता हुआ दिखायी देती है। जहा से साहित्य की वस्तु, शिल्प और भाषा में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ, फिर चिंतन की प्रक्रिया भारतेन्दु युग से प्रारम्भ हुई। भारतेन्दु कवि, निबन्धकार, नाटककार के रूप में सामने आये। वीरगाथा काल के अपभ्रंश, डिंगल, भस भाषा के बाद भक्ति काल में अवधी, ब्रज आदि का विकास हुआ फिर खड़ी बोली का उदय हुआ। और आधुनिक कवियों के काव्य चिंतन की परम्परा आरम्भ हुई।

सामाजिक सुधारों का आन्दोलन युग के प्रारम्भ में ही शुरू हो गया था। "आर्य समाज का आन्दोलन अपने अतीत के महापुरूषों देवियो और गौरव गाथाओं को नये प्रकाश में लाकर एक ओर तो वर्तमान रूढियों और भेदभावों का उन्मूलन कर रहा था दूसरी ओर अग्रेजी सभ्यता की चकाचौंध में बेहोश हो जाने वालों की भी खबर ले रहा था।"[1] इस काल

मे सामाजिक सुधार की भावना विशेष रूप से परिलक्षित होती है। भारतेन्दु ने जिस राष्ट्रीय भावना का उन्मेष किया था, उससे और अधिक सामाजिक उत्थान का भाव जागरूक हुआ। भारतेन्दु युग की मुख्य चितना सामाजिक उपयोगिता थी। इस युग के राजनीतिक और सामाजिक नेताओं के सुधारवादी आंदोलनों के साथ इस युग के साहित्यिक नेता भी देश और समाज के पुनरूत्थान के लिए व्यग्र हो उठे। लेखकों के सामने रीतिकालीन साहित्य का अतीत पड़ा था जो रह रहकर उन्हें पीड़ा पहुँचा रहा था क्योंकि उसमे केवल वासना और कामुकता की छाप ही दिखाई पड़ रही थी। परन्तु अब मुख्य चिन्ता का विषय देश व समाज का उद्धार करना था। इसलिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता हुई जो देश के युवकों को बलिदान और त्याग का पाठ पढ़ा सके। हमारे देश की स्त्रियों को घरों की चहार दीवारी से निकाल कर वीरागना बना सके। इसलिए इस काल में इस प्रकार के साहित्य की रचना होने लगी। दूसरी तरफ भारतेन्दु उस समय के प्रशासन के चाटुकारिता पर करारा व्यग्य करते हैं। भारतेन्दु एक आलोचक के रूप मे उभरे। भारतेन्दु युग में कई साहित्यिक विधाओं का नवीनीकरण हुआ। आलोचना इसमें से मुख्य विधा थी। भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग की रचना करते है। इस विषय में रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं - "उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नये मार्ग पर खड़ा किया। वे साहित्य के नये युग के प्रवर्तक हुए। यद्यपि देश में नये-नये विचारों और भावनाओं का संचार हो गया था, पर हिन्दी उससे दूर थी। लोगो की अभिरूचि बदल गयी थी, पर हमारे साहित्य पर उसका कोई प्रभाव नही दिखाई पड़ता था। शिक्षित लोगो के विचारों और व्यापारों ने तो दूसरा मार्ग पकड़ लिया था, पर उनका साहित्य उसी पुराने मार्ग पर था। वे लोग समय के साथ आप तो कुछ आगे बढ़ आये थे, पर जल्दी मे अपने साहित्य को साथ न ले सके थे।"[2]

नये काव्य के चिंतन की आवश्यकता इसलिए महसूस हुई कि युगानुकूल सहृदयों की रूचि, सस्कार और रीति नीति बदला करती है। नये युग के सहृदयों को आनन्द देने के लिए उनकी रूचि के अनुकूल नये तत्वों को ग्रहण करना ही पड़ता है। भारतेन्दु अपने समय के सामाजिक परिवेश पर विचार करते हुए दिखाई देते हैं - "किन्तु वर्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगो की रूचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है।"[3] आरम्भ काल में तो पत्र-पत्रिकाओं की सपादकीय टिप्पणियों प्राप्ति स्वीकारों और यदा कदा सपादक के नाम पत्रों के ही रूप में आलोचना दिखाई देती है। सर्वप्रथम

आनन्द कादम्बिनी में प्रेमघन जी बाणभट्ट के विषय मे कुछ कहते हुए दिखाई देते हैं। श्री बाण भट्ट के कादम्बरी को कौन ऐसा सस्कृत विद्वान होगा जो इसके अध्ययन को पूरा करने के बाद यह न कहे कि यह अपने मे विशेष महानता का सूचक है। ऐसा गद्य सस्कृत भाषा को कौन कहे किसी अन्य भाषा में नही लिखा गया। "इसमें न तो कल्पना का अत मालूम होता जिससे सूचित होता कि उस कवि का विषय वर्णन करने से तृप्ति नही होती थी और अनूठापन ऐसा कि कोई कह नही सकता कि यह अमुक कवि की छाया है।"[4]

उक्त उद्धरणों को देखने से पता चल रहा है कि उसी समय से काव्य चिंतन की परम्परा का प्रारम्भ हो चुका था किन्तु नवीन स्वर को पूर्णतया समझने के कारण मत वैभिन्नय हो गया। हिन्दी आलोचना मे इन राष्ट्रीय स्तर की समस्याओं के चलते एक युगान्तर उपस्थित हुआ। इस युगान्तर की विशेषता बताते हुए आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने लिखा है - "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से स्थिति मे परिवर्तन हो चला और यह आभासित हुआ कि रस किसी छन्द में नही है, वह तो मानव संवेदना के विस्तार में है। नायक-नायिका कवि जी की कल्पना मे निर्माण होने के लिए नहीं है, प्रगतिशील ससार की नानाविध परिस्थितियों और सुख-दुख की तरंगों में डूबने-उतराने और घुलकर निखरने के लिए हैं और काव्य कला का सौष्ठव की अनुभूति की गहराई मे है, शब्दकोश के पन्ने पलटने मे नही।"[5] पं0 बालकृष्ण भट्ट में "सयोगिता स्वयवर" की आलोचना करते समय इस बात पर बल दिया है कि - किसी समय के लोगो के हृदय की क्या दशा थी और स्प्रीट ऑफ टाइम क्या थे इनका पता लगाए बगैर ऐतिहासिक कथानको का उपयोग साहित्य रचना में नहीं किया जा सकता।"[6]

प्रेमघन ने भारतेन्दु के कार्य को आगे बढाने में सहयोग दिया भारतेन्दु ने नाटक पर एक लेख लिखकर हिन्दी मे आलोचना का सूत्रपात किया। हिन्दी आलोचना का जन्म भारतेन्दु जी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इसी समीक्षा से हुआ। इन लोगों की यह आलोचना सामाजिकता से अत्यन्त गहराई से लिपटी है। भारतेन्दु के अतिरिक्त इस काल में प्रेमघन बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र के लेखों मे आलोचना का रूप देखा जा सकता है। भारतेन्दु द्वारा स्थापित आलोचना को प्रेमघन और भट्ट ने विकसित किया। भट्ट जी

की शैली सरस, भावपूर्ण व व्यंगात्मक है। लेकिन भारतेन्दु युग में आलोचना का समुचित विकास नहीं हो पाया क्योंकि उस समय आलोचक हिन्दी की प्रतिष्ठा या ब्रज भाषा और खड़ी बोली के विवाद को सुलझाने में लगे रहे। आगे चलकर आलोचना का अपना स्वरूप अधिकाधिक स्पष्ट हुआ। यह कार्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और इनके युग के लेखकों द्वारा हुआ।

भारतेन्दु युग के लेखकों के साहित्य में सहृदयता और जीवन्तता दिखायी देती है तो द्विवेदी युग के साहित्य पर उपयोगिता व कर्त्तव्यपरायणता की छाप है। उनका प्रभाव साहित्य के सभी पहलुओं पर पड़ा। द्विवेदी अपने युग के अग्रगण्य आलोचक थे। अतः उनमें समीक्षा के सभी रूपों का विद्यमान रहना स्वाभाविक है। इन्होंने विक्रमांक देव चरित चर्चा, "**नैषध चरित चर्चा**", "कालीदास की निरंकुशता" जैसे बड़े-बड़े निबंध लिखकर प्राचीन कवियों की कृतियों की समीक्षा का सूत्रपात किया। जब डॉ0 बूलर, डॉ0 ग्रियर्सन, डॉ0 जैकोबी जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय साहित्यकारों की जीवनियों के सम्बन्ध में अन्वेषण शुरू किया तो भारतीय विद्वान व साहित्यिक संस्थाओं ने भी गंभीरता से विचार किया। आचार्य द्विवेदी अपने लेख में काव्य के स्वरूप के विषय में स्पष्ट करते हैं, काव्य कैसा होना चाहिए इस विषय में लिखते है - "जिस काव्य में संसार का उपकार साधन नहीं हुआ वह उत्तम काव्य नहीं कहा जा सकता। समुद्र के किनारे बैठकर अस्त गमनोन्मुख सूर्य की शोभा को देखना बहुत ही आनन्ददायक दृश्य है। परन्तु उनके अवलोकन से क्षण स्थायी आनन्द के सिवा दर्शकों और पाठकों का कोई हित साधन न हो सकता, उससे कोई शिक्षा नहीं मिल सकती। जिस दृष्टि से आमोद-प्रमोद के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं वह काव्य उत्कृष्ट नहीं।"[7] द्विवेदी जी के साहित्य के क्षेत्र में आगमन से हिन्दी आलोचना को भी एक नवीन दिशा मिली। यद्यपि महावीर प्रसाद द्विवेदी का ज्यादा समय भाषा के परिमार्जन में लगा, लेकिन उन्होंने तत्कालीन कविता के आदर्श निर्माण व आलोचना पर विशेष ध्यान दिया। कालीदास की निरंकुशता, विक्रमांक देव चरित चर्चा, नैषध चरित चर्चा, नामक आलोचनात्मक ग्रन्थों के लिखा, लेकिन अपने लेखों तथा टिप्पणियों में साहित्यिक, प्रवृत्तियों और पुस्तकों की आलोचना की है। द्विवेदी जी छायावाद का घोर विरोध करते है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें नवीन काव्य से प्रेम नहीं था। एक तरफ उन्होंने जहाँ सूर, तुलसी, कालीदास, भवभूति आदि कवियों का सम्मान किया है, वहीं आधुनिक

काल के भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों को भी आदर की दृष्टि से देखा है। इस प्रकार इन्होंने प्राचीन व नवीन काव्य का समन्वय किया। इनकी शैली व्यंग्यपूर्ण, सरस व सरल है। दिवेदी युग के प्रमुख आलोचक मिश्र बन्धु §गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र और शुकदेव बिहारी§ पद्म सिह शर्मा, लाला भगवानदीन, किशोरी लाल गोस्वामी, कृष्ण बिहारी मिश्र, बदरी नाथ भट्ट, मुकुटधर पाण्डेय, गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, मोहन लाल विष्णु लाल पांडया आदि। 1901 मे सरस्वती में दिवेदी जी कवियों के कार्यो को बाटते हुए डॉ0 उदयभान सिह लिखते है कि - "आजकल हिन्दी संक्रान्ति अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है वह लोगों की रूचि का विचार रखकर अपनी कविता ऐसी सहल और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े-लिखे लोगो में भी पुरानी कविता के साथ-साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाये।"[8]

दिवेदी युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण समीक्षकों में मिश्र बन्धुओं का स्थान प्रमुख है। इन्होंने हिन्दी-नवरत्न नामक एक आलोचना ग्रथ निकाला। जिसमे हिन्दी के नव चुने हुए कवियों की जीवनी के साथ-साथ उनके काव्यों की विशेषताओं की व्याख्यात्मक चर्चा थी। कवियों को चुनने में बहुत सावधानी बरती गयी, यह तो ठीक है किन्तु उस सावधानी की दृष्टि और उसका मानदण्ड क्या है यह नही बताया गया, फिर भी मिश्रबन्धुओं की रूचि व काव्यगत सस्कारों ने ही आलोचनात्मक मानदण्ड का काम किया होगा। हिन्दी नवरत्न में निम्नलिखित कवियों को रखा गया - §1§ गोस्वामी तुलसीदास, §2§ सूरदास जी §3§ महाकवि देव, §4§ बिहारी लाल, §5§ त्रिपाठी बन्धु, §5§ भूषण और मतिराम, §6§ केशवदास, §7§ कबीरदास जी, §8§ चन्दवरदाई और §9§ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।

हिन्दी नवरत्न देखने से यह मालूम होता है कि "मिश्र बन्धु", प0 रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार कवि वृत्तकार अधिक थे, आलोचक कम। परन्तु शुक्ल जी का इतिहास भी मिश्रबन्धु-विनोद का कम ऋणी नही है। ये अपने युग के लिए उपयोगी ग्रथों की सृष्टि का समर्थन तो करते ही है, पुराने कवियों की भी समीक्षा मे स्थान-स्थान पर अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट कर देते है। जैसे देव के सम्बन्ध मे लिखते-लिखते इन्होंने धीरे से एक वाक्य में नैतिकता की झलक दे दी है। "उन्होंने प्रत्येक देश की स्त्रियों को उन्हीं के अनुसार

बड़ा ही सच्चा वर्णन किया है। इनका देश वर्णन देखकर कहीं कही यह संदेह अवश्यक उठता है कि इनका चाल-चलन ठीक न था।"[9] मिश्र बन्धु वह सारी सामग्री प्रस्तुत कर देते हैं, जो आलोचक और इतिहासकार के लिए उपयोगी है। उसमे वह सहृदयता विद्यमान है जो सुन्दर कविता का रस ग्रहण कर सकती है। वे प्रशसा कर सकते है समालोचना नही। "श्याम गोर किमि कहउ बखानी, गिरा अनैन नैन बिनु बानी" की आलोचना वे इस प्रकार करते हैं - "इस छन्द में क्या ही बढ़िया भाव, कितने कम शब्दों में व्यक्त किया गया है नन्ददास ने भी यही भाव कहा है - यथा नैन के नहि बैन, बैन के नैन नहीं है।"[10] अपने प्रिय कवि देव पर भी उन्होंने इसी प्रकार लिखा है - "इनकी कविता में अजायबघर की भाँति उतने चीज नहीं मिलते, किन्तु इसके साथ ही साथ इनके साहित्य में अभूतपूर्व कोमलता, रसिकता, सुन्दरता आदि गुण कूट-कूटकर भरे हैं। ऐसे उत्कृष्ट पद्य किसी अन्य कविता में स्वप्न में भी नही मिलतीं।"[11] वैसे तो मिश्र बन्धु रीति कालीन थे परन्तु नवीन काव्य की तरफ से मुख मोड़ने वाले समालोचक नही। मिश्र बन्धुओं ने यह सोचा कि हिन्दी में समालोचना की कमी है। उन्होंने सरस्वती में कहा - "भाषा रसज्ञों पर भली भाँति विदित है कि हमारे नागरी भण्डार में समालोचना विभाग की कैसी त्रुटि है। इसको पूरा करना हम लोगों को अपना-अपना कर्त्तव्य मानकर इस कार्य में कटिबद्ध हो जाना चाहिए।[12]

मिश्र बन्धुओं ने श्रीधर पाठक की आलोचना करते समय उन्हें चित्रकाव्य, छन्दोभंग व समस्यापूर्ति करने का दोषी ठहराया है। वे ब्रज भाषा मे काव्य रचना का विरोध नहीं करते थे किन्तु खड़ी बोली में काव्य रचना आवश्यक बताते थे। इस प्रकार मिश्र बन्धु की काव्य चितन परम्परा सार्वभौमिक थी। वे सभी पहलू का विधिवत निरीक्षण करते थे।

कवि की कविता में चमत्कार दिखाने और पूर्ववर्ती तथा समकालीन कवियों की कविताओं की परीक्षा करने वाले आलोचकों में पं० पद्म सिंह शर्मा विशिष्ट है। "शर्मा जी सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी फारसी और उर्दू साहित्य के मर्मज्ञ थे। जिसे तुलनात्मक आलोचना कहते हैं उसकी सर्वाधिक योग्यता शर्मा जी में थी।"[13] शर्मा जी सभी भाषाओं के तत्वों को समान भाव से ग्रहण कर उसकी तुलना कर सकते थे। शर्मा जी साहित्य के पाठकों की सीमा निर्धारित करते हुए लिखते हैं -

"रूचि भेद और अवस्था भेद से काव्यों के कुछ वर्णन किन्ही विशेष व्यक्तियों को अनुचित प्रतीत हों, यह और बात हैं परन्तु इससे ऐसे काव्य की अनुपयोगिता सिद्ध नही होती। अधिकारी भेद की व्यवस्था सब जगह समान है काव्य शास्त्र भी इसका अपवाद नही है। कौन कहता है कि वृद्ध जिज्ञासु बाल ब्रह्मचारी मुमुक्ष यती और जीवन भुक्त सन्यासी भी काव्य के ऐसे प्रसगो को अवश्य पढ़े। ऐसे पुरूष काव्य के अधिकारी नहीं है। फिर यह भी कोई बात नही है कि जो चीज इनके लिए अच्छी नही है वह औरों के लिये भी अच्छी न हो, इनकी रूचि को सबकी रूचि का आदर्श मानकर ससार का काम कैसे चल सकता है।"[14]

द्विवेदी जी आदि चिन्तकों ने इसी सामाजिकता और युगीन विशेषताओं के आधार पर साहित्य का विचार किया और उसे नया मोड़ दिया। यह सर्वथा सत्य है कि वे न तो बाल ब्रह्मचारी थे,न वृद्ध जिज्ञासु और न जीवन मुक्त सन्यासी, वे सर्वथा साहित्य के थे।

इस कथन के साथ शर्मा जी बिहारी सतसई की आलोचना में प्रविष्ट होते दिखाई देते है। शर्मा जी ने अग्रेजी, सस्कृत और उर्दू की तुलनात्मक समीक्षा की है। उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दी में इस प्रकार की आलोचना का अभाव है। "हिन्दी साहित्य मे जहां तक मालूम है इस शैली पर कभी कोई ग्रथ नही लिखा गया। हिन्दी मे भी यह रीति प्रचलित होनी चाहिए इसकी आवश्यकता है यही समझकर इस विषम मार्ग में चलने की चेष्टा की गई।"[15]

प0 पद्म सिंह शर्मा की इस आलोचना पद्धति का महत्त्व ऐतिहासिक है और इस अर्थ में भी उसकी महत्ता स्वीकार की जानी चाहिए। बाद के अनेक उच्च कोटि के आलोचकों ने भी इस पद्धति का विकास कर उसे व्याख्यात्मक गाभीर्य दिया।

रीतिवादी परंपरा से प्रभावित समीक्षकों मे कृष्ण बिहारी मिश्र दूसरे प्रमुख व्यक्ति है। इन्होंने 'देव और बिहारी'[16] पुस्तक पद्म सिह द्वारा देव की उपेक्षा देखकर ही लिखा है। प0 पद्म सिंह द्वारा देव को छोड़े जाने पर प0 कृष्ण बिहारी मिश्र ने देव और बिहारी में देव के उदात्त भाव और कलात्मक सौष्ठव को दिखाया है। पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र ने

अपनी यह पुस्तक §1§ भूमिका §2§ रस राज श्रृगार §3§ परिचय §4§ काव्य कला कुशलता §5§ बहुदर्शिता §6§ मर्मज्ञों का मत §7§ प्रतिभा परीक्षा §8§ प्रेम परिचय §9§ मन §10§ विरह वर्णन §11§ तुलना §12§ भाषा §13§ उपसंहार §14§ परिशिष्ट, इन चौदह अध्यायों में पूरा किया। आलोचना के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक रूपों को देखते हुए हम यह कह सकते हैं कि मिश्र जी अपनी परम्परा के अन्य आलोचकों से अधिक उदार व्याख्यात्मक प्रतिभासम्पन्न नवीन और संतुलित दृष्टि वाले लेखक थे।

मिश्र जी दुराग्रहहीन होकर यह स्वीकार करते है कि "आजकल जिस प्रकार की समालोचना प्रचलित है वह अंग्रेजी चाल के आधार पर है।"[17] लेकिन यदि सोचा जाय तो जिस समय लोगों की जैसी रूचि होती है या जैसा पर्यावरण होता है, वैसी ही उस समय की समालोचनाएँ निकला करती है। इसलिए समयानुसार समालोचना में भी भिन्नता होती है। मिश्र जी "देव और बिहारी" की आलोचना से प्रभावित होकर उनकी विशेषता को अन्य कवियों में ढूंढ़ते है। इन्होंने देव और बिहारी की काव्य विवेचना के अतिरिक्त श्रृंगार के रस राजत्व पर विचार किया। इनका मत है कि कविता का उद्देश्य मन को शुद्ध आनन्द देना है। वास्तव में रसात्मक काव्य ही काव्य है।

इस रस चर्चा के प्रसंग में मिश्र जी शर्मा जी की तरह श्रृंगार रस की वकालत आरम्भ करते हैं। इसके लिए वे गंभीर विवेचन के बजाय शैली आदि, पाश्चात्य साहित्यकारों की सूक्तियों को अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं। "मनोविकारो के स्थायित्व और विकास की तरह श्रृंगार रस सचमुच सब रसों का राजा है। हम कुरूचि प्रवर्तक कविता के समर्थक नहीं परन्तु श्रृंगार कविता के विरूद्ध आजकल जो धर्म युद्ध जारी कर रखा गया है उसकी घोर निन्दा करने से भी नहीं हिचकते।"[18] वे इसको काव्य का शाश्वत उपादान मानते है।

श्रृंगार को रसराज कहते समय पं0 कृष्ण बिहारी मिश्र आदर्श प्रेम की उच्चता को नही भूलते। वे कहते हैं - "हम कुरूचि प्रवर्तक कविता के रामर्थक नहीं है, परन्तु श्रृंगार कविता के विरूद्ध जो आजकल धर्म युद्ध सा जारी रखा गया है, उसकी घोर निन्दा करने से भी नही हिचकते है। कविता के लिए केवल रस परिपाक चाहिए, उपयोगितावाद के चक्कर में डालकर ललित कला का सौन्दर्य नष्ट करना ठीक नही।"[19] प0 कृष्ण बिहारी मिश्र कविता में रसात्मकता को विशेष महत्व देते है। रीति कालीन कवियों की व्याख्या अत्यन्त सहृदयता के

के साथ करते हैं। मतिराम ग्रथावली मे इन्होंने कुछ साहित्य सिद्धान्तों (जैसे काव्य क्या है ? काव्य के महत्वपूर्ण विषय कौन-कौन से है, कविता की भाषा कैसी हो, समालोचना किसे कहते है आदि की भी चर्चा की है।

लाला भगवानदीन भी उस काल के प्रमुख आलोचकों में आते हैं। उस समय की परिस्थिति देखकर इन्होंने "बिहारी और देव" की रचना की। ये रूढ़िवादी विचारधारा के कवि थे। इनका पांडित्य और अध्ययन पुराने ढंग का था। सही अर्थो में इन्हें पुराने ढंग का टीकाकार ही कह सकते हैं। इनके ग्रंथ के प्रारम्भिक वक्तव्यों से यह मालूम होता है कि इनके काव्य में उत्तेजना भी थी। "एक-एक बिहारी पर चार-चार बिहारियों का धावा देखकर बेचारा हिन्दी साहित्य संसार घबड़ा गया। लखनऊ प्रान्त के निवासी बिहारियों ने रसिक राज कृष्ण की जन्म भूमि मथुरा नगर के निवासी बिहारी की कविता को हल्की लहरा कर देव पर बेतरह आसक्ति दिखाई है। यह देखकर सबको आश्चर्य हो तो अनुचित नहीं है।"[20] लाला जी यह पुस्तक बिहारी की रक्षा में लिखी है और बिहारी पर जो दोष लगाया गया उसे देव पर थोप दिया। लालाजी ने गुप्त जी के "जयद्रथ वध" व "भारत-भारती- की भी आलोचना की। लाला जी की शैली बड़ी अक्खड़ किस्म की थी। यों तो पूरे विकास युग के लेखकों की शैली में व्यंग्य, निर्भीकता वाद-विवाद की सी वक्रता, चुटीलापन और आक्रामक जुबादानी दिखायी पड़ती है।

गुप्त जी विशेष रूप से आलोचक नहीं थे। फिर भी भाषा की सफाई और विद्या के नाना क्षेत्रों की जानकारी देने में उनका विशेष योगदान था। मूलतः वे द्विवेदी जी के बहुत नजदीक दिखाई देते है। किन्तु व्यक्तिगत राग द्वेषों के कारण द्विवेदी और उनमें बहुत चख-चख मच गयी। द्विवेदी जी का खण्डन करने पर ये तुल गये थे और उसी प्रकार द्विवेदी जी भी इनका करारा जवाब देते थे। गुप्त जी का संस्कृत, अंग्रेजी, बगला और उर्दू पर अधिकार था। उन्होंने स्वयं सम्पादित पत्र "भारत-मित्र" में "अश्रुमती नाटक" तुलसी-सुधाकर, प्रवासी-तारा और "गुलशन-ए-हिन्द" की भी समीक्षा की थी। आलोचना के समय उनका ध्यान समाज, जाति, देश व भाषा की समस्याओं पर अधिक रहता था। "अश्रुमती" की समीक्षा करते समय उन्होंने स्पष्ट लिखा है - "साहित्य जहन्नुम में जाये हमको साहित्य से कुछ मतलब नहीं। हमको जो कुछ मतलब है इस पुस्तक से है, वह हिन्दू-धर्म

लेकर राजपूतों का गौरव लेकर और हिन्दू पति महाराणा प्रताप सिंह की उज्जवल कीर्ति लेकर है।"[21] गुप्त जी अश्रुमती नाटक को हिन्दू नैतिकता के विरूद्ध मानते है। और उसके दोषो को देखकर उसकी खिल्ली उड़ायी है और बड़ा क्षोभ व्यक्त किया है। "अश्रुमती नाटक के लिखे जाने से बंग भाषा के साहित्य का मुँह काला हो गया है।"[22]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त जी विकास कालीन आलोचना के नैतिक पक्ष के समर्थक है और इस दृष्टि से वे मूलतः उस काल की स्वस्थ सामाकि प्रवृत्तियों के साथ सहयोग देते हैं।

भारतेन्दु जी के बाद आचार्य द्विवेदी हिन्दी साहित्य में एक उन्नायक के भाँति प्रविष्ट हुए। ये आधुनिक विचारों के वाहक, प्रचारक व व्याख्याता थे। ये अमर्यादित श्रृगारिक वर्णन को साहित्य व समाज के लिए अहितकर मानते थे। वे श्रृंगारिकता को एकदम बहिष्कृत नहीं करते उसे नैतिकता और उपयोगिता मे सीमित रखते है। रीति कालीन रूचि को इन्होंने त्याज्य बताया है। हिन्दी आलोचना के प्रगति में मिश्रबन्धु,कृष्ण बिहारी मिश्र आदि रीति कालीन रूचियों के समर्थकों के योगदान के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इन आलोचकों ने रीतिकालीन साहित्य की मार्मिक व विशद व्याख्या की। इसके अभाव में रीतिकालीन साहित्य का मूल्यांकन नही किया जा सकता।

द्विवेदी जी के बाद मुख्य आलोचक क्रम मे बाबू श्याम सुन्दर दास है। इन्होंने हिन्दी साहित्य का इतिहास भी लिखा है। इतिहास लेखन के लिए बाबू साहब आधारभूत सामग्री की खोज और उपलब्धि को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। वे लिखते है - "सम्पूर्ण सामग्री के प्राप्त हुए बिना अनुशीलन कितनी ही सतर्कता से किया जाय वह अधूरा ही कहा जायेगा और उसके आधार पर जो परिणाम निकाले जायेंगे, वे अपूर्ण सामग्री पर आधृत होने के कारण अपूर्ण ही होंगे।"[23] बाबू साहब केवल तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालने के पक्ष में थे।

हिन्दी आलोचना की परम्परा का जो प्रवर्तन भारतेन्दु जी ने किया। उसे आचार्य जी व बाबू श्याम सुन्दर दास ने विकसित किया। आचार्य द्विवेदी ने आलोचना योग्य भाषा के रूप को परिष्कृत करने का सफल प्रयास किया और बाबू साहब ने आलोचना के आवश्यक उपादान एकत्र किया।

सन् 1920 के आस पास हिन्दी समालोचना के स्वरूप में कुछ ऐसा परिवर्तन होने लगा था जिसके आधार पर हम सन् 1920 के बाद की आलोचना को पृथक देख सकते है। यह दो रूपों में दृष्टिगत हुई प्रथम आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्वतियों में, दूसरे सौष्ठववादी (छायावादी, स्वच्छन्दतावादी)। आचार्य शुक्ल की समीक्षा पद्वति विकास कालीन समीक्षा शैली की विकसित रूप थी। कुल मिलाकर इन्होंने पहले पहल ऐसी आलोचना पद्वति स्थापित की जो हिन्दी में अब तक उपलब्ध नहीं थी। इन्होंने आलोचना को साहित्यिक रूप प्रदान किया। आलोचना की इस साहित्यिक शैली की प्रतिष्ठा के लिए शुक्ल जी ने भारतीय साहित्य का मथन किया। महान काव्यो के महान गुणों को ही काव्य की परीक्षा की कसौटी माना। जो काव्य मानव-जीवन और जगत के जितने ही अधिक मार्मिक और सामान्य भावों को अपने में ग्रहण कर पाठकों का मानसिक स्तर ऊँचा व संवेदनशील बना सकेगा वह काव्य उतना ही महान है। शुक्ल जी की मूल्यांकन पद्वति साहित्यिक है। समालोचना पर शुक्ल जी ने अपना विचार प्रकट किया है - "पर यह सब आलोचना अधिकतर बहिरंग बातों तक ही रही। भाषा के गुण दोष रस अलकार आदि की समाचीनता इन्हीं सब परम्परागत विषयों तक पहुँची। स्थायी साहित्य में परिगणित होने वाली समालोचना जिसमें किसी कवि की अंतवृत्ति का सूक्ष्म व्यवच्छेद होता है, उसकी मानसिक प्रवृत्ति की विशेषताएँ दिखाई जाती है, बहुत कम दिखाई पड़ी।"[24] फिर वे आगे कहते हैं - "हमारे हिन्दी-साहित्य में समालोचना पहले-पहल गुण दोष दर्शन के रूप मे प्रकट हुई।[25]

इस प्रकार शुक्ल जी की रचनाओं के कारण हिन्दी की समालोचना ने नये युग में पदार्पण किया। हिन्दी साहित्य में किसी एक विधा को कभी किसी एक साहित्यकार ने इतना अधिक नही प्रभावित किया जितना आचार्य जी ने। इस विषय में पं0 विश्वनाथ त्रिपाठी का वक्तव्य उल्लेखनीय है - "अभी इस बात को ठीक-ठीक नहीं आंका गया है कि पं0 रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचक होने की कितनी भारी तैयारी की थी। साहित्येतर ग्रथ जितनी संख्या में रामचन्द्र शुक्ल ने लिखे या अनुवादित किये उतने अभी तक हिन्दी के किसीअन्य समालोचक ने नहीं।"[26]

लगभग 14 वर्ष की अवस्था में उन्होंने एडिसन के "एसे आन इमेजिनेशन" का अनुवाद "कल्पना का आनन्द" नाम से किया था। तथा सर टी0 माधव राव की पुस्तक "माइनर हिट्स" का अनुवाद "राज्य प्रबन्ध शिक्षा" नाम से किया। शुक्ल के विचारों को आगे रास्ता दिखाने में जर्मन के विख्यात प्राणि तत्त्व वेत्ता हेकल की पुस्तक "रिडिल आफ दि युनीवर्स" का बहुत योगदान है। वक्तव्य में शुक्ल जी ने कैसे परिचय दिया यह ध्यान देने योग्य है - "आज जर्मनी के जगत् विख्यात प्राणि तत्व वेत्ता हेकल की परम प्रसिद्ध पुस्तक {रिडिल आफ द यूनिवर्स} हिन्दी पढ़ने वालों के सामने रखी जाती है। यह अनात्मवादी आधिभौतिक पक्ष का सिद्धान्त ग्रन्थ है। इसमे नाना विज्ञानों से प्राप्त इन सब तथ्यों का सग्रह है जिन्हें भूतवादी अपने पक्ष के प्रमाण में उपस्थित करते हैं। जिस समय यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। यूरोप मे इसकी धूम सी मच गई। अकेले जर्मनी में दो महीने के भीतर 9000 प्रतियां खप गई। इस पुस्तक ने सबसे अधिक खलबली पादरियों के बीच डाली जिनकी गालियों से भरी सैकड़ों पुस्तकें इसके प्रतिवाद में निकली।"[27] इसके आगे वे वक्तव्य में लिखते है - "जहां पहले लोग छोटी से छोटी बात के कारण को न पाकर उसे ईश्वर की कृति मान सतोषकर लेते थे वहा चारो ओर नाना विज्ञानों के द्वारा कार्य कारण की ऐसी विस्तृत श्रृखला उपस्थिति कर दी गई कि किसी को बीच में ठिठकने की आवश्यकता न रह गयी।"[28] विश्व प्रपंच अनात्मवादी ग्रन्थ है। हेकल का मत था कि - "जिसे आत्मा कहते हैं वह मेरी समझ में एक प्राकृतिक व्यापार मात्र था"[29] आध्यात्मिक जगत को निःसार बताते हुए हेकल लिखता है - "यह आध्यात्मिक जगत् तो भूतात्मक जगत से सर्वथा स्वतन्त्र माना गया है और जिसके आधार पर द्वैत वाद खड़ा किया गया है, कवि कल्पना मात्र है।"[30] आध्यात्मिकता के वर्णन से शुक्ल जी भी बहुत घबड़ाया करते थे। ये मन को दृश्यमान जगत का प्रतिरूप मानते थे। विश्व प्रपंच की भूमिका का अध्ययन करने से इस बात का पता चलता है कि उन्होंने दर्शन, मनोविज्ञान व भौतिकी का गहन अध्ययन किया था। विवेचना के समय न तो वे पूर्णतया पश्चिमी विचारक ही दिखाई पड़ते न प्राचीन भारतीय विचारक।

शुक्ल जी की कृतियों को देखने से यह पता चलता है कि वे समकालीन राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं पर भी विचार करते हैं। शुक्ल जी की भाषा वैज्ञानिक थी। दृष्टिकोण सम्बन्धी वैज्ञानिकता के साथ उन्होंने भाषा सम्बन्धी वैज्ञानिकता भी अर्जित की थी।

पं0 रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा में सैद्धान्तिक व व्यावहारिक आलोचना का दर्शन होता है। शुक्ल जी रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। इन्होंने इसका विशद विवेचन किया है। इन्होंने रस के अंग प्रत्यंग को लेकर स्वतन्त्र व चिन्तनपूर्ण निबन्ध लिखा है। तथा रस को विशुद्ध लौकिक वस्तु माना है। ये रस को ब्रह्मानन्द सहोदर मानने से इनकार करते है।

विभिन्न भावों की जो विवेचना शुक्ल जी ने की है, उसमें उन्होंने अद्भुत पांडित्य और मौलिकता का परिचय दिया है। प्रेम व करूणा का विवेचन शुक्ल जी की ही देन है। यह सामाजिकता का मूल आधार है तथा आत्म-प्रसार का साधन भी है। शुक्ल जी का विचार है कि करूणा में प्रवृत्ति का वेग अधिक होता है - "दूसरों के दुःख के परिज्ञान से जो दुःख होता है वह करूणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को को दूर करने की उत्तेजना करता है।"[31] प्राचीन आचार्यो ने करूणा व प्रेम में वैसा भेद नहीं किया है जैसा शुक्ल जी ने किया है वे लिखते है - "प्रबन्ध काव्यों के प्रति शुक्ल जी का जो इतना आग्रह दिखलाई पड़ता है वह करूणा सम्बन्धी इसी धारणा के कारण भाव में प्रवृत्ति का वेग होता है और करूणा की अभिव्यक्ति का यथेष्ट अवकाश प्रबन्ध-काव्यों में ही मिलता है, इसलिए शुक्ल जी प्रबन्ध काव्यों के आग्रही है।"[32] सूरदास की भी कविता को शुक्ल जी इसीलिए पसन्द करते है कि सूरदास ऐसे कवि हैं जिन्होंने वात्सल्य को श्रृंगार से अधिक नहीं तो कम महत्व भी नहीं दिया है। इस मामले में वे शुक्ल जी की चिन्तन धारा के समान दिखाई देते है।

शुक्ल जी ने समीक्षा सिद्धान्त साहित्यिक रचनाओं के आधार पर स्थापित किया है। इस दृष्टि से शुक्ल जी आधुनिक व वैज्ञानिक समीक्षक है। पं0 रामचन्द्र शुक्ल प्राचीन साहित्य में समीक्षा के लिए तुलसी, सूर व जायसी को चुना। संस्कृत कवियों में उन्हें वाल्मीकि, भवभूति व कालीदास विशेष रूप से प्रिय थे। सूरदास को वे प्रेम के अन्तर्गत मानते हैं। तुलसीदास को करूणा का प्रतिरूप मानते है जिसमें लोक रक्षा का भाव आता है। शुक्ल जी कहते है - "वक्त की अनुभूति वही है जिसे काव्य की लीनता या रस प्रतीति कहते है। प्रक्रिया भी वही स्वाभाविक और सीधी-सादी है। कल्पना या भावना, जिससे विज्ञान का भीतरी साक्षात्कार होता है और भाव या रागात्मिका वृत्ति जिससे आनन्दानुभूति होती है, दोनो मनुष्य की स्वाभाविक वृत्तियाँ है। बस इन्हीं दो स्वाभाविक वृत्तियों के सहारे भक्ति रस

की निष्पत्ति हो जाती है। इसके सीधे-सादे विधान में न इला पिंगला नाड़िया है, न सहस्रार चक्र, न ब्रह्मरन्ध्र न आसन न प्राणायाम।[33]

भक्ति की यह जागतिक व्याख्या है। शुक्ल जी सूर, तुलसी व जायसी भक्त है या कवि ? उस प्रश्न में नही उलझते हैं। लोक धर्म का जो सौन्दर्य उन्हें काव्य में दिखलाई पड़ा था वही भक्ति में भी उनका विचार है - "रचना के सन्दर्भवान वातावरण से परिचित होने के लिए ही आलोचक को बहुज्ञ होना पड़ता है। साहित्य में घुसने के लिए इस संस्कृति से परिचित होना आवश्यक है।"[34]

गोस्वामी तुलसीदास उनके आदर्श कवि है। उनके आलोचना के मानदण्ड बहुत कुछ तुलसी के रामचरित मानस पर आधारित है और तुलसी को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने के लिए उन्होने उनके समक्ष किसी भी कवि को महत्व नहीं दिया। शुक्ल जी की शैली मे प्रौढ़ता, गम्भीरता, सूक्ष्मता, सरसता और प्रवाह है। कुछ आलोचक शुक्ल जी की आलोचना को संकीर्णता की संज्ञा देते है। क्योंकि शुक्ल जी वर्ण व्यवस्था तथा अवतार वाद में विश्वास के कारण सूर और कबीर के प्रति न्याय नही करते। इन्होंने प्रबन्ध-काव्य को श्रेष्ठ बताया है और नवीन काव्य धारा के ही कारण ये छायावाद की अन्तरात्मा को पहचान नहीं सके। इस काल के प्रमुख आलोचक विश्वनाथ प्रसाद, कृष्णशकर शुक्ल, श्याम सुन्दर दास, गुलाब राय, चन्द्रबली पाण्डेय, केशव प्रसाद मिश्र आदि है। शुक्ल जी द्वारा छायावादी काव्य के सम्यक मूल्याकन के अभाव में छायावादी कवियों ने (प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी) अपने पुस्तकों की भूमिकाओं मे या निबन्ध के रूप में अपने काव्य का सम्यक विश्लेषण किया है। जिसका प्रभाव नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ नगेन्द्र, शान्ति प्रिय द्विवेदी आदि पर पड़ा है। फलस्वरूप इन छायावादी कवियों अपनी कविता के स्वरूप को सम्बद्ध करने का सफल प्रयास किया है।

व्यक्ति की स्वाधीनता का उदय और छायावादी काव्य का प्रादुर्भाव:-

आलोचना युग मे आलोचना के दो स्वरूप आगे-पीछे विकसित हो रहे थे। एक के अधिष्ठाता तो आचार्य शुक्ल थे तथा दूसरे के प्रवर्तक (नगेन्द्र ,बाजपेयी, हजारी प्रसाद, नामवर) आदि थे, जो छायावाद को एक स्वतन्त्र रचना प्रक्रिया और नवीन आलोचना सिद्धान्त के रूप में देख रहे थे। कुछ लोग इस धारणा का खण्डन कर रहे थे और छायावाद को ऊलजुलूल वस्तु या पाश्चात्य साहित्य का अनुकरण मात्र ही मानते थे।

छायावादी कविताएँ जब प्रकाशित होने लगी तो पुराने आलोचको ने इस पर अस्पष्टता और आधार हीनता का दोष लगाया यहा तक कि प0 द्विवेदी जी भी छद्म नामों से इस पर अनेक प्रहार किये। कितने लोग छायावादी कवियों की वेशभूषा को ही आधार मानकर बड़े निकृष्ट ढग से मजाक उड़ाने लगे। इन गलतफहमियों से हटकर शुक्ल जी ने छायावाद को गम्भीरदृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। परन्तु अपने कुछ क्षेत्रों के कारण ये छायावाद का दो संकुचित अर्थ मानकर ही रह गये।(१) रहस्यवाद के अर्थ में जहां उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है। अर्थात जहा कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा मे प्रेम की व्यंजना करता है।[35] शैली के अर्थ में शुक्ल जी मानते हैं कि सन् 1885 में फ्रांस मे रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी कहलाया। वे अपनी रचनाओं मे प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। हिन्दी में छायावाद का जो विस्तृत अर्थ में प्रयोग हुआ - रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध मे ग्रहण हुआ वह प्रतीक शैली के अर्थ में ही माना गया।

इन समालोचकों से छायावाद के साथ अन्याय हुआ। सामाजिक राष्ट्रीय और युगीन यथार्थों से छायावाद का विश्लेषण नही हुआ। इसको प्रगतिशील आलोचकों ने पूरा किया। जिन्होंने छायावाद को नवीन सामाजिक चेतना का परिणाम माना। हिन्दी छायावादी कविता पर यह आरोप लगाया गया कि यह इगलिश रोमांटिक कविताओं का अस्वस्थ प्रभाव लेकर उत्पन्न हुई है। कुछ लोग कीट्स, वायरन, शैली व वर्ड्सवर्थ की हिन्दी में नकल कर रहें है। यह बात झूठी होते हुए भी इस बात को जाहिर करती है कि दोनो कविताओं में बहुत हद तक साम्यता है। यह हम मान सकते है कि छायावादी काव्य इंगलिश

कवियों से व रवीन्द्र नाथ टैगोर से बहुत कुछ ग्रहण किया है। लेकिन इनका काव्य सामन्ती समाज की चेतना का प्रतिबिम्ब था। यह सामाजिक परिवर्तन था न कि एक दूसरे की नकल। यह अनिवार्य नवीन युग औद्योगिक युग का अनिवार्य परिणाम था, जो दोनों देशों में अलग-अलग समयों में उदय हुआ।

छायावादी {रोमांटिक} कविता पूजीवाद युग की साहित्यिक अभिव्यक्ति है। औद्योगिक विकास के साथ ही साथ पूंजीवाद का उदय होता है, पूंजीवादी सभ्यता व्यक्तिगत स्वार्थ पर ही बल देती है। सामन्ती समाज में व्यक्ति को अपना कोई निजी अधिकार नहीं था। सामन्ती स्वेच्छाचारिता इतनी अधिक थी कि उसके अन्धकार में समाज विलीन था। इससे एक ओर तो व्यक्ति का विकास रूक गया और दूसरी ओर इन अन्यायों के प्रति लोग विरोध भी नही कर पाते थे। नारियों की सत्ता सामन्तों की भोगवृत्ति के लिए रह गयी। समाज से इन्ही सामाजिक व राजनैतिक पर्यावरण की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। समाज में विधवा नारी कितनी त्रस्त व दबी हुई है इसका चित्रण निराला जी करते हैं :-

दुःख रूखे-सूखे अधर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर में
दुःख सुनता है आकाश धीर-
निश्चल समीर
सरिता के वे लहरें भी ठहर-ठहर कर।[36]

इस प्रकार कवि ने समाज का अध्ययन करने के पश्चात् सामाजिक कुरीतियों पर जमकर प्रहार किया है। औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप जिस पूंजीवाद का जन्म हुआ, कवियों ने इसका घोर विद्रोह किया। रूसों ने इस विषय मे व्यक्ति स्वातन्त्रय का ही सिर ऊँचा किया।

हिन्दी का छायावाद पूंजीवादी सभ्यता की छाया मे उत्पन्न व विकसित हुआ। भारतवर्ष में पूंजीवाद का विकास प्रथम महायुद्ध के बाद हुआ। इस प्रकार योरोपिय रोमांटिक कविता के समस्त विद्रोही स्वर छायावादी कविता में जागृत होने लगे। जिस समय पूंजीवाद विकसित हुआ भारत पराधीन था। इस प्रकार भारत में विदेशी पूंजीवाद जनता के हितों

का शुरू से विरोधी रहा और भारतीय जनता का जी जान से शोषण कर रहा था परन्तु भारत का स्वदेशी पूजीवाद स्वतन्त्रता की प्राप्ति मे सहयोग कर रहा था। इन्ही सब परिस्थितियों का मिला जुला समन्वय ही छायावाद के रूप मे उत्पन्न हुआ। उस समय जब अंग्रेजी शासकों से त्रस्त जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगी तो राष्ट्रीयचेतना जागरूक हुई। वैसे तो छायावादी काव्य में राष्ट्रीय उल्लास तो व्यक्त ही है परन्तु राष्ट्रीय आन्दोलनों की बार-बार असफलता के कारण विदेशी पूँजी और सत्ता की शोषक नीतियों तथा अभावग्रस्त जीवन की यथार्थ परिस्थितियों के कारण छायावादी कविता में कही स्पष्ट निराशा व पलायन की प्रवृत्ति है तो कही विरह वेदना व मूक चीत्कार की ध्वनि सुनायी पड़ती है। छायावादी काव्य में कही आध्यात्मिक पीड़ा का रूप दिखाई देता है तो कही अतीत के अचल में मुँह छिपाया गया है और कही कल्पना वास्तविकता की तलाश करती है। किन्तु यह तो छायावादी काव्य का एक पहलू ही जान पड़ता है, इसका दूसरा पक्ष है परिपाटीबद्ध जीवन, साहित्यिक मान्यताओं को तोड़कर नवीन मान्यताओं में बदलना तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का जागरण।

छायावादी आन्दोलन मुख्य रूप से मानवतावादी ही दिखाई देता है। छायावाद ने घुटते और सड़ते मनुष्य को नवीन और ताजे वातावरण में लाकर खड़ा कर दिया। परन्तु पूजीवाद के कारण सारी पूंजी थोड़े व्यक्तियों के हाथ में आ गयी और सारा समाज अभाव ग्रस्त व आर्थिक रूप से खाली हो गया। छायावादी कवि समस्याओं को व्यक्तिक ढंग से समझने की कोशिश करता है।

वह सामाजिक समस्याओं को न समझने के कारण उन्हें आध्यात्मिक समस्या का रूप दे देता है। शिव दान सिंह छायावाद के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं - "छायावादी कवि प्रारम्भ में एक क्रान्तिकारी के रूप में अवतरित हुआ। उसने कविता को सामती बन्धनों से मुक्त कर दिया किन्तु पूजीवादी मनोवृत्ति होने के कारण वह नवीन समाज (पूजीवादी समाज) के संश्लिष्ट बंधनों की कल्पना न कर पाया। उनमें स्वयं को भी जकड़ा पाकर वह समस्त बन्धनों और समाज सम्बन्धों के प्रति विद्रोही बन गया। जिस अनियंत्रित स्वतन्त्रता की उसने कल्पना की थी, वह उसे प्राप्त न हो सकी। इस भ्रम का पर्दा हटते ही जीवन उसे और भी विकराल और कठोर लगने लगा, वह इस आघात को सहन कर पाया क्योंकि पूंजीवाद ने उसे न केवल अपना व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का ही उत्तराधिकारी बनाया वरन्

अपनी ही तरह सामूहिक जीवन और सामूहिक श्रम से अलग कर भाग्य की अन्ध शक्तियों का दास बना दिया।"[37] और हमने उन परिस्थितियों की खोज की जिनसे छायावादी काव्य का प्रादुर्भाव हुआ। यह स्पष्ट है कि छायावाद का जन्म नवीन युग और समाज की मिट्टी से हुआ। और इस पर इंगलिश व टैगोर की कविताओं से पर्याप्त प्रभाव दिखायी पड़ता है।

कल्पना का विस्तार और छायावादी काव्य

"छायावादी काव्य में अनुभूति और नैसर्गिक भावावेग का प्रवाह मुख्य वस्तु है किन्तु भावावेग कल्पना के अविरल प्रवाह से सबलित है। रोमांटिक साहित्य की वास्तविक उत्स भूमि व मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग की ही प्रधानता होती है। इस प्रकार कल्पना का अविरल प्रवाह और निविड़ आवेग ये दो निरन्तर घनीभूत मानसिक वृत्तियाँ ही इस व्यक्तित्व प्रधान साहित्यिक रूप की प्रधान जननी है।"[38]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि आदि काल से ही कल्पना का साहित्य में विशिष्ट स्थान है। कल्पना का विश्लेषण करने पर इसके कई स्वरूप दिखाई देते हैं। पुनर्सृजन करना कल्पना का मुख्य ध्येय होता है। कवि कल्पना के माध्यम से नयी सृष्टि करता है। वह अपनी देखी सुनी वस्तुओं को ज्यों का त्यों ही चित्रित नहीं कर देता है बल्कि उन्हें कांट-छांट कर कुछ नवीन बातों को जोड़ता भी है। इस नयी सृष्टि के लिए यह आवश्यक है कि वह यथार्थ पर आधारित हो। जहां कवि वस्तुओं की कल्पना करने लगता है उसको चाहिए कि वह कविता प्रयोजन सिद्ध हो। जो वस्तुएँ इस जीवन जगत में संभव नहीं होती तो उसकी सृष्टि, राग-विराग, शून्य केवल आश्चर्य जनक चमत्कारों से चमत्कृत होती है। लेकिन यह तो साफ-साफ कल्पना का दुरूपयोग है।

कल्पना का दूसरा उपयोग साहित्य के अभिव्यक्ति के पक्ष में होता है। वर्ण्य विषय को कुशलतापूर्वक प्रकट करने के लिए कवि कला के बाहरी उपकरणों का उपयोग करता है। इस प्रकार कल्पना जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों में घूम-घूमकर प्रतीक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार शब्द चित्र प्रस्तुत करती है। जो विषय का कुशल चित्र उतारकर पाठकों के ऊपर प्रभाव डालने में समर्थ हो सके। यदि कल्पना यहाँ पर वर्ण्य विषय को छोड़कर स्वच्छन्द रूप से अलंकार की रचना करने लगे तो साहित्य में मार्मिकता का स्थान ही नही रह जायेगा।

छायावादी काव्य कल्पना के मुक्त पंखो पर आधारित है। छायावादी कविता के पहले की कविता तथ्यवादी थी परन्तु छायावादी काव्य ने कल्पना के माध्यम से सूक्ष्म वस्तुओं में प्रवेश कर उनका अंकन किया। छायावादी कवियों ने वास्तविक चीजों को उसी रूप में अंकित करने का प्रयास नहीं किया वरन् वे पदार्थों के भीतर चेतना को देखते व चित्रित करते दिखाई देते है। क्योंकि सूक्ष्म चेतना को कल्पना के आँखो से ही देखा जा सकता है। छायावादी कल्पना धरती से आकाश और उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचती हुई मालूम होती है। कल्पना प्रकृति के सौन्दर्य में आध्यात्मिक व मानवीय सौन्दर्य को प्रतिष्ठित कर लेती है। छायावादी कल्पना स्वस्थ है परन्तु अनेक जगहों पर कल्पना अनुभूति का साथ छोड़कर विहार करती हुई मालूम होती है।

छायावादी कल्पना इस सघर्ष और विरूप युक्त संसार में ऐसे संसार की रचना करता है जहां विरह नही चिर मिलन है, जहां सुख ही सुख है, जहां अभाव के दर्शन नहीं होते है। जहां हर जगह शांति ही है। कवि इस संसार से दूर भाग कर दूसरी जगह सुन्दर लोक की कल्पना करता है। वह मनोरम अतीत को भी कल्पना के सहारे प्रकट करना चाहता है। इन सब विषयों पर उसकी कल्पना आकाश छूती है। इन्ही निराधार व पलायनवादी कविताओं ने छायावाद को बदनाम किया। क्योंकि यहां विषयों का संग्रथन और पुनर्सृज़न नही है बल्कि कल्पना की गयी है।

छायावादी कवियों ने सूक्ष्मता को प्रकट करने के लिए सूक्ष्म प्रतीक व अलंकार का उपयोग किया। कल्पना को इस तरह सूक्ष्म प्रतीकों और उपमानों से जोड़ा कि काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष एक साथ विशाल व समृद्ध हो गया।

छायावादी आलोचकों ने काव्य में कल्पना के महत्त्व पर गहन विचार किया। शेली कहता है कि "कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है।" इस विषय में डॉ0 देवराज के शब्दों में - "शैली कहता है कविता दर्पण है जो प्रकाश को पूर्ण रूप प्रतिबिम्बित करती है। भाषा कल्पना प्रसूत है अत. उसका सीधा सम्बन्ध पारस्परिक है जो कल्पना और अभिव्यक्ति के बीच सीमा तथा सम्बन्ध-सूत्र बनाती है।[39]

इस प्रकार छायावादी कवियों और आलोचकों ने कल्पना को बहुत ऊँचा स्थान दिया है।

राष्ट्रीय जागरण के फलस्वरूप सारे देश में रोमांटिक लहर

"जब तक समाज के उपकार के लिए कवि की लेखनी ने काम न किया हो, तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द-वैचित्र्य तथा अलंकारों पर भूल कर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नहीं बैठा सकते जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियों को स्पंदित करके उसमें जीवन डालने का उद्योग किया है।"[40] इस प्रकार सही अर्थ में प्रत्येक जीवित साहित्य मे राष्ट्रीयता व सामाजिकता का समावेश अवश्य रहता है। प्रसाद के इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि प्रारम्भ से ही छायावाद मे राष्ट्रीय चेतना विद्यमान थी। साहित्य ही समाज का दर्पण है। इसलिए वह समाज व युग के प्रभावों से परे हो ही नही सकता। छायावादी काव्य उस परिस्थिति मे पनपा जब हमारा देश दासता की बेड़ी मे जकड़ा हुआ था। स्वतन्त्र होने के लिए लोग जगह-जगह जागरूक हो रहे थे। देशवासी चारो तरफ से प्रताड़ित किये जा रहे थे। विषमता की खाई में इतनी गहरी थी कि उसमें से निकलना दूभर था। राष्ट्रीय आन्दोलनों की असफलता तथा सत्ता की शोषक नीतियों का प्रभाव छायावादी कविता पर भी पड़ा जिससे वह पलायनवादी हो गयी। राष्ट्रीय चेतना के महासागर में विकसित होने के कारण परोक्ष रूप से राष्ट्रीय उल्लास व्यक्त है। छायावादी काव्य में हम देखते है कि कवि सोचता है कि देश के स्वतन्त्र हो जाने पर गॉव मुक्त हो जायेगा और गाव की मुक्ति के साथ-साथ अस्पृश्यता का भी अन्त होगा। इस भावना को वह अपने गीत के माध्यम से करता है -

"प्रथम देश स्वाधीन बन सके,
यही परम हो लक्ष्य हमारा।
फूँकें युग जागरण शख हम,
जन स्वतन्त्रता का दे नारा।
मुक्त देश के सग ही होंगे,
गाव मुक्त गावों के संग जन।
साथ कटेगे सब के बन्धन,
होंगे संग ही कष्ट निवारण"।[41]

इस प्रकार कवि अपने गीतों के माध्यम से मनुष्यों में जागरण पैदा करना चाहता है और आगे बताता है कि स्वतन्त्रता के बाद और सारे कष्ट स्वयं ही दूर हो जायेंगे। निराला जी की भी राष्ट्रीय भावना विश्व मंगल में परिणत हो जाती है। उनके विचार से सामाजिक या राष्ट्रीय चेतना एक उच्चकोटि की वस्तु है। कवि की सामाजिक भावना परिष्कृत होकर लोक मंगल में बदल जाती है। निराला की साधना स्थल मातृभूमि है और उनकी समस्त साधना मातृभूमि के प्रति समर्पित है -

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हो तेरे चरणों पर, मां
मेरे श्रम-सचित सब फल।[42]

महादेवी के गीतों में भी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना की अर्न्तधारा विद्यमान है। वे अपनी मातृभूमि की दुर्दशा पर क्रन्दन करती हुई कहती है -

कहता है जिनका व्यथित मौन
हमसा है निष्फल आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास रेख
जिनकी जग में पाई न देख,
उन सूखे होठों के विवाद
में मिल जाने दो हे उदार
फिर एक बार बस एक बार।[43]

छायावादी कवि दुःख, निराशा, दमन, पराधीनता से घिरे वातावरण में राष्ट्रीय व सामाजिक चेतना को गीतों के माध्यम से बड़े जोर शोर से फैलाते है। प्रसाद जी कितनी प्रबल प्रेरणा देते हैं -

हिमाद्रि तुंग श्रृग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्जवला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो
दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पण्य पन्थ है

बढ़े चलो बढ चलो।[44]

काव्य रचना के समय सामाजिक वातावरण का प्रभाव विशेष रूप से पड़ता है। कवि कभी समाज से परे काव्य रचना कर ही नहीं सकता। छायावादी काव्य उस समय उत्पन्न हुआ जब देशवासी स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने को तैयार थे। कवियों ने भी अपनी रचना के माध्यम से देशवासियों को जागृत करना शुरू किया।

पन्त जी पूरी मानवता को स्वतन्त्रता के प्रति जागरूक करना चाहते है। और बार-बार अपनी कविताओं के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है, वे लिखते हैं -

हमको निर्मित करना नव,
राष्ट्रीय मानस दिग् विस्तृत।
चैतन्य धरा जीवन का,
मन का कर पूर्ण समन्वित।"[45]

इस तरह छायावादी कवि राष्ट्रीय भावना का खुल कर प्रचार करते हैं, और देश के प्रति समर्पण भाव जगाते हैं।

निष्कर्ष रूप में छायावाद में राष्ट्रीयता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। छायावाद की उत्पत्ति मूलक शक्तियां उस युग के राष्ट्रीय व सामाजिक परिस्थिति से प्रभावित है। और इसी राष्ट्रीयता का प्रभाव कवियों के अर्न्तमन से गीत के रूप में फूट पड़ा। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि छायावाद एक नवीन लक्ष्य की पूर्ति के लिए साहित्य के क्षेत्र में उतरा था वह किन्हीं विशिष्ट सिद्धान्तों का उपजीवी काव्य नहीं था। उसने कई श्रोतों से प्रेरणा ग्रहण की और कुछ ऐसे सामान्य तत्व अपनाये जो उसकी लक्ष्य सिद्धि में सहायक हो सके। छायावाद को लक्ष्य सिद्धि की चिन्तना अधिक थी, सिद्धान्त निरूपण की कम। इनके काव्य का उद्देश्य लोकोत्तर आनन्द न होकर लोक आनन्द था। इन्होंने मानव जीवन को वह आलोक पथ प्रदान किया जो उसे सामान्य जीवन से ऊपर उठने का संकेत देती है। विश्व मानवतावाद छायावाद का प्रमुख लक्ष्य रहा। तथा समस्त प्राकृतिक परिवर्तनों को अपने काव्य में स्थान दिया और प्रकृति का उपादेय रूप समस्त मानव जाति के लिए प्रस्तुत किया। छायावाद को एक बहुकोणीय, बहुरंगी, बहुपक्षी काव्य प्रवृत्ति कह सकते है। जिसके उद्‌गम प्रेरणा स्रोत विशेषताओं एवं प्रमुख प्रवृत्तियों के विषय में कवि व समीक्षक जो इतना इधिक मत वैषम्य रखते है उसका

मूल कारण छायावाद की विविधमुखी सम्पन्नता ही है। इसमें एक ही साथ अनुभूति की प्रामाणिकता अभिव्यक्ति की नवीनता और वक्रता है, पलायन और जीवन यथार्थ से प्रतिबद्धता है वह यदि स्वप्न सृष्टि का काव्य है तो स्वप्न भंग का भी है। इसमें जागरण भी है कुण्ठा भी ,यदि स्वानुभूति है तो सर्वानुभूति की अभिव्यक्ति भी है।

इस युग में महाकाव्य की अपेक्षा गीतिकाव्य के विवेचन में अधिक विदग्धता का परिचय मिलता है। प्रसाद ने महाकाव्य का निराला महादेवी व रामकुमार वर्मा ने गीतिकाव्य का पंत ने गीत गद्य का विवेचन किया है। छायावादी कवि पूर्ववर्ती रचनाकारों की अपेक्षा काव्य के भेदों की विवेचना में अधिक संलग्न थे। इस प्रकार हम छायावाद को हिन्दी काव्य साहित्य की एक युगान्तकारी घटना ही कह सकते है।

ऐसे उदात्त भावों को केवल भावों की भाषा में ढाल देने पर ही नहीं हो जाता वरन् उसके लिए विशिष्ट कला की अपेक्षा रहती है। ऐसी कला जिसमें विशिष्ट भावों के साथ संतुलन हो सके। इसलिए छायावाद में नवीन भावों के साथ कला सम्बन्धी नवीन प्रयोग हुए है। निराला पन्त व रामकुमार वर्मा ने काव्य-शिल्प का विवेचन मुख्य रूप से किया है। प्रसाद, महादेवी व मुकुटधर पाण्डेय की मान्यताएँ बहुत संक्षिप्त है। इनका विचार है कि काव्य भाषा में लाक्षणिकता, चित्रात्मकता, वक्रता और सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान को विशेष स्थान मिलना चाहिए पंत ने रागात्मक चित्रभाषा का प्रयोग किया है यह स्थापना मनोवैज्ञानिक आधार पर की गयी है। सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते है - "भाषा की अन्य प्रवृत्तियों का मर्म उद्घाटन छायावादी कवियों की ही देन है।"[46] इसके अलावा इन कवियों की काव्य दृष्टि अलंकार छन्द बिम्ब शैली सभी क्षेत्रों में बदली है। क्योंकि द्विवेदी युग तक काव्यालंकार का प्रयोग परिस्थिति बर्णन एवं रूप चित्रण के लिए होता था,Xपरन्तु द्विवेदी युग तक काव्यालंकार का प्रयोग परिस्थिति वर्णन एवं रूप चित्रण के लिए होता था, परन्तु छायावाद में कला का उद्देश्य परिस्थिति की खोज एवं भाव निरूपण हो गया।

छायावादी कवियों का योगदान काव्य चिंतन में पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इन्होंने काव्य के अंगों का परम्परा मुक्त विवेचन न करके मौलिक चिन्तन किया है। काव्य का स्वरूप रस काव्य के तत्व, वर्ण्य विषय व शिल्प विवेचन में इनके काव्य चिंतन की स्पष्ट छाप है। अब आगे इसी आधार पर हम इन कवियों पर विचार करेंगे।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्र0सं0	नाम ग्रन्थ	रचनाकार	पृ0 सं0
1.	हिन्दी आलोचना का इतिहास	डॉ0 रामदरश मिश्र	37
2.	चिन्तामणि (भाग-1)	रामचन्द्र शुक्ल	28
3.	भारतेन्दु ग्रन्थावली (भाग-1)	भारतेन्दु हरिशचन्द्र	721
4.	आनन्द कादम्बिनी (पत्रिका)	बदरी नारायण चौधरी	187
5.	हिन्दी साहितय बीसवीं शताब्दी	नन्द दुलारे बाजपेयी	56
6.	हिन्दी आलोचना	डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी	21
7.	सरस्वती पत्रिका	दिवेदी	311
8	महावीर प्रसाद दिवेदी और उनका युग	डॉ0 उदय भान सिंह	337
9	हिन्दी नवरत्न	मिश्रबन्धु	208
10.	हिन्दी नवरत्न	"	147
11	हिन्दी नवरत्न	"	224
12	सरस्वती	"	454
13	हिन्दी आलोचना	डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी	39
14.	बिहारी सतसई	पद्म सिंह	7
15.	बिहारी सतसई	"	14
16.	देव और बिहारी	कृष्ण बिहारी मिश्र	63
17.	देव और बिहारी	"	93
18.	मतिराम ग्रंथावली (भूमिका)	"	1
19	देव और बिहारी	"	82
20.	बिहारी और देव	लाला भगवानदीन	2
21.	निबन्धावली	बालमुकुंद गुप्त	546
22.	"	"	544

23	हिन्दी साहित्य का इतिहास	श्याम सुन्दर दास	344
24	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	492
25	हिन्दी साहित्य का इतिहास	"	527
26	हिन्दी आलोचना	विश्वनाथ त्रिपाठी	50
27	वक्तव्य, विश्व प्रपंच	रामचन्द्र शुक्ल	
28	विश्व प्रपच	"	12
29	विश्व प्रपंच	"	67
30	विश्व प्रपंच	"	68
31·	चिन्तामणि	"	46
32·	हिन्दी आलोचना	विश्वनाथ त्रिपाठी	46
33·	सूरदास	रामचन्द्र शुक्ल	36
34·	हिन्दी आलोचना	विश्वनाथ त्रिपाठी	70
35·	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	747
36·	अपरा §विधवा§	निराला	57-58
37	प्रगतिवाद	शिवदान सिंह चौहान	43
38	रोमांटिक साहित्यशास्त्र	डॉ0 देवराज उपाध्याय	11
39	"	"	86
40·	इन्दु कला 3 किरण 5	जयशंकर प्रसाद	
41	लोकायतन	पंत	50
42·	गीतिका	निराला	20
43	नीहार	महादेवी	48
44	चन्द्रगुप्त	प्रसाद	170
45·	लोकायतन	पंत	171
46·	आ0 हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धान्त	सुरेश चन्द्र गुप्त	464

अध्याय - ३

प्रसाद का काव्य और उनका काव्य-चिंतन

प्रसाद का काव्य और उनकी विचारधारा ·

प्रसाद का आविर्भाव जिस युग में हुआ था वह परिवर्तन का समय था। राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में एक नवीन चेतना का प्रसार हो रहा था। आलोचकों ने इसे सुधार युग कहकर सम्बोधित किया है।

राजा राममोहन राय के नेतृत्व में ब्रह्म समाज की स्थापना एवं उनके द्वारा किये गये सामाजिक सुधार ने समाज में उत्पन्न कुरीतियों के प्रति एक विद्रोह कर दिया था। दूसरी तरफ रामकृष्ण परमहंस व विवेकानन्द के सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भी साहित्य में विशेष योगदान दिया। राजनीतिक क्षेत्र में गांधी जी का भी विशेष प्रभाव था।। इस प्रकार उन्नीसवीं शती में राष्ट्रीय और सास्कृतिक चेतना का उदय हुआ।

इसी बदलती परिस्थिति में आधुनिक हिन्दी साहित्य विकसित हुआ। जिसके प्रतिनिधि भारतेन्दु थे। भारतेन्दु के बहुमुखी प्रतिभा व रचनाशील व्यक्तित्व का प्रभाव प्रसाद पर पड़ा। भारतेन्दु के बाद आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी काव्य में सुधार भावना लेकर आये। भाषा के साथ भावगत विचार भी इस युग के काव्य में दिखाई देने लगा। जातीयता का स्थान राष्ट्रीय भावना ने ले लिया। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सन्दर्भ में कहा है - "नये युग का काव्य साहित्य यद्यपि नये निर्माण में लगा था पर वह पुरानी व्यवस्था को पूरा नही बदल पाया। छायावाद युग ने इस अभाव की पूर्ति की।"[1]

छायावाद हिन्दी साहित्य में एक क्रान्ति के रूप में अवतरित हुआ। खड़ी बोली शुद्ध रूप से इस काल में प्रस्तुत हुई। पल्लव में पन्त के शब्दों में - उसने तुतलाना छोड दिया, वह अब पिय को प्रिय कहने लगी।" छायावादी कलाकार ने मानव को उसकी मानवीयता में ईश्वर से महान मान लिया। अब कवि ने दार्शनिक भूमि पर खड़े होकर चिरन्तन सत्य का अंकन आरंभ किया,कामायनी विश्व के काव्यों में एक महान काव्य है। प्रसाद का आंसू उच्च कोटि का विरह काव्य है। छायावाद की समस्त विभूति प्रसाद के काव्य में दिखाई देती है। ये भारत को एक उन्नत राष्ट्र के रूप में देखने के इच्छुक थे। देश में व्याप्त अनेक सामाजिक कुरीतियों के दूर करने का भी इन्होंने प्रयत्न किया।

प्रसाद जी छायावादी व रहस्यवादी दोनों तरह के कवि थे। उस समय छायावादी

काव्य आलोचना का केन्द्र था। आचार्य शुक्ल ने कहा कि छायावाद और रहस्यवाद विदेशी अनुकरण पर साहित्य में आयें हैं। प्रसाद जी ने शुक्ल जी व उनके सहयोगियों की इस भ्रान्त धारणा को दूर करने के लिए छायावाद व रहस्यवाद पर दो चार निबन्ध भी लिखा। रहस्यवाद को इन्होंने भारतीय मानववादी अद्वैत चिन्तन धारा का स्वरूप माना। इस पर जोर देते हुए इन्होंने कहा कि रहस्यवाद ही स्वाभाविक काव्य है, रहस्यवाद से इतर काव्य अस्वाभाविक है। अत लेखक ने यह तर्क दिया कि मन संकल्पात्मक और विकल्पात्मक है। विकल्प ही विचार की परीक्षा करता है तर्क-वितर्क द्वारा श्रेय की प्रतिष्ठा करता है और संकल्प अनुभूति द्वारा सत्य को ग्रहण कर लेता है - "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है वह एक श्रेयमयी प्रेम रचनात्मक ज्ञान धारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्ति होती है वह निःसन्देह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेम और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।"[2]

प्रसाद ने रहस्यवादी काव्य धारा को आगे बढाने में समुचित योगदान दिया है। दूसरी तरफ विकल्पात्मक विवेकवाद भी धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। ऐसा साहित्य निर्मित होने लगा जिसमें आनन्द के स्थान पर दु ख की प्रतिष्ठा हुई। प्रसाद जी काव्य में काव्य और आनन्द के मौलिक अन्तर पर भी विचार करते हुए दिखाई देते हैं। ये रसमय काव्य में आनन्द की उपलब्धि मानते हैं अर्थात् रस आनन्द मय होता है और वह ब्रह्मानन्द सहोदर है। "भट्ट नायक ने साधारणीकरण से जिस सिद्धांत की पुष्टि की थी अभिनवगुप्त ने उसे अधिक स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि वासनात्मकतया स्थित रति आदि वृत्तियां ही साधारणीकरण द्वारा भेद विगलित हो जाने पर आनन्द स्वरूप हो जाती है। उनका आस्वाद ब्रह्म स्वाद के तुल्य होता है।"[3]

यथार्थवाद और छायावाद में प्रसाद जी ने यथार्थवाद, आदर्शवाद व छायावाद की व्याख्याए प्रस्तुत की हैं। ये भारतेन्दु काल की वेदनावादी कविता को यथार्थवादी कहते हैं। यथार्थवादी कविता में लघुता की ओर दृष्टि डाली गयी है। लघुता से प्रसाद जी का तात्पर्य है व्यक्तिगत जीवन के दु ख और अभावों का वास्तविक उल्लेख। इसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। प्रसाद जी ने छायावाद के अन्तर्पक्ष और बहिर्पक्ष की सुन्दर व्याख्या की है। इन्होंने छायावाद के बहिर्पक्ष की नवीनता का संबंध

प्राचीन शास्त्र की मान्यताओं से जोड़ दिया है। ये काव्य को दर्शन के साथ अनावश्यक रूप से सबद्ध करते हुए दिखाई पड़ते है। विवेकवादी और आनन्दवादी धाराओं के उद्गम और विकास की विवेचना इनके अद्भुत व्याख्या शक्ति की परिचायक है।

काव्य के स्वरूप और प्रयोजन के सम्बन्ध में प्रसाद विचार शास्त्रीय दृष्टि प्रदान करते हैं। ये काव्य को आत्मा की अनुभूति मानते है। व्यावहारिक व सैद्धान्तिक दोनों तरह से प्रसाद जी ने नयी कविता में अभिव्यजना की नवीनता को स्वीकार किया है। अपना आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि - "आत्मा मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।"[4] ये काव्य की प्रत्येक समस्या को आत्मानुभूति से हल करने की कोशिश करते हैं। तुलसी व सूर के वात्सल्य की भी वे तुलना करते हैं और कहते हैं - "क्या कारण है कि रामचन्द्र के वात्सल्य रस की अभिव्यंजना उतनी प्रभावशालिनी नहीं हुई जितनी सूरदास के श्याम की।"[5] इसका समाधान भी वहीं करते हैं और कहते हैं - "सूरदास के वात्सल्य में संकल्पात्मक मौलिक अनुभूति की तीव्रता है, उस विषय की प्रधानता के कारण·· जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता है वहीं अभिव्यक्ति अपने क्षेत्र में पूर्ण हो सकी है। वही कौशल या विशिष्ट पद रचनायुक्त काव्य शरीर सुन्दर हो सका।"[6] प्रसाद जी रहस्यवाद को भी आत्मा की अनुभूति मानते हुए कहते हैं - "काव्य में आत्मा के सकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।"[7] इन्होंने वेदों, उपनिषदों, आगम वादियों, सिद्धों और मीरा आदि हिन्दी कवियों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि - "वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।"[8] प्रसाद जी छायावाद पर भी विवेचन व विश्लेषण करते दिखाई पड़ते है। वे छायावाद का भी परिचय अपनी रचना में देते हैं - "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"[9] वे छाया शब्द पर विचार करते हुए निष्कर्षतः कहते हैं - "प्रयोग बाहय सादृश्य से अधिक आन्तर सादृश्य को प्रकट करने वाले हैं।"[10]

इस प्रकार आधुनिक काल में साहित्यिक भूमि पर कुछ मात्रा में अंग्रेजी, बंगला और संस्कृत का ज्ञान गाभीर्य हावी हो गया। अत इस द्वितीय उत्थान को स्वच्छन्दतावाद का युग न कहा जाकर उसी के गर्भ से निकलने वाला छायावाद कहा जाने जगा। जहाँ तक साहित्य का सबंध है, दिवेदी युग के बाद और अधिक उभरने वाला सांस्कृतिक जागरण छायावादी काल सीमा में दिखाई पड़ता है। इसीलिए कुछ आलोचकों ने इसे उग्र राष्ट्रीयता वादी ही कहना उचित समझा। इस युग के कवियों की दिवेदी युग की तुलना में एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि ये लोग जगत में आन्तरिक छाया का प्रक्षेपंकर देते थे। पहले तो छायावाद रहस्यवाद के रूप में ही जाना व लिखा जाता था किन्तु आचार्य शुक्ल ने छायावाद को रहस्यवाद से पृथक कर दिया और बताया कि - "छायावाद के पहले नये-नयें मार्मिक विषयों की ओर हिन्दी कविता प्रवृत्त होती जा रही थी, कसर थी तो आवश्यक और व्यजक शैली की, कल्पना ओर संवेदना के अधिक योग की। तात्पर्य यह है कि छायावाद जिस आकाक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था - जो धीरे-धीरे अपने स्वतनत्र ढर्रे पर श्री मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय के दारा हो रहा था।[1]" शुक्ल जी ने छायावाद को रहस्यवाद से एक समझने के भ्रम का निराकरण करते हुए बताया कि वस्तुत· छायावाद एक शैली है और रहस्यवाद अज्ञात प्रियतम अभिव्यक्ति वस्तु पक्ष से संबंध रचना।

प्रसाद छायावाद को रहस्यवाद और काव्य का मिश्रित स्वरूप मानते हैं। उनका विचार हैं कि आत्मा के गहन मनन के बाद जो अनुभूति होती है वही काव्य के रूप में प्रस्फुटित होती है। रहस्यवाद एक अंग के रूप में हो सकता है समूचा काव्य नहीं। छायावाद में जो प्रकृति वर्णन में आकर्षण है वह प्रकृति गत ही जान पड़ता है। क्योंकि प्रकृति तो जड़ है और आकर्षण चेतन व्यापार। इस प्रकार प्रकृति परक अनुभूति का या प्रकृति की अपेक्षानुभूति का, रहस्यवादी चित्रण तो मिलता ही है, ओरापित और अनारोपित चित्रण भी उपलब्ध होता है। अत· प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में जिस अनुभूति का निरूपण हुआ। वह भी काव्य का एक आधार है।

भारतीय दर्शन में जिस सर्ववाद का निरूपण मिलता है उसके अनुसार प्रकृति और प्राणी सभी एक ही तत्त्व के रूपान्तर है। सर्वेश्वर या सर्वात्मवाद के प्रति आस्था भारतीय

छायावादी व पश्चिमी रोमान्टिक दोनों कवियों में मिलती है।

प्रसाद ने तो स्पष्ट ही कह दिया है कि अहम् का इदम् में पर्यवसान प्रकृति के माध्यम से होता है। इनकी दृष्टि प्रकृति के उन व्यापारों पर अधिक पड़ी है। आगे हम कह सकते हैं कि छायावादी काव्य का अनुभूति पक्ष रागात्मक रहा है। छायावादियों की रागात्मक भावना सौन्दर्य प्रभावित है और सौन्दर्य आनन्द मय होता है। इस प्रकार रागात्मक काम, सौन्दर्य और आनन्द तीनों ही अपनी अधोमुखी भूमिका पर पृथक-पृथक प्रतीत होतें है। परन्तु यदि तीनों की अन्तिम अवस्था पर विचार किया जाय तो तीनों में भेद समाप्त सा दिखाई पड़ता है। प्रसाद ने इस विचार को कामायनी में पूर्ण रूप से चित्रित किया है।

इनके काव्य के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि ये रस सिद्धान्त के समर्थक थे तथा दार्शनिक दृष्टि से आनन्दवादी थे। ये संसार को दु:खमय नहीं मानते बल्कि सुख का सिन्धु मानते हैं।

प्रसाद उन चिन्तकों में है जो मूल सत्ता का जड़ और चेतन जैसा भेद नहीं स्वीकारकरतेबल्कि एक स्थिति विशेष की जड़ मानते हैं। ये काव्य में मौलिक अनुभूति की प्रेरणाकोप्रमुख स्थान देते हैं। मौलिक रूप में जो अनुभूति कवि हृदय में है, काव्य प्रणयन के क्षणों में उसी की सत्ता सर्वोपरि होगी। छायावाद की आवश्यकता क्यों पड़ी ? इस ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं - "आभ्यन्तर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली नया वाक्य-विन्यास आवश्यक था।"[12]

प्रसाद समन्वयवादी और पूर्ण मानवता के प्रतिष्ठापक थे। वे मानव जीवन के सम्यक और सम्पूर्ण विकास के लिए मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। इसलिए विकास को प्रगतिशील बनाने के लिए जीवनारम्भ में विरोध, प्रतिकूलता और कष्टों की स्थिति उन्हें आवश्यक लगी। मानसिक अवस्था जब दृढ हो जाती है तो प्रत्यावर्तन की गुंजाइश नहीं रहती और भेद

बुद्धि नष्ट हो जाने पर जीवन का श्रेयोन्मुखी विकास होता है। व्यावहारिक जीवन में इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है और जीवन की अकलुष धारा प्रशान्त गति से प्रवाहमान रहती है। इस प्रकार प्रसाद का साहित्य एक सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। वे युग, समाज, देश और मानव की जिन समस्याओं को उठाते है, उनका समाधान भी करते हैं। वे अपने व्यक्तिवादी रूप में भी वेदना करूणा व प्रेम दर्शन को अभिव्यक्ति करते हैं। क्रमश. एक उच्च भाव भूमि पर जाते हुए प्रसाद आत्मवाद, आनन्दवाद को अपनाते हैं। कामायनी का कवि अपनी विचारधारा को आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करता है, यद्यपि उसका व्यावहारिक पक्ष महान है।

प्रसाद काव्य की चेतना अपने युग, समाज और इतिहास से प्रभावित है। प्रसाद एक जागरूक कवि है और परिस्थिति की अवहेलना भी नहीं करते। उनके साहित्य में समाज, देश मानव, दर्शन आदि विषयों पर विचार बिखरे हुए हैं, जिससे उनकी चिन्तन प्रवृत्ति का आभास मिलता है। "उनका कृतित्व प्रमाणित करता है कि जिन रचनाकारों में खुद का अपना रचना संसार बना लेने का धैर्य होता है, वे स्वच्छन्दतावाद की सीमाओं के बावजूद स्वय का स्थापित कर लेते हैं और उन्हें नकारना सम्भव नहीं होता।"[13] प्रसाद मानव जीवन के सम्पूर्ण विकास के लिए मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करते हैं। इसलिए विकास को प्रगतिमुखी बनाने के लिए जीवनारम्भ में विरोध प्रतिकूलता और कष्टों की स्थिति उन्हें आवश्यक लगी। व्यावहारिक जीवन में इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप सभी समस्याओं का समाधान हो जाता है। इस प्रकार काव्य में प्रसाद की विचारधारा अनेक दिशाओं में प्रवाहित प्रतीत होती है। जिसका विवेचन हम आगे करेंगे।

{क} विचारधारा {ख} अभिव्यंजना

राष्ट्रीय दृष्टिकोण

प्रसाद साहित्य में राष्ट्रीयता विशेष रूप से दिखायी देती है। यह युग अंग्रेजों की दासता से अत्यन्त क्षुब्ध था। जन चेतना आक्रोश लिए हुए राष्ट्रीय परिवेश में अपना उत्सर्ग करने के लिए तैयार थी। इस राष्ट्रीय भावना में प्रसाद के पात्र अपना धर्म निर्वाह करते हुए दिखाई देते है। राष्ट्र के किसी भी भाग पर आक्रमण को सिंहरण समग्र आर्यावर्त पर आक्रमण समझता है। अलका समस्त आर्यावर्त के प्रति श्रद्धानत है वह अपने राष्ट्र प्रेम को व्यक्त करती है। प्रसाद ने अलका के मुख से राष्ट्रगीत कहला कर उसकी राष्ट्रीयता को प्रदर्शित करते हैं।

हिमाद्रि तुग श्रृंग से

प्रबुद्ध शुद्ध भारती-

स्वयं प्रभा समुज्जवला

स्वतन्त्रता पुकारती

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो

प्रशस्त पुण्य-पथ है बढ़े चलो, बढे चलो।[14]

इन पक्तियों में राष्ट्र-प्रेम की भावना के अलावा भारतीय संस्कृति का मूर्तिमान रूप खड़ा है। भारत की प्रशस्ति में कार्नेलिया (एक विदेशी युवती) का गाना विशेष महत्व रखता है -

अरूण यह मधुमय देश हमारा,

जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा[15]

इन्होंने राष्ट्रीय परिवेश में सभी पात्रों को मातृभूमि के प्रति श्रद्धानत रहने का नैतिक आदेश दिया है। वे स्कन्धगुप्त में लिखते हैं -

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरण का दे उपहार।

जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष

निछावर कर दें हम सर्वस्व हमारा प्यारा भारतवर्ष।[16]

इस प्रकार मल्लिका वैधव्य जीवन जीते हुए भी राष्ट्रीय परिवेश से पृथक नहीं हो सकी। शासक के प्रति घृणा के भाव रहते हुए भी उसने राष्ट्र के प्रति सर्वस्व बलिदान कर दिया। भारतीय इतिहास और संस्कृति के प्रति अनुराग के मूल में प्रसाद जी की राष्ट्रीय भावना कार्य करती है। वे किसी क्रान्तिकारी कवि की तरह उद्‌बोधन गीत नही गाते। उनके नाटकों में राष्ट्रीय भावना अवश्य प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत हुई है, किन्तु काव्य में रवीन्द्र की तरह सांस्कृतिक संकेत भी देती है।

प्रसाद के पुरूष व स्त्री दोनों पात्रों में राष्ट्रीय भावनाएं विद्यमान है। प्रसाद जी अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध करते हैं कि मानव के लिए सर्वप्रथम राष्ट्र है और उसके लिए अपने जीवन के आदर्श निष्ठ प्रेम का भी बलिदान किया जा सकता है। राष्ट्र प्रेम को स्वाधीनता के साथ सम्पृक्त कर निभाया जा सकें - यही धर्म है, स्वाभिमान है, तथा मानवीय कर्त्तव्य है। "वेदों में जिस प्रकार मातृभूमि की अमरता के लिए मर मिटने का सदेश दिया गया।"[17] उसी प्रकार हमें प्रसाद साहित्य में भी मिलता है।

मानवतावादी दृष्टिकोण

प्रसाद का साहित्य मानवता का संदेश देता है। विश्व के आधुनिक वातावरण में जो स्वार्थपरता एवं व्यक्तिवाद की घिनौनी भावना उभर कर आ गयी है, उसको समाप्त करने के लिए इन्होंने मानवतावाद को सशक्त स्वरों में दोहराया है। मानव में अपने कर्त्तव्य धर्म से हटकर केवल सुख भोगने की लालसा विद्यमान रह गई। इसको समाप्त करने के लिए प्रसाद ने मानवतावाद की सशक्त स्वरों में पुन: प्रतिष्ठा स्थापित की है। प्रसाद का मानवतावादी दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है, बल्कि देशकाल और धर्म की परिधियों को तोड़कर विश्व बन्धुत्व की भावना व्यक्त करता है। कामायनी की श्रद्धा मनु को निरूपाय और निराशामय देखकर मानवीय दृष्टिकोण को लेकर ही सहचर बन जाती है -

दब रहे हो अपने ही बोझ,
खोजते भी न हो अबलंब,
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न,
उऋण होऊँ मै बिना विलम्ब।[18]

एक प्राणी दूसरे प्राणी के प्रति हृदय-शून्यता को व्यक्त करता है इससे कवि बहुत दुःखी है-

यह विराग सम्बन्ध हृदय का
कैसी यह मानवता ?
प्राणी को प्राणी के प्रति बस
बची रही निर्ममता।[19]

सुख से जीयो और जीने दो - सिद्वान्त के प्रतिपादक प्रसाद सम्पूर्ण मानव का हृदय विश्वजनीन एवं उदात्त रूप में देखना चाहते हैं -

औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओं,
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ।[20]

स्वार्थपरता के साथ शोषण की प्रवृत्ति को मानवतावाद की संज्ञा नहीं दी सकती है। श्रद्धा मनु धिक्कारते हुए कहती है -

मनु क्या यही तुम्हारी होगी

उज्जवल नव मानवता ?

जिसमें सब कुछ ले लेना हो

हत बची क्या शवता"।[21]

पुरुष के निर्भय हृदय में करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित करने की दृष्टि से प्रसाद की श्रद्धा कहती है -

दया, माया, ममता लो आज,

मधुरिमा लो, अगाध विश्वास,

हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ

तुम्हारे लिए खुला है पास।[22]

प्रसाद मानवता के प्रारम्भिक विकास के लिए सत्य भावों की दिव्य भूमि को जन्म देकर सीमाओं की रेखायें मिटा देना चाहते हैं। प्रसाद का आंसू खण्ड काव्य इसका विशिष्ट उदाहरण है। नाटकों के माध्यम से भी वे मानवतावाद को बढ़ावा देते है। प्रसाद की यह कामना व्यर्थ न रही -

दाता सुमति दीजिए

मानव हृदय भूमि करुणा से सीचकर

बोधन-विवेक-बीज अकुरित कीलिये।[23]

प्रसाद जीव मात्र पर दया करने का विचार करते हैं। राज्य श्री में समस्त मानवता को दुःख रहित, करुणामय, प्रेम से आपूरित, द्वेष रहित देखने की कामना प्रकट करते हैं -

करुणा कादम्बिनी बरसे,

दु·ख से जली हुई धरणी प्रमुदित हो सरसे।

प्रेम-प्रचार रहे जगती तल दया दान दर से।

मिटे कलह शांति प्रकट हो अचर और चर से।[24]

जब मानव नैतिक मूल्य अहिंसा, क्षमा, करुणा, प्रेम समानता, सत्यवादिता को भूल रहा था तब प्रसाद के पात्र इस आदर्श को पुनः स्थापित कर सम्पूर्ण विश्व को सुख शांतिमय देखना चाहते हैं। स्कन्धगुप्त नाटक का पात्र मातृगुप्त मगलमय भावना को व्यक्त करते हुए कहता है -

सर्वेऽपि सुखिन· सर्वे सन्तु निरामया·

सर्वे भद्राणि पश्यन्त मा कश्चिद् दु·ख माप्नुयात्।।

विश्व मानवता की प्रतिष्ठा के लिए ही प्रसाद ने कामायनी की कथा कल्पित की और इसीलिए उन्होंने विकास के प्रारम्भिक बिन्दु को सर्वप्रथम पकड़ा। कामायनी मानवता के विकास की कहानी है। विश्व एकांगी विकास से वे रुष्ट थे। मानवता नवीन आस्था लेकर विकसित हो, यही उनका मत था। कामायनी में सबको अपनी योग्यता का विस्तार करने की प्रेरणा दी गयी है। प्रसाद ने प्राच्य व पाश्चात्य सभी दर्शनों से भी प्रेरणा ली है। को समन्वित रूप से ग्रहण करके उन्होंने प्रेरणा ली -

उसके पाने की इच्छा हो "तो योग्य बनो" कहती कहती।
वह ध्वनि चुपचाप हुई सहसा जैसे मुरली चुप हो रहती।।[25]

परन्तु इन समस्याओं का निदान उन्हें शैव दर्शन के "सामरस्य" सिद्धान्त में मिला। जीवन में समरसता आवश्यक है। उसके बिना जीवन का विकास संकीर्ण होगा। जीवन के अतिवादों को दुष्परिणाम प्रसाद ने इसलिए दिखाया है कि सघर्षो के बाद ही मानवता निखरेगी। यदि समाज मानवतावादी दृष्टिकोण को स्वीकारते हुए प्रेम और करूणा का भाव पैदा करे तो मानवता इस अशान्ति को छोड़कर संतोष के साथ जीना शुरू कर दे। प्रसाद ने कामायनी में कहा है

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय,
समन्वय उसका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।[26]

प्रसाद का साहित्य मानवतावादी है - इसी कारण भारतीय संस्कृति के आदर्श परक मूल्यों का अस्तित्त्व सुरक्षित रखने में प्रसाद जी सफल हुए। ये विश्व से युद्ध की विभीषिका, वर्ग भेद, असमानता, ईर्ष्या, द्वेष, रक्त-क्रान्ति को समाप्त कर प्रेम एवं करूणा का साम्राज्य देखने को उत्सुक है। मानवता को विजयिनी बनाने के लिए प्रसाद उसकी पुर्नप्रतिष्ठा चाहते थे। हृदय हीन मानव उच्च सस्कृति को जन्म नही दे सकता। हर जगह पर केवल बौद्धिकता व तर्क लाने से हमारा कोई अस्तित्त्व नही हो सकता। भूखा व्यक्ति क्या तर्क से पेट भरेगा, उसको चाहिए हार्दिक सहानुभूति। जब हममें सवेदना का संचार होगा तो तत्काल हम उसके लिए अन्न का प्रबन्ध कर सकेंगे। अति भावुकता से भी जीवन का सन्तुलन बिगड़ जाता है। कोरी बौद्धिकता से तो विनाशकारी परिणाम निकलता है। श्रद्धा मानव का हाथ इड़ा के हाथ में देती हुई कहती है -

यह तर्कमयी तु श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय।

इसका तू सब सताप निश्चय, हर ले हो मानव भाग्य उदय।।[27]

मनु का कठोर हृदय अब सरस हो गया है। वे श्रद्धा के प्रतिकृतज्ञ हैं। वे श्रद्धा के प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन इस प्रकार करते हैं -

हे सर्व मंगले। तुम महती,

सबका दुःख अपने ऊपर सहती,

कल्याणमयी वाणी कहती,

तुम क्षमा निलय में ही रहती।[28]

श्रद्धा व बुद्धि के समन्वय से कवि जीवन में सन्तुलन लाना चाहता है। एकांगी विकास का परिणाम भयंकर होता है। यह मनु के जीवन में दिखायी देता है।

§क§ नारी प्रतिष्ठा

वैदिक काल से ही नारी को समाज में प्रतिष्ठित स्थान मिला है। अथर्ववेद में स्त्री के अधिकारों के सन्दर्भ में कहा गया है -

शिवाभव पुरूषेभ्यो गाभ्यो अश्वभ्यः शिवा।

शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।।3/28/3

इह प्रिय प्रजायै ते समृध्यता यस्मिन् गृहे।

गार्हपव्याय जागृहि एना पत्या तन्वं से।। 14/1/21

अर्थात हे स्त्री - तू पुरूषों, गायों, घोड़ो तथा गृह सम्बन्धी सर्व स्थानों के लिए और हमारे लिए कल्याण कारक बनकर घर में आ। यहां तेरी सन्तति के हित वृद्धि हो। घर के कामों में तू जागरूक रह। मनु ने तो कहा है - 'जहा स्त्रियों की प्रतिष्ठा होती है वहां देवता निवास करते है'।[29] वैदिक युग की परम्परा के अनुसार प्रसाद ने नारी की सत्ता स्वीकार की है।

नारी उत्थान की भावना प्रसाद साहित्य में विशेष रूप से दिखायी पड़ती है। नारी की दशा को देख कर ये बहुत दु.खी थे। समाज सुधारक व धार्मिक नेता दोनों के ढकोसलों से परिचित थे। इसलिए वे इन दोनों से दूर रहना चाहते थे। इन्होंने नारी में अपने साहित्य के माध्यम से ऐसी जागृति पैदा की जिससे वह अपनी शक्ति को स्वयं ही पहचान सके। नारी की चेतना अधकार मय थी। प्रसाद साहित्य ने उस आवरण को दूर फेंका। महान कार्य के लिए उत्सर्ग करना भी नारी का सर्वश्रेष्ठ गुण है।

ध्रुवस्वामिनी में मन्दाकिनी चन्द्रगुप्त के लिए महान् से महान् त्याग करने को तत्पर है - "यह कसक अरे आसू सहजा"[30]

प्रसाद ने नारी को गरिमामय दृष्टि से देखा, उसके भीतर आशा, विश्वास, क्षमा, श्रद्धा, त्याग-सकल्प एव मानवता का दर्शन करते हैं। तभी तो नारी की इतनी सुन्दर परिभाषा करते हैं -

हे सर्व मगले तुम महती,
सबका दु.ख अपने पर सहती,
कल्याण मयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में हो रहती।[31]

नारी विश्व-कल्याण की प्रतिमूर्ति है। यदि उसका कोमल रूप सुन्दर है, तो कठोर रूप अद्भुत। प्रसाद के नाटकों में यह प्रेरणा बहुमुखी रूप से आयी है, तथा उद्बोधन की महान शक्ति के रूप में उभरी है। दृढ़ कर्म-शक्ति की स्थापना करते हुए भाग्यवाद के तीव्र विरोध में देवसेना की पुकार सुनिये -

देश की दुर्दशा निहारोगे, डूबते को कभी उबारोगे
हारते ही रहे, न है कुछ अब, दांव पर आपको न हारोगे,
कुछ करोगे कि बस सदा रोकर-दीन हो दैव को पुकारोगे।[32]

प्रसाद के साहित्य में जहां श्रद्धा, इड़ा, वासवी, मल्लिका, जयमाला, राज्यश्री, कार्नेलिया, तितली आदि महान चरित्र है वहीं छलना, सुरमा, सुवासिनी आदि प्रतिशोधात्मक भावनाओं से भरी हुई हैं। किन्तु बाद में ये सभी पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई अपने दुष्कृत्यों के लिए क्षमा-याचना करती हुई दिखायी देती है। प्रसाद की नारी महा मानवी है। नारी के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप में विकसित करने में इन्होंने कोई कोर कसर नहीं छोड़ा। "नारी के बिना गृहस्थ जीवन अपूर्ण है। मानवता असुरक्षित, नारी पीड़ा मय है, करूणामय है और वह देवी है जो विश्व शान्ति की स्थापना करने में समर्थ है। वैदिक सूत्रों ने भी इसी आदर्श को स्थापित किया गया है।"[33]

(ख) पारिवारिक जीवन

प्रसाद ने सामाजिक सन्दर्भो के सम्बन्ध में नैतिक व्यवस्था प्रदान कर उसे संगठित करने पर बल दिया है। पाश्चात्य सामाजिक व्यवस्था को इन्होंने समर्थन नहीं दिया।

नारी स्वतन्त्रता एवं रूढि ग्रस्त परम्परा को तोड़ने के लिए प्रसाद ने क्रान्ति के स्वर दिया किन्तु माता-पिता, पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि सम्बन्धों की प्रस्तावना में आदर्शवाद को निष्ठा के साथ स्थान दिया। वभ्रू वाहन में पितृ-धर्म की ओर सकेत करते हुए पिता की आज्ञाओं का पालन करना कर्तव्य स्वीकार किया है। करूणालय में भी पुत्र को पितृ आज्ञा का पालन करना चाहिए, यही उसका सत्य जीवन धर्म है -

पिता परम गुरू होता है, आदेश भी,
उसका पालन करना हितकर धर्म है।"[34]

आम्भीक जैसे नैतिक विहीन भाई का भी चित्रण है। पुत्री को पुत्र के स्थान पर महत्व दिया गया है। पति-पत्नी के सम्बन्धों की पृष्ठभूमि पर भारतीय नारी का आदर्शमय चित्र उपस्थित किया गया हैं। पति को ईश्वर माना गया है, उसे सुख-दुःख में ईश्वर का समभागी बताया गया है। कामायनी की श्रद्धा मनु को असद् से सद् की ओर प्रेरित करती है। इन्होंने दाम्पत्य जीवन में एक दूसरे को एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्यशील निष्ठावान रहने पर बल दिया है। इन्होंने समाज देश, घर की रक्षा का संकल्प दुहराया है। भाई-बहन के पावन सम्बन्धों के सन्दर्भ में प्रसाद ने आदर्श स्थापित किया है। पद्मावती अपने सौतेले भाई कुणीक के सद् भविष्य के लिए कृत-सकल्प है। कर्त्तव्य विहीन पात्रों को प्रसाद ने नैतिक समर्थन नही दिया है। भाई के प्रति धर्म निर्वाह करने वाले पात्रों में स्कन्धगुप्त सर्वोपरि है। "अजातशत्रु की विमाता वासवी पुत्र रहित होते हुए भी कुणीक के अच्छे भविष्य के लिए चिन्तित है। उसके रक्षा के लिए ममता लिए हुए अपने भाई के पास पहुँचती है। उसका पारिवारिक दृष्टिकोण आदर्शमय है।"[35]

प्रसाद ने पारिवारिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में कर्त्तव्य को महत्व दिया है तथा नि:स्वार्थ बधन में बधकर एक दूसरे के प्रति भावना शील रहने के लिए संदेश प्रसारित किया है।

§ग§ धार्मिक आस्था व ईश्वर पर विश्वास

धर्म का अर्थ कर्त्तव्य अथवा धारणा है। "घृ" धारण धातु से धर्म शब्द बना है। धर्म का उद्देश्य करूण का प्रवाह, क्षमा का सचार मानव सेवा व स्वय को अन्यों के प्रति समर्पित कर देना है। "जिस वृत्ति में कल्याण का अभ्युदय हो वही धर्म है।"[36] मानवीय

स्वभाव पर जो अनुशासन करे वही धर्म है।"[37] प्रसाद ने धर्म के सन्दर्भ में विशदता के साथ विचार किया है। कंकाल के ब्रह्मचारी धर्म का सन्देश प्रचारित करते हुए गाते हैं -

कस्य चित्किमपि नोपहरणीय मर्म वाक्यमपि नोच्चरणीयम्,
श्रीपते पद युग स्मरणीयं लीलया भव जलंतरणीयम्।[38]

धर्म का सम्बन्ध हृदय और ज्ञान से है न कि बुद्धि के तर्कों अथवा सम्पदा से। कर्मकाण्ड की दूषित प्रणालियों का विरोध करते हुए प्रसाद ने बलि का निषेध किया। यज्ञ को तो वे स्वीकारकरते है परन्तु उसमें होने वाली हिंसा को नहीं। कामायनी में पशु-बलि के प्रति श्रद्धा का विद्रोह इस तथ्य को व्यक्त करता है कि प्रसाद का धर्म मानव हित के लिए है न कि दु.खवाद की अभिवृद्धि के लिए। प्रसाद ने धर्म को कर्म का दूसरा रूप माना है। यह दृष्टिकोण इन्होंने गीता से ग्रहण किया है। श्रद्धा गीता की मूर्तिमान स्वरूप है। श्रद्धा मनु के अन्दर श्रद्धा व विश्वास की शक्ति भरती है। निष्काम और श्रद्धा युक्त कर्म ही सर्वश्रेष्ठ है -

श्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्त कृतं च यत्।
असदि व्युच्येत पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।[39]

निष्काम कर्म से ही औरो की रक्षा होती है। ऐसा प्रसाद काविचार है -

ये प्राणी जो बचे हुए हैं,
इस अचला जगती के
उनके कुछ अधिकार नही,
क्या वे सब ही हैं फीके।[40]

विभिन्न देवी-देवताओं पर भी प्रसाद ईश्वर के एक निष्ठ अस्तित्त्व को ही स्वीकारकरते हैं प्रसाद ने अवतारवाद को भी स्वीकारा है -

उतारोगे अब कब भू-भार,
बार-बार क्यो कह रखा था लूंगा मे अवतार।[41]

प्रसाद ने ईश्वर को व्यापक विभु एव अनादि कहा है। वे पतितों के उद्धारक हैं - उनके स्मरण मात्र से ही पतित, पावन हो जाते हैं -

पिता सब का वही है एक
पतित पद् पद्म में होवे,
तो पावन हो ही जाता है।[42]

प्रसाद ने अपने सर्व व्यापक विभु को करुणा का सागर कहा है। प्राणी का एक मात्र उद्धारक ईश्वर ही है। समस्त संसार का पोषक भी ईश्वर को स्वीकार करते हैं।

{घ} क्षमा व अहिंसावादी विचार

भारतीय-संस्कृति के परम्परागत नैतिक मूल्यों में क्षमा को बहुत महत्व देते हैं। यही तत्व मानव को क्रोध, प्रतिहिंसा व घृणा के पथ से हटाकर करुणा की ओर ले जाता है। प्रसाद साहित्य में कवि अपने पात्रों को क्षमाशील बनने का अवसर प्रदान करता है। कामायनी की श्रद्धा ध्रुवस्वामिनी, हर्ष व राज्य श्री, देव सेना, गौतम, पद्मा, वासवी, देवकी, स्कन्धगुप्त आदि अनेक पात्र अपनी क्षमा भावना को व्यक्त कर नैतिकता को सम्बल प्रदान करने में समर्थ हुए हैं। करुणा के माध्यम से हिंसक के हृदय पर विजय पाना ही इसका समाधान है। यह संसार नश्वर है तो फिर प्रतिशोध कैसा ? क्षमा मानवीय धर्म है। यह देवताओं का नहीं अपितु मनुज समाज का अनिवार्य तत्त्व है। प्रसाद ने क्षमा को अहिंसा का अस्त्र तथा सुधार का प्रतीक कहा है। समाज की रक्षा के लिए मानव साधन है। वह धर्म को स्वीकार करता हुआ जीवों की रक्षा करें और प्राणी की रक्षा के लिए कृत संकल्प रहे। प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा के माध्यम से सभी को जीवन जीने का अधिकार है—इस तथ्य की पुष्टि की है -

> पर जो निरीह जीकर भी कुछ,
> उपकारी होने में समर्थ,
> वे क्यों न जियें उपयोगी बन,
> इसका मैं समझ सकी न अर्थ।[43]

कामायनी की श्रद्धा हिंसामयी सृष्टि से दूर रह कर मानवतावादी सृष्टि का उदय चाहती है। जिस सृष्टि में नर-संहार, रक्त-पात एव अंध- परम्पराओं के अनुसार जीवन बलि की प्रथायें प्रचलित हो वह मानवी सृष्टि नहीं कही जा सकती। विज्ञान की अभिनव उपलब्धियों ने मानव को शान्ति पथ से हटाकर पशुवत जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है -

> मनु । क्या यही तुम्हारी होगी
> उज्जवल नव मानवता ?
> जिसमें सब कुछ ले लेना ही
> हंत । बची क्या शवता।[44]

कामायनी मानव-हिंसा की ही नही जीव हत्या की विरोधिनी है। वह जीवन अधिकार की भावना व्यक्त करती है -

ये प्राणी जो बचे हुए हैं,
इस अलग जगती के,
उनके कुछ अधिकार नही,
क्या वे सब ही फीके ?[45]

प्रसाद ने अपने पात्र अशोक, सिकन्दर को भी अहिसा मार्ग लेकर दाण्डायन से कहलाया है - "जय घोष तुम्हारे चरण करेंगे, हत्या, रक्तपात और अग्नि काण्ड के लिए उपकरण जुटाने में मुझे आनन्द नहीं है।"[46] प्रसाद ने अहिंसावाद को समर्थन देते हुए गाधीवादी विचारधारा का उपादेय सिद्ध किया है।

§ड§ प्रसाद : छायावादी कविता में दलित वर्ग

प्रसाद साहित्य में दलितों का चित्रण बहुत मर्महारी है। कवि देखता है कि समाजमेंधनी-निर्धन के बीच कितनी असमानता व्याप्त है। दलितों की स्थिति, समाज में बदतर है। उसके साथ-साथ स्त्रिया भी इसी श्रेणी में आती हैं। क्योंकि उनका कार्य क्षेत्र केवल घर परिवार तक ही सीमित है। इसके बदले में पुरुष उन्हें यातनाएं देता ही रहता है। इसीलिए कवि उनके सम्मान में अचानक मुखर दिखाई देता है -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष श्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।[47]

आंसू उनका जीवन्त विरह काव्य है। इस वर्णन को करने में चूकते नही है। ये अतीत के खण्डहरों तक गये और वहां से जीवन्त प्रतिध्वनियां लेकर साहित्य साधना पर वापस हुए और उन ध्वनियों की परिणति स्वरूप हमें अतीतका स्वर्णिम विहान मिला। दलितों की बहुल्यता नगरों की अपेक्षा गांवों में अधिक है। क्योंकि जमींदारी प्रथा में ये लोग शारीरिक श्रम के लिए रखे जाते थे। प्रसाद जी उसका वर्णन करने में नही चूकते -

घर-घर के बिखरे पन्नों में, नग्न, क्षुधार्त कहानी।
जन मन के दयनीय भाष कर सकती प्रकट न वाणी।।

××× ××× ××× ××× ×××

उस प्रलय दशा को देखा
जो चिर वंचित भूखे है।[48]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद साहित्य में दलितों का विशिष्ट वर्णन है। हिन्दी साहित्यकार में तुलसी के बाद दूसरा स्थान इन्हें ही दिया जा सकता है। प्रसाद के साहित्य साधना से विश्व की मानवता दिशा बोध प्राप्त कर सकती है। आंसू की आरम्भिक वेदना का अन्त व्यापक भूमि पर स्थित होता है। कवि अपने काव्यों को एक ऐसे स्वस्थ और विस्तृत रंगमच पर लोकर खड़ा कर देता है, जहा से उसकी मानवीय दृष्टि स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

दार्शनिक दृष्टिकोण :

दर्शन और काव्य एक ही सिक्के के दो पहलू है। दर्शन दृष्टा सत्य को अभिव्यक्त करता है और साहित्य अनुभवगत सत्य को|ठोस विचारो के कारण दर्शन तो शुष्क विषय बन जाता है, परन्तु लय और कल्पना के बल पर कविता हमें भाव विभोर कर देती है। काव्य और दर्शन की दोड़ लगी रहती है। कभी दर्शन आगे हो जाता है तो कभी काव्य। दार्शनिक विचारों को सरल ढंग से समझने के लिए कविता से उत्तम माध्यम कोई नहीं है। सभि कवियों ने किसी न किसी दर्शन या विचार प्रणाली को सुबोधगम्य बनाने के लिए कविता का आश्रय लिया है।औपनिषदिक मान्यताओं की गूढ़ाभिव्यंजना को काव्य के माध्यम से और ठीक तरह से समझा जायेगा। शैवागम का "सामरस्य" या प्रसाद का आनन्दवाद और आत्मवाद, बिना कामायनी का अध्ययन किए कौन जान सकता है। दर्शन और काव्य का सम्बन्ध स्पष्ट करते हुए डॉ0 राधाकृष्णन् लिखते हैं कि - "दोनों का उद्देश्य एक है, पर प्रारम्भिक सूत्र अलग-अलग है। सत्य को ग्रहण करने के अलग-अलग दृष्टिकोण है।"[49] इसे और स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं - "काव्य में दर्शन का निवास होता है।"[50] उनकी राय में जो कविता अपने अन्दर दर्शन को नही समाहित कर सकती वो महान बन ही नही सकती।

प्रसाद जी मूलत. शैवोपासक रहे। उनकी दृष्टि शिव पर केन्द्रित होते हुए भी व्यापकता लिये हुए रही। इन्होंने बचपन में अनेक सस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया। डॉ0 प्रेम प्रकाश रस्तोगी ने लिखा है - "प्रसाद प्रारम्भ से ही एक परम सत्ता में विश्वास रखने वाले धर्म प्राण साधक थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य एक ब्रह्म में आस्था, श्रद्धा व विश्वास का साहित्य है। उनके सम्पूर्ण साहित्य पर आस्तिकता की प्रबल छाप है।"[51] प्रसाद जी की दार्शनिक विचार धारा एक जगह स्थिर नहीं वरन् बहुमुखी है।

एकेश्वरवाद

प्रसाद का ब्रह्म सर्व व्यापक है, उसी से समस्त संसार की उत्पत्ति हुई है। उनकी मान्यता को दार्शनिक गण सर्ववाद कहते हैं। ये अपने परम ब्रह्म से कहते हैं कि तुमने छिपकर मन्दिर, मस्जिद व गिरजाघर का झगड़ा फैला दिया है, जबकि सब कुछ एक है -

मस्जिद पैगोड़ा, गिरजा, किसको बनाया है तूने
सब भक्त भावना के छोटे बड़े नमूने।[52]

प्रसाद का कवि एकेश्वरवाद में विश्वास रखता है, उन्होंने अनेक स्थलों पर वरुण शब्द का प्रयोग किया है। वरुण को वैदिक काल में एकेश्वर वाद का प्रतीक माना गया है। ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर वरुण देवता के नाम पर ऋचाएं मिलती है। आर्यों का प्रमुख देवता वरुण ही रहा है। मुख्यतया प्रसाद ने शिव की प्रशस्ति में अनेक स्वरूप वर्णित किये है कामायनी में शिव स्वरूप की स्थिति इस प्रकार है -

धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर,
लिए पूंछ में ज्वाला अपनीअति प्रलयंकर।
अन्तरिक्ष में महा शक्ति हुंकार कर उठी,
सब शस्त्रों की धारे भीषण वेग भर उठी।[53]

अथर्ववेद और यजुर्वेद में शिव को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। वैसे तो प्रसाद जी वरुण व शिव के अतिरिक्त विष्णु, सविता, इन्द्र, सरस्वती ब्रह्म आदि देवताओं के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। "एकेश्वर वाद के सन्दर्भ में वैदिक ग्रन्थों में भी हमें सूत्र मिलते हैं।"[54]

शैववाद

काव्य कला तथा अन्य निबध में शैव वाद के सन्दर्भ में प्रसाद ने विश्लेषण किया है। 'शैवों का अद्वैतवाद और उनका सामरस्य वाला रहस्य सम्प्रदाय, वैष्णवों का माधुर्य भावऔर उनके प्रेम का रहस्य तथा काम कला की सौन्दर्य उपासना आदि का उद्गम वेदों ओर उपनिषदों की ऋषियों की वे साधन प्रणालिया हैं जिनका उन्होंने समय-समय पर अपने सघो में प्रचार किया था' (रहस्यवाद) प्रसाद शैव दर्शन के गम्भीर विद्वान थे। इसी कारण उनके साहित्य में शैव धर्म का अविच्छिन्न प्रवाह है। शैवागमों में माया को भी शक्ति का रूप माना गया है। उपनिषद साहित्य में भी माया को शक्ति का रूप दिया गया है। इसका मुख्य सिद्धांत यह है कि शिव ही इस सृष्टि के विकासकर्त्ता और सृष्टा हैं। जगत

और ब्रह्म में अभेद स्थिति को स्वीकार किया गया है। हमारे वैदिक वाड्मय में भी अभेद की सत्ता है जैसे "सर्व खल्विदम् एव पुरुष एवेद सर्ष यद्भूत यच्च भाव्यम्"।[55]

शैव वाद में जीव मुक्ति के लिए तीन उपायों का उल्लेख है। {क} आणव {ख} शक्ति {ग} शांभव। शैवागमों का त्रिपुरा सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्तों से समन्वय रखता है। इनकी दार्शनिक विचार धारा शैववाद को लेकर ही आगे बढ़ी है। प्रसाद मूलतः शैव थे। उनकी रुचि विशेषतया शैवागम में ही रही। इसी की अन्तिम परिणति आनन्दवाद की ओर प्रवृत्त हुई। कामायनी में शैव वाद का सम्यक विश्लेषण हुआ।

आनन्द वाद

प्रसाद दर्शन शास्त्रों के महान अध्येता रहे है। उन्होंने आजीवन अध्ययन करने के बाद अपने जीवन और दर्शन में भारतीय दार्शनिक विचार धाराओं का समावेश कर लिया था। इनके साहित्य में शैववाद, सर्वात्मवाद, रहस्यवाद, समरसता वाद नियतिवाद, दुखवाद, स्वातन्त्र्यवाद, करुण वाद, परमाणु वाद आदि अनेक प्रवृत्तियों का विकास पाया जाता है। किन्तु प्रसाद का आनन्दवाद उनकी एक निजी विशेषता है। जो लोग निगमों और आगमों में परस्पर विरोधी भावना अथवा दृष्टि को न मानकर एक ही विचारधारा को स्वीकृत करते आये हैं उन्हीं का मत आनन्दवाद है और उसी आनन्दवाद के समर्थक प्रसाद जी रहे है। श्री रामनाथ सुमन ने प्रसाद के आनन्दवाद के सन्दर्भ में कहा है - "चिरकाल से मनुष्य आनन्द के शोध में विकल है। चाहे कोई इज्म हो या वाद हो, सबका लक्ष्य आनन्द का शोध ही है। भेद और संघर्षमय और आनन्द की परिभाषाओं को लेकर। इस विभेद में प्रसाद हमें अभेद का संदेश देते है। उनका आनन्द कष्ट साध्य या विश्लेषणात्मक नहीं है। उनका आनन्द एक कवि चित्रकार, एक कलाविद, एक साहित्यकार का सामन्जस्यात्मक आनन्द है - वह आनन्द जो प्रत्येक वस्तु में, प्रत्येक पग पर प्राप्य है। यह मंजिल कठिन हो, पर हर कदम पर है यदि हम देख व पा सके।"[56] कामायनी महाकाव्य इसी आनन्दवाद को लेकर सृजित हुई है।

हमारे प्राचीन ग्रन्थ तैत्तरीयोपनिषद में आनन्दवाद की परिभाषाओं के विषय में कहा गया है - 'यह आत्मा आनन्दमय है और आनन्द ही आत्मा है।[57] डॉ0 प्रेम प्रकाश रस्तोगी ने इस सन्दर्भ में कहा है - "कामायनी का लक्ष्य भी आनन्दवाद की प्रतिष्ठा है। यह आनन्द इन्द्रियों के विषयों के सम्पर्क से उत्पन्न क्षणिक आनन्द से भिन्न है। यह

अर्न्तमुखी आनन्द है।' [58]

प्रसाद जी का यह आनन्द अद्वैतवाद अथवा समत्ववाद की परिकल्पना के अन्तर्गत ही है। भाव, कर्म और ज्ञान के असामन्जस्य के कारण व्यक्ति की कही भी सुखानुभूति नही कर सकता। अत· इनके सामन्जस्य की परिणति ही आनन्द मार्ग की पहली सीढ़ी है। इन तीनों में अभेद स्थिति प्राप्त होते ही समत्व भाव की स्वत ही जागृति हो जायेगी। और यही आनन्द की अनुभूति करा सकेगा। "कामस्थ एवाय पुरूष इति स यथा कामो भर्वात तत्कतुर्भवति तत्कर्म कुरूते तदभि संपद्यते।"[59] मनुष्य स्वयं काममय है और अपनी कामनाओं के अनुसार सकल्पशील होता है। उसी के अनुसार कर्म करता है और वैसी ही फल प्राप्त करता है। अतः यह जरूरी है कि सद् ज्ञान से प्रेरित होकर मानव सद् काव्य शील होकर
सद् कर्म में प्रवृत्त हो और अपनी कामनाओं को ज्ञान व कर्म से जोड़े। कर्म और ज्ञान की प्रवत्तियों के क्षेत्र में जाज्वल्यमान एवं विरोद्व आलोक में किये गये कार्य मानवता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। कामायनी के मनु को भी इसी मार्ग के लिए प्रेरणा मिलती है

यह नीड़ मनोहर कृतियों का,
यह विश्व कर्म रग स्थल है,
है परम्परा लग रही यहाँ,
ठहरा जिसमें जितना बल है।[60]

इसी मार्ग का अनुसरण करता हुआ मनु अपनी साधना दिशा की ओर प्रवृत्त होता हुआ आगे बढ़ता रहता है। वह बाह्य विषयों से हटकर अन्तर्मुखी विकास में रत हो जाता है। वह अपने आप में परम शिव का दर्शन करता है। परम शिव के दर्शन के समय पर जड़ और चेतन की भेद स्थिति समाप्त हो गयी। सभी जगह समरसता का साम्राज्य हो गया। मनु पूर्णता की ओर उन्मुख हो गये, जहा केवल आनन्द की अनुभूति थी, वे स्वयं आनन्दमय हो गये। उस पूर्ण आनन्द के रस में मग्न होने के पश्चात् सांसारिक दु·खों की स्थिति का कोई अस्तित्त्व नहीं रह पाता है। प्रसाद के पात्रों पर भी दर्शन का प्रभाव है।

वैदिक दर्शन का व्यापक प्रभाव

उनके साहित्य में शैव दर्शन विशेषकर दृष्टिगोचर होता है, किन्तु इनके व्यक्तित्त्व पर वैदिक दर्शन का व्यापक प्रभाव था, जो उनके सृजन में दिखाई देता है, प्रसाद

एकेश्वरवादी रहे है व उन्होंने ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की है। वैदिक दर्शन का इन्होंने गहन अध्ययन किया है। प्रसाद ने ब्रह्म के सगुण व निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन किया है। वे ब्रह्म का निवास स्थान हृदय ही मानते हैं। चित्राधार से कामायनी तक की सृजन यात्रा वैदिक दर्शन से ओत प्रोत है। वेदों व उपनिषदों का पूर्ण प्रभाव इनके चिन्तन धारा में दिखाई देता है। वैदिक दर्शन इनके काव्य की आत्मा है। काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध के विविध निबन्धों में वैदिक दर्शन की स्पष्ट छाप है। विश्व को ब्रह्म का स्वरूप मानने की दृष्टि से उपनिषद् का मत प्रस्तुत करते हैं -

ब्रह्ममैवेदममृतं पुरूस्तात ब्रह्म पर चाद् दक्षिणतश्चोत्तरेण /
अधश्चोर्ध्वं च प्रसूत ब्रह्मवेदं विश्वमिद वरिष्ठम्। [61]

सत्य की उपलब्धि के लिए कहा है - "सत्यं च स्वाध्याय प्रवचेन च" [62] आत्मा को मनोमय वाड मय व प्राण मय मानने की दृष्टि से कहा है - "अयमात्मा वाड·मय मनोमय प्राणमय" ‹वृहदारण्यक› [63]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद जी के साहित्य पर वैदिक दर्शन का पूर्ण प्रभाव रहा है। रहस्यवाद व छायावाद का उद्भव स्थान वैदिक दर्शन ही है। कुछ लोग इसे पाश्चात्य प्रवृत्तियों की छाया मानते हैं जो निराधार है। स्वय कवि ने भी निराधार प्रमाणित किया है।

<u>रहस्यवाद</u>

"रहस्यवाद अद्वैत भावनात्मक साधना पद्धति का नाम है। जहां आत्मा का अव्यक्त ब्रह्म के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की जाती हो अथवा स्थापित किया जाता है।" [64] मनुष्य अपने जीवन की विवशता से जब सन्त्रस्त हो जाता है तो इस निर्णय पर पहुच जाता है कि वह स्वय कर्ता नहीं है बल्कि उसका नियामक कोई और है। यही बात उसे रहस्य जानने के लिए उत्सुक करती रहती है। इसी रहस्य की अभिव्यक्ति रहस्यवाद है। उस परम अज्ञात शक्ति को जगन्नियन्ता मानते हुए वे कहते हैं -

समस्त निधियों का वह आधार,
प्रमाता अखिल विश्व का सत्य,
लिए सब उसके बैठा पास,
उसे आवश्यकता ही नहीं। [65]

इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा वैदिक युग से ही थी। इसी से परिचित होने के लिए प्रसाद भी विकल है। कामायनी का कवि उस विराट सत्ता को पहचानने के लिए कहता है - वह विराट था हैम घोलता नया रंग भरने आज कौन हुआ यह प्रश्न अचानक और कुतुहल का था राज। मनु इसी रास्ते पर निरन्तर चलता रहा और उसे दिव्य पुरूष की सत्ता का आभास होने लगा। वह श्रद्धा से भी इसी रास्ते पर चलने के लिए आग्रह करता है। प्रसाद का रहस्यवाद सूफियों के पीड़ा मय प्रेम का प्रतीक नहीं है और न वैष्णवों के माधुर्य मूलक भक्ति भावना का अनुकरण शील ही, अपितु साधना पथ की विविध स्थितियों के अतिक्रमण के पश्चात् आनन्द कोष तक पहुँचने का मार्ग है।[66]

सर्वात्मवाद .

डॉ0 हरिकृष्ण पुरोहित ने सर्वात्म वाद के संदर्भ में कहा है - "आलोच्यकाल के कवियों ने रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को साधन रूप में अपनाया है। इसी दृष्टि से छायावाद का दार्शनिक आधार सर्वोत्तम माना जाता है। कवि प्रकृति को केवल सजीव सत्ता के रूप में ही नहीं देखता वरन् वह प्रकृति के कण कण में परोक्ष सत्ता का संकेत पाता है। सर्वात्मवाद वह दृष्टिकोण है जिसमें हम सभी पदार्थो को ईश्वर स्वरूप देखते हैं अथवा ईश्वर के सभी पदार्थो में व्याप्त पाते हैं।"[67] प्रसाद सर्वात्मवाद का गहन चिन्तन करते है। कामायनी में कवि प्रकृति का अवगुण्ठन हटाकर असीम आनन्द के दर्शन के लिए जिज्ञासु दिखाई देता है। एक लेख में कवि कहता है - "विमल इन्दु की किरणें तेरे ही प्रकाश का पता देती है, सागर के विस्तार में तेरी दया के प्रसार के दर्शन होते हैं, तरंग मात्राए तेरी प्रशसा के गीत गा रही है, चांदनी में तेरी मुस्कराहट देखी जा सकती है.. ..। तुम प्रकृति रूपी कमलिनी को प्रकाशित एव प्रफुल्लित करने वाले सूर्य हो।"[68] प्रसाद की अद्वैत भावना अनेक कविताओं में उपलब्ध होती है प्रसाद का कवि परम ब्रह्म को पुरातन पुरूष व अव्यय मानता है। उस विराट चैतन्य की सत्ता को स्वीकारता हुआ यही कहता है अयमात्मा ब्रह्म। कवि प्रसाद के पात्रों पर भी दर्शन का प्रभाव है वे भारतीय दर्शन की परम्परा से सम्पृक्त है।

प्रसाद : सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण

प्रसाद का साहित्य एक सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है वे मानव समाज

देश, व युग की जिन समस्याओं को उठाते हैं उसका समाधान भी करना चाहते हैं। इसके लिए वे उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध का ही माध्यम नहीं बल्कि काव्य में भी उसका आभास मिलता है। इतिहास से वे राष्ट्र की खोयी हुई चेतना को लौटाना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि इतिहास का पुनर्जागरण राष्ट्रीय उत्थान के लिए आवश्यक है। प्रसाद ने सास्कृतिक पुनरुत्थान मे योगदान दिया, क्योंकि सभ्यता और संस्कृति उसे नव जीवन प्रदान करती है। वे करुणा, वेदना तथा प्रेम को व्यक्तिगत रूप में प्रकट करते हैं। कामायनी में कवि अपनी विचारधारा को आध्यात्मिकता प्रदान करता है।

प्रसाद का आर्विभाव उस समय हुआ जब देश परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ा था। इसीलिए इन्होंने इतिहास का दृष्टान्त लेकर उन्नत परम्परा सम्मुख रखी। और उसी के माध्यम से देश गौरव स्थापित किया। भरत, कुरूक्षेत्र, महाराणा का महत्व, अशोक की प्रलय की छाया आदि की प्रेरणा इतिहास से हुई है। मूलत· इन्होंने सांस्कृतिक दृष्टि का उपयोग किया, इसी से इतिहास के अन्वेषण में प्रयत्नशील हुए। नाटकों के अलावा कामायनी की पृष्ठभूमि भी हिमालय है। प्रथम मानव भी यही उत्पन्न हुआ। मातृगुप्त कहता है -

> हिमालय के आगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार
> उषा ने हस अभिनन्दन किया, और पहनाया हीरक हार।
> ××× ××× ××× ××× ××× ×××
> किसी का हमने छीना नही, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
> हमारी जन्म भूमि थी यही, कही से आये थे हम नहीं।[69]

भारत ही आर्य जाति की जननी हैं ऐसा प्रसाद का विश्वास था। ये सप्त सिन्धु में निवास करते थे। यही से वे पूर्व और पश्चिम की दिशाओं में अग्रसर हुए तथा अपने मतों का प्रचार भी करते गये। मनु के निरूपण करने मे भी कवि ने इतिहास को ही ध्यान में रखा था। इतिहास के प्रति प्रसाद का लगाव ऐसा है कि विदेशी कार्नेलिया भी अरूण यह मधुमय देश हमारा" गाती है। उसे इस देश की धरती से प्यार हो जाता है। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर आदि पुरूष मनु को प्रतिष्ठित कर कवि ने मानसरोवर में सभ्यता का विकास दिखाया है।

इतिहास के साथ-साथ भारतीय सस्कृति के प्रति कवि का प्यार है। वास्तव में ये एक दूसरे के इतने पूरक है कि इनको अलग नहीं किया जा सकता। देश के इतिहास व

सस्कृति के प्रति उन्हें जो लगाव था उसको प्रकट करने के लिए उन्होंने कई अवलम्ब ग्रहण किया। कथावस्तु के साथ-साथ आदर्श पात्रों की नियोजनमेंभी प्रसाद जी देश की वास्तविक सास्कृतिक प्रतिष्ठा में प्रयत्नशील प्रतीत होते हैं। कामायनी मे मानव-सस्कृति की विजय घोषित की गयी है।

प्रसाद का काव्य और शिल्प-विधान

अभिव्यजना का विवेचन करते ही हमारे मस्तिष्क में अर्थ सूचक काव्य-विधान, काव्य शैली, काव्य रस, काव्य अलकार, काव्य छन्द, काव्य भाषा आदि-आदि अनेक शब्द चक्कर काटने लगते हैं। हिन्दी साहित्य की शदियों से व्याप्त अनावच्छिन्न परम्परा में भक्त महाकवि तुलसीदास के बाद "प्रसाद" ही ऐसे कवि हुए जिनके पास आकर साहित्य समीक्षण के सभी मानदण्ड पूरे हो जाते हैं।

प्रसाद काव्य का सम्यक मूल्याकन विद्वानों ने किया है। समीक्षक कभी मुग्ध होता है तो कभी क्षुब्ध, कभी स्पृहणीय सफलता को देखकर प्रशसा मुखर है तो कभी स्खलनों को देखकर तिक्त। परन्तु प्रसाद के कृतियों में कुछ ऐसा माधुर्य है जिसका कलात्मक सौष्ठव अनूठा है। प्रसाद काव्य के सम्यक बोध के लिए, उसके सोन्दर्योद्घाटन के लिए अभिनव दृष्टि, नूतन परिप्रेक्ष्य एव विशिष्ट जीवन-सदर्भ की आवश्यकता है। प्रसाद ने छन्द, रस,, अलकार, बिम्ब, प्रतीक, ध्वनि एव भाषा सभी में अनेक नये प्रयोग करके कविता के सर्व-भाव-सम्पन्न, रमणीय, चमत्कारक तथा हृदय ग्राही बनाया है। अब प्रसाद के इन क्षेत्रों में जाकर विधिवत अध्ययन करेंगे।

बिम्ब-विधान

महाकवि प्रसाद के बिम्ब का मूल क्या है ? कौन सी वह मूल संवेदना है जिसने उनके सम्पूर्ण सृजन को उन्मेषित किया है। प्रसाद के लिए काव्य सर्जनात्मक विलास नहीं उनका सपूर्ण जीवन दर्शन है। मानव मात्र में आनद की प्रतिष्ठा, मानव जीवन को समुन्नत, प्रोढ सुडोल व प्रगतिशील बनाना, कला सुलभ आनद प्रदान करके मानव हृदय को सुसंस्कृत एव परिष्कृत बनाना - प्रसाद ने इसे ही अपना कवि धर्म माना। प्रसाद काव्य, चित्रों से समृद्ध हैं। उनके काव्यों मे काव्य बिम्बों की जो ऐश्वर्य और सपदा है, उनमें भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, भाषा की रसात्मक वक्रता, सूक्ष्म ध्वन्यात्मकता रमणीय प्रतीकात्मकता, कोमल पद-विन्यास आदि का जो अपूर्व वैभव है उसका प्रारम्भ कवि की

आरंभिक रचनाओं के अस्पष्ट, धूमिल, भाव बोझिल एव असफल बिबो से होता है।

प्रसाद काव्य के बिम्बों का विकासात्मक अध्ययन उनके भाषात्मक एव कलात्मक उत्कर्ष का ही अध्ययन है, अत· यह उचित होगा कि हम प्रसाद-काव्य के विकास क्रम को समझें। प्रेम पथिक में प्रसाद ने प्रेम की आदर्शात्मक परिभाषा प्रस्तुत की है और उसे एक सार्वभौमिक स्तर प्रदान किया है। और यही आदर्श प्रेम कामायनी के आनंदवाद में परिणित होकर समस्त प्रसाद साहित्य की आत्मा बन जाता है। डा0 प्रेम शंकर ने प्रसाद के विकास को स्पष्ट किया है - "प्रेम पथिक में प्रेम और करूणालय में करूण के प्रतिपादन ने कवि दर्शन पर प्रकाश डाला है। "झरना" मे प्रथम बार प्रसाद का व्यक्तित्व मुखर हुआ। "चित्राधर" का कवि केवल प्रकृति को ही जिज्ञासा की दृष्टि से देखता था। झरना में यही जिज्ञासा मानव तक चली आती है। "झरना" का कवि अधिक गहराई में उतरता दिखाई देता है। वह चितन के दारा जीवन के कुछ सत्य जान लेता है। जिनका प्रयोग मगलमय हो सकता है। रूप के बाह्य आकर्षण की सुषमा तक जाने का जो प्रयत्न "झरना" में चल रहा था उसका पूर्ण विकास आँसू में हुआ है। आँसू के चित्रों का सृजन अधिक विस्तृत आधार पर हुआ है। "लहर" का कवि यौवन का झंझावत और जीवन की विषमता देख चुका था। वह व्यक्तिगत सुख-दुख मे डूब जाने का अधिकार छोड़ देता है। वह अब भी प्रेम करना नही छोड़ता किन्तु किसी व्यक्ति को स्नेह देने वाला प्रणयी ससार भर के प्राणियों पर रीझ उठा है।"[70]

प्रसाद की इस यात्रा पर विस्मय विमुग्ध होना जरूरी ही है क्योंकि कहां प्रारंभ के चित्र·मात्र शब्द ग्रंथम, फिर अस्पष्ट अनुभूतियों को मुखरित करने की आकुलता और अत में अनेक वर्णी चित्रों का प्राण वेग से भरा ऐश्वर्य मान रूप। शैली और शिल्प के उन्नत शिखरों का यह आरोहण प्रसाद की अपनी विशिष्टता है। इनके बिम्ब सृजन के विकास का अध्ययन यद्यपि इनके कृतियों के आधार पर स्पष्ट नही कर सकते क्योंकि अनेक बार प्रारम्भिक कृतियों में भी उत्कृष्ट बिम्ब मिल जाते हैं, फिर भी इसे हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं :-

(क) आरम्भिक रचनाओं के बिम्ब - चित्राधार, कानन कुसुम, करूणालय, प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व।

(ख) मध्यवर्ती रचनाओं के बिम्ब - झरना तथा आंसू।

(ग) अतिम रचनाओं के बिम्ब - लहर तथा कामायनी

(क) **आरम्भिक रचनाओं के बिम्ब**

यह प्रसाद के रचना का प्रथम चरण है और यहा प्रसाद पारंपरिक इतिवृत्तात्मकता एव अभिधात्मकता से आगे नही बढ़ सके हैं। इन चित्रों में प्रसाद के मौलिक कल्पना के दर्शन कम मिलते हैं। इनका सारा आरम्भिक काव्य गद्यवत तथा कथन मात्र लगता है। इन रचनाओं में छायावाद की व्यजकता, लाक्षणिकता एवं रमणीयता का थोड़ा बहुत रूप देखने को मिलता है। भाषा में अभिधा के स्तर से आगे नही बढ़ते है। चित्रात्मकता का तो सर्वत्र अभाव ही है। काव्य-बिम्ब के सही अर्थो में केवल कुछ पक्तियों को ही ग्रहण किया जा सकता है। यथा -

बैठे-बैठे वन शोभा थे देखते
अपनी लीला भूमि सुगौरव कुज की।
सालुम्बा पति आये, अभिवादन किया
आर्य नाथ ने कहा - कहो रारदार जी
समाचार है कैसा अब मेवाड़ का। 71

प्रारम्भ से अत तक सीधा गद्यवत कथन है। राणा प्रताप बैठे हुए सालुम्बा पति आकर अभिवादन करते हैं। प्रसाद की रचनाए आरम्भ में ऐसी लगी जैसे मानो कविता ही नहीं बनी बल्कि कथन मात्र है -

नीरव नील निशी घनी
अनोखी नारि निहारि
विपति विटारी वीरवर
बोले बचन विचारि। 72

प्रसाद की ये पंक्तियां अनुप्रास के आडम्बर से बोझिल है। भावों की उर्जा का स्पर्श केवल स्फीति मात्र है।

किन्तु नही, दुर्जन का मन
उससे भी तम मय होता है।
जहां सरल के लिए
अनेक अनिष्ट विचारे जाते है। 73

प्रसाद ने यहा अधेरी रात मे होने वाले कुकर्मो और मनुष्य की मानसिक कुरूपताओं को एक साथ रखकर मनुष्य के भीतर चलने वाले कुचक्र का नग्न चित्र खीचा है, पर यह

काव्य भाव शून्य तथा उपदेश मात्र लगता है। गद्यवत कथन के कारण काव्य का स्वरूप उभर ही नहीं पाया है।

स्पष्ट है कि प्रसाद की आरम्भिक रचनाओं में अभिव्यक्ति की वक्रता बिम्बों की चारुता, शब्दों का सौष्ठव व अनुभूति की गहनता का अभाव सा है। फिर भी इन रचनाओं में कुछ पंक्तिया ऐसी है, जिनसे हमें प्रसाद के आने वाले कवि रूप की कल्पना करते है। इन पक्तियों में वह विकल गभीरता है, जहा हम बरबस रुक जाते हैं, मुग्ध होते है, सोचते है, पढते है और रसमय हो जाते है। "प्रेम पथिक" में प्रसाद ने प्रेम की उदात्त, उत्सर्ग शील प्रकृति का आदर्शात्मक निरूपण किया है। यहा पर जीवन की गहन, सान्द्र अनुभूति वक्रता एव चित्रात्मकता के साथ अभिव्यक्ति हुई है -

> इस पथ का उद्देश्य नही है,
> श्रान्त भवन में टिक रहना।
> किन्तु पहुँचना उस सीमा तक,
> जिसके आगे राह नही।"[74]

इनके संपूर्ण जीवन दर्शन का अतिम लक्ष्य इसमें है।

(ख) मध्यवर्ती रचनाओं में बिम्ब

इस शीर्षक में हम "झरना" व आसू के बिम्बों को लेंगे। कवि के आरम्भिक यौवन मे झरना की रचना हुई। यहां निराशा में आशा है, पीड़ा में मादक आनन्द है। यहा कवि का व्यक्तिवादी स्वरूप सामने आता है क्योंकि यह प्रेम परिचय का गीत है। कवि की भावनाए अनेक रूपों में विद्यमान है। कवि अपने आरभिक प्रेरणा से कविता का स्रोत बहा रहा है। लाक्षणिक प्रयोग, प्रतीक-विधान, चित्र-योजना, मधुर पदावली का सूत्रपात झरना में होता है। "झरना" में माधुर्य की चित्रमयी सृष्टि होती है।

आसू प्रसाद की पूर्व रचनाओं से बहुत आगे है। आसू मे छायावादी पद्धति पर भावों की अभिव्यजना हुई है। उसमें प्रेम की अभिव्यक्ति लक्षणा प्रधान शैली द्वारा की गयी है। प्रतीकों की मौलिकता ने ही बिम्बों के निर्माण मे योगदान दिया। प्रसाद ने प्रतीकों के द्वारा विप्रलम्भ श्रृगार की चित्रमय, ध्वनिमय, रसमय अभिव्यक्ति की है। आसू सत्य ही प्रसाद की घनीभूत पीड़ा की रसमयी अभिव्यक्ति है जहा - "तत्त्व चितन के आलोक में वेदना वैयक्तिक बधनों से मुक्त होकर एक दिव्य आभा धारण करती है और

कवि सौन्दर्य के एक मानसिक आनन्द में मग्न होकर एक उपेक्षामय शांति प्राप्त करता है।"[75] झरना और आसू में प्रसाद की बिम्ब-सर्जना में एक स्पष्ट विकास लक्षित होता है। यहा हम झरना के बिम्बों का पहले वर्णन करेंगे।

झरना के बिम्ब

रहे रजनी में कहा मलिन्द?
सरोवर बीच खिला अरविन्द।
कौन परिचय था ? क्या सबध ?
मधुर मधुमय मोहन मकरंद। [76]

चित्र प्रश्न की जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है, और अंतिम पंक्ति में कवि स्वयं उत्तर, मधुर मोहक प्रेम सम्बन्ध के रूप मे ही देता है। प्रसाद बिम्ब निर्माण में न पुराने ढंग की अन्योक्ति उपस्थिति करते हैं और न ही रहस्यवादियों के ढंग का आत्मा-परमात्मा का रूपक बाधते है। वे प्रेम का सूक्ष्म निर्देशन चित्रात्मक पद्धति मे करते हैं। चित्र में ही ध्वनि काव्य की विशेषताए है -

बात कुछ छिपी हुई है गहरी।
मधुर है श्रोत मधुर है लहरी।।
कल्पना-तीत काल की घटना।
हृदय को लगी अचानक रटना। [77]

इसमें मधुर श्रोत के भीतर कवि किसी गहन भाव को देखता है। तथा गभीर बात का स्वर सुनाई पड़ता है। कल्पनातीत काल की घटना में जीवन की रहस्यगर्भी आरभ को व्यजित किया है। इस गहनता को कवि अत्यन्त सरल शब्दों में नयी आभा के साथ व्यक्त करता है। चित्र की इस गहनता रहस्यमयता एव कुछ जान लेने की आकुलता में मधुर श्रोत रस ध्वनि, कलकल शब्द सब विलीन हो जाता है और मानस पर यह सीधी रेखा खिच जाती है -

बात कुछ छिपी हुई है गहरी
जब करता हूं कभी प्रार्थना,
कर सकलित विचार,
तभी कामना के नुपुर की
हो जाती झनकार। [78]

कवि की विदग्धता, मौलिकता एव सूक्ष्म कल्पना शीलता इस बिम्ब में है। हम अपनी ही आसक्तियों और कामनाओ के बीच अपने को घिरा हुआ पाते हैं और चिंतन के द्वारा उनकी क्षणभगुरता का विचार कर उनसे हटने का प्रयत्न करते हैं, पर क्या हम सफल होते हैं ? कामना को नुपूर की झनकार होती है, सारा प्रयत्न असफल कामना को नुपुर बताना, अमूर्त में मूर्त की उपमा रसमय प्रयोग है, साथ ही यह भी ध्वनित है कि कामना कितनी सगीतमयी, रसमयी और मोहक लगती है। चित्र में दृश्यता व ध्वनि के साथ नाटकीय भगिमा है। मधुर झनकार और कामना के आकर्षण का साम्य, सूक्ष्म और अनुभूतिमय है। प्रसाद जी की पूरी कविता कवि मानस की अकुलाहट, जिज्ञासा, मगल कामना से परिपूर्ण एक श्रेष्ठ बिम्ब है। जिज्ञासा, रहस्य, सजीवता नवीन उपमा अछूती कल्पना, शब्द-चयन की अभिनव दिशा हर दृष्टि मे प्रसाद के भावी विकास की सुदृढ़ पीठिका है। झरना पहाड़ से गिरता है, इधर उधर बिलखता ठोकर खाता है। कवि के हृदय में एक रहस्यमय जिज्ञासा है कि यहा इतना व्याकुल कोन है? मानों एक व्याकुल व व्यथित प्रणयी अपने लिए स्थान ढूढ रहा है और कही भी स्थान न पाकर अपने ही भीतर सिमट जाता है। झरना में कवि की अंतर्मुखता एवं आत्म निष्ठा ध्वनित है।

आँसू के बिम्ब

बुलबुले सिंधु के छूते
नक्षत्र मालिका छूती
नभ-मुक्त-कुंतला धरणी
दिखलाई देती लूटी।[79]

यह प्रलय का चित्र है। इसके द्वारा कवि एक व्याकुल प्रेमी का बिम्ब प्रस्तुत करता है। विरह व्यथा की यह व्याकुलता इतनी व्यापक हैं कि इसने पृथ्वी आकाश सबकों छू लिया है। प्रेमी की विवशता एक प्रलय का चित्र है। यह एक ऐसे व्यक्ति का बिम्ब है जिसका अत करण उद्विग्न है, उसे अपने शरीर की सुधि नहीं है, उसके केश बिखरे हैं। इसमें व्यक्ति वेदना को प्रसाद ने समष्टि तथा व्यापक बनाया है -

तुम सत्य रहे चिर सुंदर
मेरे रस मिथ्या जग के।[80]

इन्होंने ब्रह्म सत्य जग मिथ्या के दार्शनिक प्रतीक से प्रेम की चिर सत्यता का चित्र खीचा

है। दार्शनिकों का ब्रह्म चित् आनद है, पर कवि का सत्य उससे कही अधिक चिर सुन्दर है। मिथ्या जग के एक प्राणी को ही सत्य बताकर मानों कवि ने अपने प्रेम व विश्वास की पराकाष्ठा को सूचित किया है -

शशि मुख पर घूंघट डाले,
अचल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली मे,
कौतूहल से तुम आये। 8।

जीवन के अतिम प्रहर में प्रिय को आना और वह भी यों ही चले आना नहीं, चन्द्रमा के समान कातिमय उज्जवल मुख पर घूघट डालकर और आंचल में दीप संजोकर आना। इन सास्कृतिक बिम्ब के द्वारा जीवन की सन्ध्या में प्रिय को पाने का यह चित्र है। कौतूहल से आना कवि की मौलिक कल्पना है, अछूती उपमा है। आसू में कवि कही प्रकृति की उपमा प्रेमिका से देता है, तो कही पीड़ित अवस्था को दर्शाता है। आंसू के बिम्ब में प्रसाद की मौलिक सूझ-बूझ दिखायी देती है। प्रसाद ने कहा है कि सुख और दुःख जीवन में दोनों आते हैं। प्रसाद का सुख-दुःख का लिपटना उससे कुछ वैशिष्ट्य रखता है। ये अक्सर सजीव बिम्ब प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आंसू के बिम्बों में आत्म रस से परिप्लुत तरल काति मयता है, उनमें वेदना के साथ चेतना, रूप के साथ सौन्दर्य, विरह के साथ करूण तथा सुख के साथ दुख का मधुर मिलन है, और फिर इस मिलन महोत्सव के बाद पक मे से खिलता जीवन का शतदल है - आसू के भीतर से खिलती स्मित की तरल उजली रेखा है। आसू के बिम्बों में मानसिक सताप की यह भूमिका है, - घनीभूत पीड़ा है, जो गहन वेदना, असीम हाहाकार व विराट उदासी है, नील गगन सी धुंधली अंतहीन जागृत निराशा है, अदम्य पुरूषार्थ है, वही आगे चलकर आनद शक्ति महासागर में परिणित होता है। यह प्रसाद की मानवतावादी दृष्टि है जो जीवन समग्र स्वीकृति के भीतर से उन्मेषित उन्मीलित है। प्रेय की श्रेय में यह परिणीति प्रसाद के बिम्बों का अपना वैशिष्ट्य है। आसू के चित्र वेदना की विवृत्ति आतर स्पर्श की पुलक, अनुभूति की वक्रता, प्रतीक विधान के सौष्ठव और उत्कृष्ट गीतिमयता से सुशोभित है।

(ग) अंतिम रचनाओं में बिम्ब

प्रसाद की अतिम रचनाओं मे हम लहर और कामायनी को ले सकते हैं। छायावादी

कविता सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों एव पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति के प्रभाव के कारण विशिष्ट वैयक्तिक अनुभूति की कविता है। छायावादी कवि ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूति को अपने विशिष्ट ढंग से अभिव्यक्त किया है। इसके लिए इन्होंने स्वच्छन्द कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। बिम्ब विधान की दृष्टि से छायावादी कविता की समृद्धि अभूतपूर्व है। नि सन्देह बिम्ब विधान काव्य का सहज धर्म है। छायावादी कवि अभिधात्मक विवरणों के द्वारा बिम्बों का निर्माण सबसे कम करता है इसलिए छायावादी कविता में स्थूल, एकांगी और सरल बिम्ब बहुत कम है। फलस्वरूप प्रसाद ने अप्रस्तुतों की रूढ़ कल्पनाओं को तोड़ा है। जो मुख रूढ़ अप्रस्तुत-विधान मे चन्द्रमा या कमल की एक रस तुलना में रूपहीन और असम्वेद्य हो गया था। वह निम्न नये उपमानों की समता में अधिक मूर्त, आकर्षक और सवेद्य बन गया है -

आह, वह मुख पश्चिम के व्योम,
बीच जब घिरते हों घनश्याम।
अरुण रवि-मण्डल उनको भेद,
दिखाई देता हो छविधाम। 82

यहा सारे सदर्भो में उपमेय और उपमान को काटकर केवल उनके आकार या रग की तुलना नही की गयी है बल्कि उनके चतुर्दिक परिवेश के बीच आकार वर्ण, धर्म और प्रभाव सबका एक संश्लिष्ट चित्र निर्मित किया गया है।

प्रसाद का कामायनी का बिम्ब सर्वथा नया और मौलिक है। प्रसाद ने पुराने बिम्बों को नयी भंगिमा प्रदान की है। अथर्ववेद के "सिन्धोगर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम" 83 बिम्ब को श्रद्धा के निम्नांकित सौन्दर्य-चित्र मे नया रूप दिया है, यह लक्ष्य करने की बात है -

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अध खुला अग।
खिला हो ज्यों विजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग। 84

कामायनी मे प्रसाद प्रलय के बिम्ब, प्रकाश पुरुष का दर्शन, जीवन मे आनंद की अनुभूति, सृष्टि का उल्लासित रूप मे परिचय, नारी चित्रण आदि का वर्णन बिम्ब के सहारे करते

हुए दिखाई देते हैं। प्रसाद ने कामायनी महाकाव्य की घटनाओं को ही अपनी कल्पना के द्वारा तीनों कालों तक प्रसारित किया है।

"लहर" भी प्रसाद सृष्टि की प्रौढ़तम रचना है। लहर में कवि ने आनन्द व मगल का विधेयात्मक रूप प्रदान किया है। "लहर" कवि की अतरात्मा की प्रतीक है। आसू यदि प्रसाद के जीवन की हलचल है तो लहर उसकी शांति। यहां कवि अपने काव्य में स्पष्ट रूप से नाता-रिश्ता जोड़ता है और अपने आत्मपरक गीतों में डूबा हुआ विश्व के सुख-दुःख से अपने हृदय का संबध स्थापित करने के लिए आतुर है। मानव के इस प्रेम ने लहर के कवि को विराट मानव सत्ता के शुभ चिंतक के रूप में प्रस्फुटित किया है। रूप-चित्रण में अद्वितीय सफलता के साथ चित्रित प्रणय गीतों और चारों ओर बिखरी हुई वेदना को समेटने के प्रयत्न के अतिरिक्त उच्च कोटि के सास्कृतिक, ऐतिहासिक और दार्शनिक चित्र भी है। उठ री लघु लोल लहर के करूण मृदुल एवं व्यापक प्रेम के गीति चित्रों से आरम्भ होकर लहर के बिम्बमें कवि का अनुराग नभ के अभिनय कलरव में फैलते हुए उसके मानस की अतल गहराइयों का स्पर्श करते हैं और अंत में प्रलय की छाया के विराट, उदात्त, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक और गहन विषाद के त्रासद वातावरण में डूब जाते हैं-

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थे पथिक की पन्था की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कन्था की ।86

प्रसाद के गभीर मौन व्यक्तित्त्व की आभा इसमें है। कवि ने इसमें जीवन की सभी बातों को मुखरित किया है।

बिम्बों की सर्जना में कवि ने जीवन, प्रकृति, इतिहास, दर्शन, मनोविज्ञान, पुराण की विशाल सामग्री का उपयोग कर रूकती हुई कथा को आगे बढ़ाया है। उसे खण्डित, विशृखलित होने से बचाया है, उसकी चितन व चिंतन बोझिलता को दूर किया है। काव्यात्मक, सवेदनशील, रमणीय विम्बों ने कामायनी की कथा को एक ओर मनोवैज्ञानिक ट्रीटाइज होने से बचाया है तो दूसरी ओर दार्शनिक शास्त्र से। प्रसाद के बिम्ब में मिश्रित वर्णों का प्रयोग अधिक हुआ है। प्रसाद की कविता मे वर्णों की प्रचुरता और विविधता बहुत हैं। यह इनकी अद्भुत उपलब्धि थी।

प्रसाद की प्रतीक-योजना

बिम्ब की भाँति प्रतीक मूलतः पश्चिम की देन है। अमेरिका में एमर्सन, थोरो, हर्मन, एडगर, पो आदि तथा फ्रान्स मे बोदलेयर, वेलेरी, रिम्बो आदि तथा इंग्लैण्ड में टी0 ई0 हुल्में, टी0एस0 इलियट, एजरापाउण्ड आदि के चितन ने प्रतीकवाद का जन्म दिया तथा उसे चरम अवस्था में पहुँचाया। सामान्यत फ्रांसीसी कवि संगीत की समता पर कविता में भी रूप और वस्तु को बिल्कुल अभिन्न बना देना चाहते थे। इसलिए प्रस्तुत सदर्भ में प्रतीक शब्द का प्रयोग उस आन्दोलनात्मक अर्थ में न करके अधिक विस्तृत अर्थ में किया जा रहा है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रतीक का अर्थ होगा - "एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना।"[86] हिन्दी साहित्यकोश में कहा गया है - "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य विषय का प्रति विधान मेंउसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य अप्रस्तुत विषय का प्रतीक प्रतिविधान मूर्त, दृश्य श्रव्य प्रस्तुत विषय द्वारा करता है।[87] इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका की प्रतीक की परिभाषा भी इससे मिलती-जुलती है। साहित्य में रूढ और व्यक्तिक दोनों प्रकार के प्रतीक होते हैं। प्रतीक अभिव्यजना की एक सशक्त पद्धति है। इसलिए साहित्य मे प्रतीकों के प्रयोग की महत्ता असंदिग्ध है। प्रतीक के प्रयोग से साहित्य में कम से कम शब्दों द्वारा अधिक से अधिक वक्तव्य वस्तु को प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है।

प्रसाद की कविता उनके स्वच्छन्द वैयक्तिक भावनाओं एव विचारों, आध्यात्मिक रहस्यवादी अनुभूतियों, अतृप्त यौन आकाक्षाओं को प्रस्तुत करती है। अपने निजी अनुभव को व्यक्त करने के लिए इन्होंने प्रतीक को विविध श्रोतों से चुना है। इनका प्रधान श्रोत प्रकृति है। इनकी कविता में प्रकृति की हर वस्तु, हर प्राणी हर दृश्य या परिस्थिति प्रतीक बन गयी है -

झझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद माला।
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।[88]

इसमें "झझा झकोर गर्जन" हृदय को व्यथित करने वाली तीव्र भावना, "बिजली" हृदय में रह-रह कर कौंधने वाली टीस, नीरद माला, हृदय पर छाने वाले अवसाद के प्रतीक हैं। प्रसाद के प्रतीक का दूसरा मुख्य श्रोत सस्कृति है। इसके अन्तर्गत पुराण, इतिहास, धर्म. दर्शन, कला कौशल आदि के प्रतीक समाहित किये गये हैं। प्रसाद ने कामायनी में प्रतीकात्मकता की ऐसी अर्थगत समृद्धि प्रदान की है कि उसे कई स्तरों पर व्याख्यायित किया जा सकता है। कामायनी में एक साथ सभ्यता की भौतिक, मनोवैज्ञानिक एव आध्यात्मिक कथा सन्निहित है। उसमें उसका अतीत सुरक्षित है, वह आध्यात्मिक विकास की कथा कहती है और भविष्य के लिए भी उसका सन्देश है। कामायनी के सभी पात्र प्रतीक है। मनु आदिम मनुष्य व मानव मन दोनों के प्रतीक है। श्रद्धा आदिम नारी की प्रतीक है, इड़ा बुद्धि की प्रतीक है, देव इन्द्रियों के प्रतीक है। मानव उस नव मानव का प्रतीक है जिसमें हृदय और बुद्धि दोनों समजित है। वृषभ, धर्म का प्रतीक है। मानसरोवर समरसता का तथा कैलाश शिखर, आनन्द मय कोश का प्रतीक है। इनका प्रतीकात्मक प्रसग परिस्थिति पर आधारित नहीं है। श्रद्धा के लिए प्रसाद जी "हृदय की अनुकृति वाह्य उदार"[89] कहना नही भूलते हैं। इड़ा का निम्न चित्र उसके बुद्धि का प्रतीक होने का संकेत करता है

बिखरी अलके ज्यों तर्क जाल

वह विश्व मुकुट-सा उज्जवलतम, शशि खण्ड-सदृश था स्पष्ट मात्र

दो पद्म फलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल"।[90]

प्रसाद जी ने ऐतिहासिक प्रसंग का उल्लेख बहुत किया है पर उसका प्रतीकवत् प्रयोग नही किया है। इन्होंने अणु, परमाणु, विद्युतकण आदि का प्रयोग तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया है। साम्प्रदायिक प्रतीक इनमें मिलते है। कामायनी में नटराज, त्रिपुर शक्ति तरंग, त्रिकोण, श्रृंग, डमरू, महाकाल, अनाहत निनाद, कैलाश आदि का सम्बन्ध शैव-दर्शन व साधना पद्धति से हैं। प्रसाद की कविता में दर्शन के क्षेत्र में गृहीत अनेक प्रतीक विद्यमान हैं।

प्रसाद ने अपने प्रतीक चित्र, संगीत, मूर्ति आदि ललित कलाओं आदि से लिया है। चित्रकला के लिए गये प्रतीक रग रेखाचित्र, चितेरा, तूलिका, छाया, प्रकाश आदि सगीत कला में वीणा, झकार, तार, मूर्छना, मीड व मूर्तिकला में मूर्ति, मूर्तिकार पाषाण उल्लेखनीय है। इनका इन्होंने इतना प्रयोग किया है कि ये रूढ़ प्रतीक में बदल गये हैं। इन्होंने झरना में कहा है -

वीणे, पचम स्वर में बजकर मधुर मधु

बरसा दे स्वय विश्व में आज तो · · [91]

यह इनकी कविता की व्यक्तिकता और नवीनता है। इससे प्रभावित इनकी कविता में वीणा हृदय की रूढ़ प्रतीक बन गयी है। इन्होंने अपने प्रतीकों के माध्यम से अधिकांशतः लौकिक व अलौकिक रति भावना को तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न अनुषंगिक भावनाओं को व्यक्त किया है। अधिकतर यह भावना वायवीय है, उसको प्रकट करने वाले प्रतीक स्वच्छन्द मनोवृत्ति के द्योतक है। कामायनी में बसन्त के प्रतीक के द्वारा यौवन का चित्रण, स्वच्छन्द प्रतीक का ही चित्रण है -

क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी,

उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आंखे खोली थी। [92]

इसमें अन्तरिक्ष हृदय का लहरें भावनाओं की रजनी के पिछले पहर किशोरावस्था का, मतवाली कोयल, मन की, कलिया, प्रेम की विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रतीक बन जाती हैं। यही थोड़ी सी स्थूलता पाके काम प्रतीक में बदल जाते हैं -

दो कोठों की सन्धि बीच उस, निभृत गुफा में अपने

अग्नि-शिखा बुझ गयी, जागने पर जैसे सुख सपने। [93]

इन्होंने दो कोष्ठों की सन्धि तथा अग्नि शिखा के माध्यम से एक विशेष काम व्यापार को व्यजित किया है। प्रसाद में मौलिक प्रतीकों के निर्माण की प्रक्रिया में अपनापन है। इनके अनेक प्रतीक उपमान और बिम्ब के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। इनके प्रतीक में इनका वैयक्तिक वैशिष्ट्य उभरकर सामने आ जाता है। ये रूढ़ प्रतीकों को नयी अर्थवत्ता प्रदान करते हैं। इससे इनकी अनुभूति का विशिष्ट स्वरूप सामने आता है। इनके प्रतीक अधिक विम्बात्मक और अर्थ के अनेक स्तरों से युक्त है। वस्तुतः - "प्रसाद जी प्रतीकों से बहुत काम लेते हैं और उनके यहा हर चीज प्रतीकत्व प्राप्त कर लेती है।" [94]

अलंकार- योजना

इनकी कविता में अनुप्रास को छोड़कर अन्य शब्दालकारों का प्रयोग नगण्य है। शब्दालकारों के विरल और साधारण प्रयोग का कारण यह है कि ये अलकार मूलतः चमत्कारमूलक है। इसके अलावा इन अलंकारों का प्रयोग करने में कवि को विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। जिसके लिए प्रसाद तैयार नहीं हैं, किन्तु अनुप्रास सहज धर्म है और काव्य में कोरे चमत्कार से आगे बढ़कर उसका उपयोग है। अनुप्रास भाषा को मधुर एवं संगीतमय बनाता है।

आधुनिक काल की प्रारम्भिक अवस्था मे जब खड़ी बोली को ब्रज भाषा की तुलना में कर्कश और अकाव्यात्मक माना जाता था तो खड़ी बोली में कविता लिखने वालों में गुप्त ने अनुप्रास का उपयोग करके कर्कशता कम करने का प्रयत्न किया। द्विवेदी युग में भी कवियों मे अनुप्रास की प्रचुरता इसका स्पष्ट प्रमाण है। प्रसाद ने इसको शास्त्रीय रूप के साथ-साथ नया रूप प्रदान किया है। इसका एक रूप है ध्वन्यर्थ व्यजना ॥अनोमोटापीया॥। वैसे ये इसका प्रचुर उपयोग करते तो नहीं दिखाई पड़ते। इन्होंने ऐसी पक्तिया कई जगह लिखी है जिसकी ध्वनि ही उनके अर्थ की व्यजना करती है -

खग कुल-कुल-कुल सा बोल रहा
किसलय का अचल डोल रहा। [95]

लेकिन यह अधिकतर ऊपरी ध्वनि के अनुकरण तक ही सीमित है। इन्होंने नये परिरूपों के प्रयोग को प्रोत्साहित किया है। इस नये परिरूपों से यह सिद्ध हुआ है कि अनुप्रास बड़ी सम्भावना वाला शब्दालकार है। अनुप्रास के इन नये परिरूपों को तीन चीजों ने प्रभावित किया - प्रथम रूढ़ि के निर्वाह मात्र से सन्तुष्ट न रहकर नये क्षितिजों का अवगाहन करने के लिए कवि की स्वच्छन्द चेतना। दूसरा अग्रेजी कविताओं के साथ परिचय तीसरा बंगला काव्य। इस प्रकार प्रसाद अपने काव्य में शब्दालकार का सीमित दायरे तक प्रयोग करते हैं।

अर्थालकारों में उपमा मूलक अलंकारों की प्रधानता है। प्रसाद ने सबसे अधिक औपम्य मूलक अलकार का प्रयोग किया है। उपमा मूलक अलकार का मतलब है अप्रस्तुत का अध्ययन। "प्रसाद जी अप्रस्तुत विधान करते समय क्रिया की ओर संकेत करना नहीं भूलते।" [96] इसमे रूप गुण के साथ "सुधा भरने को" वाक्याश मे बादलों की गति अर्न्तनिहित है। इस प्रकार युगों-युगों से प्रचलित जड़ उपमा इसमें गतिवती हो गयी है। प्रसाद की प्रारम्भिक रचनाओं में ॥महाराणा का महत्व॥ सूक्ष्म व नवीन चेतना दिखाई देती है। इसमें कल्पना विधायकतत्व के रूप में सामने आती है। प्रसाद ने 1909 में कल्पना सुख पर जो कविता लिखी वह उनके कल्पना महत्व को उजागर करती है -

तब शक्ति लहि अनमोल,
कवि करत अद्भुत खेल,
लहि तुण सविन्दु तुषार,
गुहि देत मुक्ताहार। [97]

प्रसाद जी के काव्यों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, अपन्हुति अर्थान्तर न्यास, निदर्शना, सन्देह, स्मरण आदि साम्य मूलक अलकारों के प्रचुर प्रयोग मिलते हैं। इन्होंने मुख को चन्द्रमा या कमल, आखो को खंजन प्रेमी को भ्रमर से उपमित किया है। इनकी कविता में जो परम्परागत उपमान मिलते है, उसका परम्परागत रूप धुल गया है -

मुख कमल समीप सेज थे, दो किसलय से पुरइन के।
जल बिन्दु सदृश ठहरे कब, उन कानों में दुःख किन के॥ [98]

इसमें मुख के लिए कमल उपमान का प्रयोग हुआ है। इसमें कवि मुखरूपी कमल तक ही सीमित नही रहा है। बल्कि उसकी दृष्टि कानों को पुरइन-पाती से उपमित करने की ओर गयी है और वहां भी पुरइन के पत्तों पर जल बिन्दु के न ठहरने के क्रिया व्यापार द्वारा कानों में किसी के दुःख को न ठहरने का सकेत है। इसमें चित्रात्मकता तथा क्रिया व्यापार की व्यजना परम्परागत उपमानों को नवीन और अधिक प्रभावशाली बनाती है। प्रसाद ने साम्यमूलक अलकारों को परम्परागत ढाचे में नया बना दिया है। प्रसाद अलंकार को भाषा की पुष्टि व राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक मानते हैं।

इनकी नयी दृष्टि ही व्यक्तिवादी- भाववादी दृष्टि है। इनकी कविता में सादृश्य ओर साधर्म्य की कमी नही है। इसमें इनकी सौन्दर्य-दृष्टि अपना चमत्कार दिखाती है। रग-सादृश्य के उदाहरणों में वह चमत्कार विद्यमान है -

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अध खुला अंग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ वन बीच गुलाबी रंग। [99]

इसमें सादृश्य ओर साधर्म्यमूलक उपमानों मे समानता के साथ-साथ इन्द्रिय-बोध भी विद्यमान है। प्रभाव-साम्य भी इनके उपमानों की मुख्य विशेषता है। प्रभाव-साम्य सादृश्य और साधर्म्य मूलक उपमानों में भी विद्यमान है। वैसे तो प्रसाद में सभी औपम्यमूलक अलंकार मिलते है, लेकिन कुछ अलंकारों का इन्होंने विशेष तोर पर प्रयोग किया है। परोक्ष सांकेतिकता तथा प्रतीकार्षण के कारण रूपकातिशयोक्ति समासोक्ति और अन्योक्ति प्रसाद की कविता में विशेष रूप से परिलक्षित होते है, और यही अलंकार सम्भवत रूपक (एलिगरी) की शैली में लिखित प्रबन्ध काव्यों के सहज अंग होते हैं। इसमें पाश्चात्य प्रभाव का विशेष योग रहा

है। फलस्वरूप दो पाश्चात्य अलकार मानवीकरण तथा विश्लेषण-विपर्यय इनकी कविता के प्रमुख अलकार बन गये। "झरना" में इन्होंने मानवीकरण को प्रचुरता के साथ समायोजित किया है। इनके रचना में यह अलकार कितना सिद्व है इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इन्हें संध्या या रात्रि प्रायः स्त्री रूप में ही दिखाई देती है -

फटा हुआ था नील वसन क्या, ओ यौवन की मतवाली।
देख अकिचन जगत लूटता, तेरी छवि भोली भाली॥[100]

इनकी कविता में मानवीकरण की प्रचुरता कल्पना के कारण है, जो व्यक्तिक संवेदनाओं को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील है ताकि सम्प्रेषित हो सके। इसी से विशेषण विपर्यय भी प्रेरित है, ओर दोनों में लक्षणा का भरपूर प्रयोग है। जैसे मानवीकरण में चित्रात्मकता की सिद्वि होती है, वैसे ही विशेषण-विपर्यय से भी। उपेक्षामय यौवन मधुमय श्रोत और निर्मम प्रसन्नता आदि में प्रत्यक्ष प्रभाव है। इन्होंने लज्जा के प्रभाव को व्यंजित करने के लिए लिखा है -

मतवाली सुन्दरता पग में नुपुर सी लिपट मनाती हूँ।[101]

इन्होंने जिस प्रकार उपमा में अपने शिल्प-कौशल का प्रयोग किया उसी प्रकार रूपक को भी नवीन रूप व नया रग दिया।

उपमा अपनी विभिन्न विचित्र भूमिकाओं में विभिन्न अलंकारों का रूप धारण करती है। इसलिए कविता के लिए सर्वाधिक स्वाभाविक अलकार वास्तव में वे ही है जिनमें किसी न किसी प्रकार उपमा विद्यमान हो। कवि का संवेदना के साथ इन्हीं अलंकारों का सबसे अधिक निकट का सम्बन्ध होता है। जब काव्य संवेदना में परिवर्तित होता तो वह अलकारों में उपमानों के परिवर्तन के रूप में सामने आता है। यह काव्य संवेदना को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाता है। उपमा मूलक अलकारों के अतिरिक्त वस्तु वर्णनात्मक, अतिशयमूलक, गूढ़ार्थ प्रतीतिमूलक या न्याय मूलक जो अलकार है वे मुख्यतः चमत्कारमूलक या मात्र वर्णनात्मक है। इन्होंने विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, समुच्चय, परिकर, यथासंख्य, स्मरण, काव्यलिग, उल्लेख आदि अलंकार का प्रयोग किया है। प्रसाद के विरोधाभास का उदाहरण है -

शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग जल का
यह व्यर्थ सास चल चलकर, करती है काम अनिलका। [102]

इसमे विरोधाभास शीतल ज्वाला जलती है केवल इतने अश में है किन्तु यह अंश एक पूरे कार्य व्यापार का केन्द्रीय अंश है और पूरी संवेदन-प्रक्रिया को व्यंजित करता है। प्रसाद जी को विरोधभास कितना प्रिय था इसका अनुमान "जलधि लहरियों की अंगड़ाई बारम्बार जाती सोने" रोदन हसता है क्यो" "कोमल कठोरता" "मधुमय अभिशाप" "विराग की प्यार" "मूक की घण्टा ध्वनि" दुर्भाग्य पीछा करने मे आगे था, भयानक शान्ति आदि" [103] उदाहरणों से लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभावना, विशेषोक्ति, असगति आदि उदाहरण भी सहज सुलभ है। प्रसाद जी के असंगति की तुलना किसी श्रेष्ठ उदाहरण से ही की जाती है -

मेरे जीवन की उलझन, बिखरी थी उनकी अलकें।
पी ली मधु मदिरा किसने, थी बन्द हमारी पलकें॥ [104]

इस प्रकार प्रसाद के अलंकार-विधान का विकासात्मक अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि शास्त्रीय रूढ़ियों से इनकी कविता मुक्त होती चली है। अलकारों की प्रचुरता फिर क्षीणता और फिर प्रचुरता का क्रम बराबर बना रहता है। इनकी कविता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अलकार उपमा रहा है। इनकी यह प्रक्रिया काव्य-भाषा के साथ एकाकार होने की दिशा में अग्रसर हुई।

रस-योजना

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति: वाक्य भरत के नाट्यशास्त्र का है। नाटक लाघव है तो काव्य व्याख्या। रसानुभूति के लिए रंगमच पर चुबन का एक दृश्य ही प्रयाप्त है परन्तु काव्य में यह सभव नही। काव्य का श्रोता इसी दृश्य मन के नेत्र से देखता है। इसलिए दृश्य को इसकी अपेक्षा स्थायी बनाना पड़ता है। "क्षणिक दृश्य विभावानुभाव की बंध पूर्ति करने पर भी रस-निष्पादन मे असमर्थ रह सकता है।" [105] प्रबन्ध काव्य में यह कठिनता दूर हो सकती है। इसी कारण बिहारी का यह दोहा रस-सिद्धान्तानुगामी होने पर भी रस मय नही है, और तुलसी का -

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहर रघुपति विरह राउ गये सुरधाम।। [106]

यह दोहा मात्र शुष्क वर्णन होने पर भी करूण रस का भण्डार है।

मुक्तक रचना में रस तभी आस्वाद्य हो सकेगा जब पाठक की ग्राहिका कल्पना अत्यन्त समृद्ध हो। रसवादी कवि लोक विश्रुत कथानक को लेकर प्रबन्ध रचना में सफल हो पाता है। रसवाद के समर्थक होने से इनका काव्य पौराणिक तथा ऐतिहासिक गाथाओं पर लिखा गया है। इनमें रस का सुन्दर वर्णन हुआ है। ये कामायनी में श्रद्धा के रूप वर्णन में विभावानुभाव व्यभिचारि सयोग सिद्धान्त का बंधन न होने पर भी पाठक को रस मग्न कर देता है। परन्तु ईर्ष्या-सर्ग के बाद रसानुभूति क्षीण होने लगती है। चित्रात्मक भाषा के स्थान पर -

मायाविनि बस पाली तुमने ऐसे छुट्टी।
लड़के जैसे खेलों में कर लेते खुट्टी।[107]

इसमें प्रारम्भिक सर्गो की भाँति सरसता के दर्शन नही होते। इसलिए जहां कथा बहु प्रचलित नही होती या कथा के चरित्र से पाठक परिचित नही होते वहां दृश्य मानस में बिबित करने के लिए चित्र को अधिक समय तक रखने की आवश्यकता होती है।

इसका तात्पर्य यह है कि चित्रात्मकता रस का परमावश्यक उपकरण है। प्रसाद इसके प्रयोग में पारंगत है। वह मात्र अनुभावों से रस निष्पन्न कर देते है -

शिथिल शरीर वसन विश्रृखल
कवरी अधिक अधीर खुली
छिन्न पत्र मकरद लुटी सी
ज्यों मुरझाई हुई कली।[108]

इस प्रकार अधिकांशतः इनकी रचनाओं मे रस की यही आधार-शिला यही चित्र-शैली ही है। "आसू" तो इनकी रस पूर्ण रचना है। परन्तु उसमें श्रृंगार का अभाव होने से रस के छीटें ही प्राप्य है रस का अखड प्रवाह नही मिलता। लेकिन चित्र-शैली ने गीतों में भी रस का आस्वादन करवाया है।

प्रसाद काव्य का उत्कृष्ट तत्व है जिज्ञासा, और जिज्ञासा की सतत् प्रबलता ही रस की बाधक है। यही जिज्ञासा जब श्रद्धा में बदल जाती है तब रस की भूमिका तैयार होती है। प्रसाद काव्य जिज्ञासा सर्वानुभूतिगम्य न होने से रहस्यवाद रसास्वाद क्षमा नही हो पाता।

काव्य का रहस्यवाद प्रियतम को प्राप्त करना चाहता है वह अपने को प्रियतम से विसर्जित नही करना चाहता। भाव योगी ब्रह्म मे अपनी क्रियाओं का प्रकाश तो देखता है, लेकिन वह प्रत्येक क्रिया को प्रियतम के सौन्दर्यबर्द्धन का सहायक बनाना चाहता है। इस प्रकार तृष्णा अतृप्ति इस रहस्यवाद का प्रथम लक्षण है। प्रसाद का रहस्यवादी कवि अतृप्त भाव से व्याकुल सा दिखाई पड़ता है। अपनी इस अतृप्ति में, हृदय की इस शून्यता में उसे जीवन-ज्योति का आभास मिलता है। इस प्रकार चिंतन एवं विचार के परिणामस्वरूप निरूपित सम्बन्ध दर्शन की कोटि में रखा जायेगा। सामान्य रूप से दोनों में चिन्तन और अनुभूति का अन्तर है। साधक को चिन्तन द्वारा अनुभूति हो सकती है और वह उसे पद्य में अभिव्यक्त भी कर सकता है, फिर भी दोनों में अन्तर है। दर्शन में हम चित्त वृत्तियों का निरोध करके मन को विषय में स्थित करते है तथा काव्य में चित्त वृत्तियाँ स्वत. मचलकर मन को विषय में प्रवृत्त करती है।

प्रसाद काव्य में प्रेम, सौन्दर्य तथा प्रकृति अंशतः रहस्यमय है। उसकी रहस्यमयता यही तक सीमित रही है। सन्त कवियों की भाँति इस लोक के उस पार बहुत कम गयी हैं। इनके काव्य की दूसरी विशेषता है प्रकृति प्रेम। किन्तु प्रकृति के प्रति रति एक निष्ठ होने से श्रृगार रस तक नही पहुच सकी। प्रकृति दूसरे के रति भाव को परिपुष्ट कर सकती है, स्वयं रति का विषय नही हो सकती। प्रकृति को आलम्बन रूप में चित्रित करने से जब इन्हें रास नही आया, तो उसे नारी का भी रूप देना शुरू कर दिया। निष्कर्ष यह है कि प्रकृति से प्रेम करने की क्रिया विचार द्वारा ही समर्थित हो सकती है, भावनानुमोदित नही। इसी कारण इनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं में श्रृंगार रसा भास है।

युग-प्रवाह भावना में परिवर्तन लाता है। भावना से भाव बदलते है। रस का भाव से संबध होने से रस भेद स्वाभाविक है। देश काल, परिस्थितियों के अनुसार मनोदशा में भी परिवर्तन आता है। जो नारी रीति काल में श्रृंगार की प्रति-मूर्ति थी वह द्विवेदी काल में आदर्श-भावना से प्रेरित हुई। गुप्त काल में नारी करूण की मूर्त्ति बन कर प्रकट हुई। इस प्रकार परिवेश बदला। प्रसाद ने नारी वर्णन मे पुराने विचारों का बदलाव किया वे नख-सिख वर्णन न करके नारी की स्वस्थता से आकर्षित हुए। नारी के गठे हुए दृढ़ अगाग ही उद्दीपन हुए -

खुले मसृण भुज मूलों से,

वह आमत्रण था मिलता।

उन्नत वक्षों में आलिगन

सुख लहरों सा तिरता।

वे मांसल परिमाणु किरण से,

विद्युत थे बिखराते।[109]

वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रस इनके नाटकों में ४देश सम्बन्धी कविता४ मिलते हैं। इनकी रचनाओं में कुतूहल और जिज्ञासा का प्राचुर्य है। जिज्ञासा व कुतूहल रस नहीं है। रस तो इन दोनों की तुष्टि में है। इसलिए इनके काव्य में अद्भुत रस के दर्शन नहीं होते। श्रृगार व करूण रस इनके अधिकाश रचनाओं में पाये जाते है। आंसू तो करूण का भण्डार ही है। दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति की भावना ने करूण रचनाओं की प्रेरणा दी है। परवश नारी, असहाय कृषक, पीड़ित मजदूरों से सबधित कविता में करूण रस का परिपाक हुआ। यहा द्रवणशीलता कम, व्यक्ति वाचक सज्ञाओं के सहारे सहानुभूति उभाड़ने के प्रयत्न अधिक है -

घर-घर के बिखरे पन्नों में नग्न, क्षुधार्त कहानी।

जन मन के दयनीय भाव, कर सकती प्रकट न वाणी॥[110]

प्रसाद ने प्रिय की स्मृति में भी वियोग के साथ-साथ करूणा का वर्णन किया है आंसू में वे हृदय के हाहाकर को वर्णित करने में नही चूकते -

इस करूणा कलित हृदय में

क्यों विकल रागिनी बजती।

हाहाकार स्वरों मे,

वेदना असीम गरजती।[111]

इसमें कवि का करूण वर्णन चरम सीमा पर पहुँच गया है। प्रसाद ने श्रृंगार को ही हास्य के रूप में व्यंजित किया है। इनकी जिज्ञासा इतना प्रचुर है कि हृदय मे एक भाव ठहरता ही नहीं। इसलिए क्षण-क्षण बदलने के कारण कविता में करीब-करीब सभी रस पाये जाते है।

छन्द-योजना

भानु के अनुसार - "मात्रा, वर्ण, जिस पद रचना में यति-गति नियमानुसार हो और अन्त में समता हो उसे छन्द कहते हैं।"।।2 यह परिभाषा कविता की मुक्तावस्था और उसकी परवश्यकता का परिचय देती है। जहा छद पहले लय का मात्र आच्छादन था वहा बाद में वह लय का निर्मम बधक बन बैठा। धीरे-धीरे तुक को भी छन्द का प्रधान लक्षण माना जाने लगा और यही परम्परा चलती रही। हिन्दी कविता में छन्द का इतिहास कविता की वाचिक परम्परा के ह्रास तथा छन्द के कमशः टूटने का इतिहास है। परन्तु इसका यह अर्थ नही है कि कविता अब छन्दहीन हो गयी है। जब भाषा काव्य भाषा बनती है तब उसका उच्चारण गद्य भाषा से भिन्न होता है। और यही उच्चारण-गत भिन्नता व्यापक अर्थ में छन्द है। प्रसाद की रचनाओं में छदो दृष्टि से अध्ययन के लिए निम्न पुस्तकें ही रखी जा सकती है -

नाटक -

स्कन्ध गुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, धुवस्वामिनी, विशाख, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्य श्री, एक घूँट।

गीति नाट्य — करूणा लय।

काव्य - कामायनी, आसू, लहर, झरना, महाराणा का महत्व, प्रेम पथिक, कानन कुसुम।

विविध - चित्राधार, उर्वशी, बभ्रु वाहन, प्रेम राज्य, अयोध्या का उद्धार, वन मिलन।

इस प्रकार द्विवेदी युग की इति वृत्तात्मकता के प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न छायावाद ने जहा भाव भाषा के क्षेत्रों मे उथल पुथल मचा दी वहीं छद के क्षेत्र में भी कम क्रांति नही की। इस प्रकार छायावादी कवि प्रसाद को हम लेकर अध्ययन करेंगे कि उनकी छन्द क्रान्ति का क्या स्वरूप है। वैसे प्रसाद तो द्विवेदी और छायावाद युग के सगम स्थल है। अत उनके काव्य में द्विवेदी युग में प्रचलित प्राय. सारे छद मिल जाते हैं।

बीसवी शताब्दी की कविता का इतिहास द्विवेदी सपादित "सरस्वती" की गतिविधि से प्रारम्भ होता है। खड़ी बोली हिन्दी काव्य के आरम्भ की भाषा संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित थी। इसलिए द्विवेदी ने भाषा आन्दोलन समर्थन में काव्य भाषा की बोल चाल से भिन्न न होने का तर्क भी सामने रखा था। वैसे तो भारतेन्दु काल

में लावनी एव कजली छन्द अत्यन्त लोकप्रिय नही थे परन्तु इसका परित्याग प्रसाद ने नही किया। लावनी में तीस तथा बाइस मात्राओं वाले दोनों रूप प्राप्त होते है। तीस मात्राओं वाली लावनी प्रसिद्ध ताटक ही है। अन्तर केवल चरणों की सख्या और अन्त में तीन गुरु के आने या न आने में पड़ता है। कामायनी का निर्वेद सर्ग इसी छन्द में लिखा गया है। बाईस मात्रिक लावनी का प्रचार भी अधिक हुआ है। प्रसाद के "कानन कुसुम" में इसके प्रयोग मिलते है। प्रेम-पथिक में भी यदा-कदा इसका प्रयोग मिलता है -

इसका है सिद्धात मिटा देना, अस्तित्व सभी अपना
प्रियतम मय यह विश्व निरखना, फिर उसको है विरह कहा।[113]

भानु के अनुसार समप्रवाही ताटक में 16-14 पर यति देकर 30 मात्राए होती है। अत में मात्र {SSS} रहता है। पर कवि प्रयोग में SS।, ।।S और S।। भी मिलता हैं।

प्रसाद ने तुक का प्रयोग विभिन्न तरीकों से किया है। तुक एक प्रकार का सम है, इसलिए हमारी अर्न्तवृत्ति स्वत उसकी ओर आकृष्ट हो जाती है। तुक मिलाने में कवि को बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। छोटे छन्दों में तुक का जमघट देखकर श्रोता ऊब उठता है। उस समय वह तुक नहीं चाहता। क्योंकि उस समय तुक उसकी चिर प्रतीक्षित वस्तु की प्राप्ति के समान है। इसलिए अन्त्यानुप्रास की विरलता ही आकर्षण है उसकी प्रचुरता विकर्षण उत्पन्न कर देती है। अन्त्यानुप्रास अपरोक्ष रूप से एक सकेत करता रहता है कि इन दो पंक्तियों का एक दूसरे से सम्बन्ध है। घनाक्षरी में जो एक ही अन्त्यानुप्रास के दर्शन होते है, वह इसी उद्देश्य से। प्रथम तीन चरण में जो भाव उठता है चौथा उसे पूरा कर देता है। प्रसाद ने अन्त्यानुप्रास में कभी-कभी पूरे चरण या चरणाश को रख दिया है। इस प्रकार इन्होंने निरतर तुक के कारण प्राचीन शैली के गीतों की नीरसता दूर करने के लिए टेक रखते हैं।, और उसका अनुबन्ध लगातार न रखकर अन्तर से रखा हैं -

हैं पलक परदे खिचे वरूणी मधुर आधार से,
अश्रु मुक्ता की लगी झालर खुले दृग द्वार से।[114]

इस प्रकार प्रसाद अपनी रचनाओं में तुक के प्रयोग में सारी सावधानी बरतते हैं, परन्तु इससे नीरसता तो दूर हुई किन्तु जब अन्त्यानुप्रास एक निश्चित अन्तर से आने लगा तो एक स्वरता

आ गयी। लय काव्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है। लय सगीत की आत्मा है, किन्तु कविता का प्राण कहा जा सकता है। प्रसाद ने लय को आधार तो बनाया है, लेकिन शब्द सस्थापन क्रम में विपर्यय ज्यादा पाया जाता है -

"अतरिक्ष के मधु उत्सव के विद्युत कण मिले झलकते से" 115

काम - सर्ग की यह पक्ति समान सवैये की हो गयी है, जबकि सारा सर्ग मत्त सवैये में लिखा गया है। मत्त सवैये का प्रारम्भ अतरिक्ष जैसे षष्ठकलात्मक शब्द मे नही हो सकता है। पक्ति इस प्रकार ठीक की जा सकती है - "इस अतरिक्ष के उत्सव के विद्युत्कण मिले झलकते से।" इस प्रकार प्रसाद ने कहीं-कहीं लय की प्रवाहता को बिगाड़ दिया है। छद पाठकरते समय जहां वाणी थोड़ा विश्राम लेती है उसे यति कहते हैं। चरण के बीच में यति पाठक को कुछ विराम देती है। चरण के अन्त की यति पूर्णक और बीच की लयात्मक है। प्रसाद की रचनाओं में यति दोष भी पाये जाते हैं। उनकी यति लयात्मक न होकर सर्वतः अर्न्तयति ही होती है। इस तरह की रचनाओं में इन्होंने लय की उपेक्षा कर दिया है। ये केवल वर्ण या मात्रा की गणना करते है स्वर की एकता पर नहीं ध्यान देते। परन्तु इनकी रचनाओं में यह विशेषता है कि स्वाभाविक निश्चित यति के अतिरिक्त भी जब भाव या विचार के अनुकूल अर्न्ययति रखते है तो भाव और स्पष्ट हो जाता है -

नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन। 116

प्रत्येक था क्रिया के बाद यति रखने से मानों कवि एक-एक वस्तु को अलग-अलग निर्देश करके बता रहा है। इस प्रकार भाव और लय की एकता के कारण एक ओर जहा कवि ने लय यति के स्थान पर अर्थ यति, भाव यति को कविता मे प्रवेश कराया है, वहीं दूसरी ओर भाव को सुश्रृखलित किया है।

प्रसाद ने लघु गुरु के परिवर्तन से लय की गति ही बदल दिया है। सोरठा में 26 मात्राए होती है 11, 13 पर यति और अत में 2 लघु रहते है, परन्तु इन्होंने सोरठे के चरणात में दो लघु के स्थान 1 गुरु रख दिया है जिससे नया छन्द बन गया -

मधुर-मधुर आलाप, करते ही प्रिय की गोंद में,
मिटा सकल सताप, वैदेही सोने लगी। 117

तुक और लघु गुरू नियम की उपेक्षा कर गीति नाट्यों में अरिल का प्रयोग हुआ है। "ताटक §16, 14, SSS§ की लय में भी इसी प्रकार परिवर्तन करते हैं।"[118]

प्रसाद ने मात्रिक छन्दों का प्रयोग तो काफी किया है, परन्तु द्विवेदी की तुलना में तो कम ही है। अपने काव्यों एव नाटकों में इन्होंने दोहा, सोरठा, छप्पय, बरवै, चौपाई, गीतिका, हरिगीतिका, ललित, वीर, रोला, उल्लाला, पद्धटिका, पद्धरि, दिग्पाल, ग्रथि, लावनी या राधिका, तोमर आदि छन्दों का प्रयोग किया है।"[119] गुप्त जी की तरह से एक प्राचीन छन्द को अत्यन्त लोक प्रिय बना देने का श्रेय प्रसाद को है। यह छन्द है आसू में प्रयुक्त छन्द। यह छन्द कौन सा प्राचीन छन्द है ? इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में मतभेद है, कुछ लोगों के अनुसार यह "सखी" छन्द है।[120] कुछ अन्य लोगों के अनुसार यह "मानव" छन्द है।[121] सखी, मानव, मधुमालती, मनोरमा आदि कई छन्द चौदह मात्राओं के चरणों वाले छन्द हैं, परन्तु चौदह मात्राओं के नियोजन से इनकी लय अलग-अलग हो जाती है। इन्होंने आसू में जिन छन्दों का प्रयोग किया है वे भी चौदह-चौदह मात्राओं से बने है, लेकिन इनकी लय प्राचीन छन्दों से भिन्न है। इसलिए आंसू में इन्होंने न तो मानव छन्द का प्रयोग किया है न सखी का -

> ये सब स्फुलिग हैं मेरी, इस ज्वालामयी जलन के
> कुछ शेष चिन्ह है केवल, मेरे उस महा मिलन के।[122]

इसलिए इसका जो नया नाम "आसू" दिया गया है, वही ठीक है। इनकी सगीत शुद्ध भारतीय संगीत है। डॉ0 पुत्तू लाल द्वारा निर्मित नव विकर्षा-धोर के अन्तर्गत छन्द भी इनकी रचनाओं में पाये जाते है। इन छन्दों की लयें तो पुरानी है, किन्तु अन्त्यक्रम, मात्रा सख्या और मात्रा क्रम नवीन हैं, जिनके आयोजन मे कवि ने पूर्ण स्वतन्त्रता ली है। विकर्षाधार छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है -

> फैलाती है जब उषा राग,
> जग जाता है उसका विराग।
> वचकता, पीड़ा, घृणा, मोह,
> मिलकर बिखेरते अन्धकार।
> धीरे से वह उठता पुकार,
> मुझको न मिला रे कभी प्यार।[123]

इसमें 16 मात्राए अन्त में §S।§ के आधार पर क क ख ग ग क§ अन्त्यक्रम से विकृष्ट छन्द है।

इस प्रकार प्रसाद ने अपनी रचनाओं में उपरोक्त छन्दों का प्रयोग तो किया ही है, परन्तु इनकी रचनाओं में नये छन्दों का भी आर्विभाव हुआ है। इसमें इनकी रचनाओं पर बगला व उर्दू का भी प्रभाव पड़ा है और कही-कहीं मुक्त छन्द भी पाये जाते हैं। प्रसाद ने हिन्दी छन्दों की लयों में सशोधन किया है। इनके उर्दू लयाधार में छन्द गति के प्रयोग से अपूर्व सगीत लहरी उत्पन्न हुई। इस प्रकार कविता में नयी झकार आ गयी -

विमल इन्दु की विशाल किरणे,
प्रकाश तेरा बता रही है।
अनादि तेरी अनत माया,
जगत की लीला दिखा रही है।[124]

उपर्युक्त कविता के प्रथम छन्द का 16 मात्रिक चरण चार चौकलों में विभक्त है, दूसरा चरण अरिल्ल §अंत में ।SS§ है। किन्तु दोनों मिलकर वस्तुतः एक चरण बनाते हैं। हिन्दी के वर्णिक छन्द यशोदा §ज+SS§ से इसका साम्य मालूम पड़ता हैं। लेकिन यशोदा §ज+SS§ के बधन में है और इसकी लय बधन विमुक्त है। अतः इसका आधार उर्दू बहर §फऊल, फालन्, मऊल, फालन, फऊल, फालन, फउल फालन हो सकती है। परन्तु इसमें लघु गुरू का निपात हिन्दी का है। दूसरे छन्दों का प्रथम चरण पज्झतिका §8+S+4+S§ का चौथा डिल्ला §अन्त में S।।§ का है। लेकिन दीर्घ वर्णों का उच्चारण कही-कही उर्दू की भाँति करना पड़ रहा है। इसलिए उर्दू लय के प्रभाव के कारण इनके छन्द-विधान में परिवर्तन हुए हैं।

गजल का हिन्दी कविता में अवतरण प्रेम के क्षेत्र में हुआ है। प्रसाद अपनी कविता मे न केवल छन्द विन्यास, अपितु प्रेमास्पद सम्बोधन शैली का भी प्रयोग करते हैं। उर्दू में वह प्रेयसी को वह कहकर पुकारते हैं। "हिन्दी में भी प्रेयसी पुल्लिंग शब्दों द्वारा सबोधित की गई हैं।"[125] प्रसाद ने जो गजले लिखी है, उनमें गजल के सभी नियमों का पालन है। कानन कुसुम में सगृहीत "सरोज" शीर्षक गजल में मत्ला ओर मक्ता का निर्वाह है। कही-कहीं इन्होंने मत्ला का निर्वाह नहीं किया है। धुवस्वामिनी

में इसका उदाहरण पाया जाता है, परन्तु इसका भी लया-धार उर्दू से लिया गया है। जैसे-जैसे हिन्दी में जागृति आने लगी तब उनके काव्य पर बंगला का भी प्रभाव पड़ा। भाव या शैली के परिवर्तन में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से हिन्दी उसकी ऋणी है। बगला के छन्द अधिकतर अक्षर मात्रिक होते हैं। उनके अक्षरों की विशेष उच्चारण शैली मात्राए पूरी कर देती है, किन्तु उच्चारण की स्वच्छन्दता न होने से बंगला छद हिन्दी में उपयुक्त नही ठहरते। प्रसाद की रचनाओं पर भी बगला का प्रभाव कही-कहीं दिखाई पड़ता है -

नील मनि माला माँहि सुन्दर लखत,
हीरक उज्जवल खण्ड विकाश सतत
कामिनी चिकुर भारत अति घन नील,
तामे मणि सम तारा सोहत सलील।[126]

इनके छन्द में वर्ण तो अवश्य 14, 14 है किन्तु मात्राए असमान है। इसलिए यह मात्रिक न होकर वर्णिक बन गया। यदि लखत, विकास, सतत शब्दों को लखोत, विकासो सतोत की भाँति पढा जाय तभी पयार की गति आ सकती है अन्यथा इसे घनाक्षरी कह सकते है, क्योंकि बगला का पयार छन्द इसी पर आधारित है।

बगला छन्दों को हिन्दी ने ग्रहण करना स्वीकार नही किया। लेकिन बगला में जो ब्रज शैली के छन्द है, उनकी उच्चारण पद्धति हिन्दी के समान है। इसलिए प्रसाद ने बगला के वेही छन्द ग्रहण किये जो उनकी प्रकृति के अनुरूप थे।

प्रसाद ने मुक्त छन्द का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। पंत के कथनानुसार - "स्वच्छन्द छन्द लय पर चलता है"[127] मुक्त छन्द संगीत प्रधान नही, लय प्रधान है। वह गान के लिए नही, पाठन के लिए होता है। उसमें व्यजनों की महत्ता है, स्वरों की नही। प्रसाद के मुक्त छन्द में लयावर्त बहुत मिलते हैं -

अखिल अनत में,
चमक रही थी लालसा की दीप्त मणियां,
ज्योति मयी, हास मयी, विकल विलासमयी।[128]

इन्ही लयावर्तों के द्वारा मुक्त छन्द तुक मात्रा के अभाव की पूर्ति करता है।

भाषा -

कालरिल ने कहा कि "पोयट्री, द बेस्ट वर्ड्स इन द वेस्ट आर्डर" (अर्थात् कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम विधान) है।"[129] अज्ञेय भी कहते हैं कि "काव्य के जो भी गुण बताये जाते है या बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण है।[130] इस प्रकार ज्यों-ज्यों कविता का रूपगत विवेचन गहरा और सूक्ष्म होता जाता है, त्यों-त्यों इस प्रकार की मान्यताए गहराती जाती है कि "काव्य भाषा स्वय से ही उत्पन्न रूप है।"[131] सर्वप्रथम प्रसाद ने कविता लिखना ब्रजभाषा में प्रारम्भ किया। चित्राधार के अन्तिम दो खण्डों की रचनाएं एव प्रेम पथिक का मूल रूप ब्रजभाषा में ही है, किन्तु इनकी ब्रजभाषा वस्तुत· खड़ी बोली का ब्रज भाषा-करण है। इनकी "ब्रज भाषा अधिकतर तत्सम शब्दों के आधार पर खड़ी बोली के ढांचे को स्वीकार करते हुए ब्रजभाषा का आभास देने की चेष्टा की हे और इसीलिए उनकी संवेदना रीतिकालीन बन्धनों से मुक्त होने के लिए छटपटाती दिखाई देती है। स्वय प्रसाद ने उस मात्रा में तत्सम शब्दों का प्रयोग बाढ के अपने खड़ी बोली काव्य में नही किया। जितना आरम्भिक कविताओं में मिलता है।"[132] इसी छटपटाहट के कारण ही मूलत ब्रजभाषा में लिखित "प्रेम पथिक" को खड़ी बोली में रूपान्तरित किया गया है। यह रूपान्तरण केवल भाषा गत नही था बल्कि सवेदनागत भी था। "प्रेम पथिक" में ब्रज भाषा वाले रूप का प्रेम का देवता कहता है -

हिय राखि कछु धीरज, सहि कछु पीर,
आशा और निराशा नैनन नीर।[133]

"वही प्रेम का देवता खड़ी बोली वाले ढाचे में प्रणय का तात्त्विक विश्लेषण करता है।"[134] किंतु प्रसाद जी शीघ्र ही खड़ी बोली के ब्रज भाषा करण से मुक्त हो गये, क्योंकि काव्यानुभूति में थोड़ी सी परिपक्वता आ जाने पर तथा अनुभूति के विशिष्ट स्वरूप को पहचानने के बाद उसकी आवश्यकता ही नही रह गई। प्रसाद भाषा के उन गुणों पर बल देते हैं जो द्विवेदी युगीन कवियों के दारा दिए गये शुद्धता, गद्य पद्य की भाषा की एकता, भाषा की सरलता, स्पष्टता और अर्थगत निश्चितता पर बल देते है वहीं पर प्रसाद भाषा के राग, छायावादी वक्रता, ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता सौन्दर्यमय प्रतीकात्मकता तथा उपचार वक्रता पर बल देते हैं। प्रसाद की कविता दुरूहता की भाषा न होकर कविता की है। इन्होंने शब्दों का नये ढंग से प्रयोग किया है। इस नये ढंग के प्रयोग का एक रूप नये प्रकार का वाक्य विन्यास व नये प्रकार का लय प्रधान है। बासी

और अर्थ क्षीण शब्दों को उनकी अभ्यास जड़ लीकों से हटाने के लिए कवि एक नयी लय ताल में ढालता है। एक छन्द और वाक्य विन्यास से नियोजित करता हैं। जिससे उसकी सहजता वापस आ सके -

कल्पनातीत काल की घटना।
हृदय को लगी अचानक रटना।
देखकर झरना- ।[135]

यह भाषा के प्रति नये प्रकार की सजगता और नये प्रकार का प्रयोग है। उर्दू शब्द भी इन्होंने तत्सम शब्दों के साथ जोड़ा है -

सुख आहत शान्त उमंगे,
बेगार सास ढोने में।[136]

प्रसाद की काव्य-भाषा विशेषण बहुल भी है। लेकिन विशेषण की व्यर्थ की भरमार नही है। परम्परागत शब्दों में इन्होंने शब्द की व्यजना और लक्षणा शक्तियों पर विशेष बल दिया है। इन्होंने नये शब्दों का निर्माण तो कम किया है, किन्तु पुराने, वैदिक साहित्य तक के कुछ अप्रचलित अवभृत, स्नान, पुरोडाश, तिमिंगल, शरभ आदि शब्दों का पुनरुद्धार कर उन्हें नयी गति और नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। निम्न लाइनों में "क्षितिज" शब्द का प्रयोग इस तरह किया गया कि वह न केवल अमूर्त से मूर्त हो उठा है बल्कि नयी अर्थवत्ता भी प्राप्त हो गयी है -

तुम हो कौन, और मै क्या हूँ,
इसमें क्या है धरा सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुम्बित
मेरे क्षितिज उदार सुनो।[137]

क्षितिज की यह नयी अर्थवत्ता नयी अनुभूति का फल है किन्तु उसकी सिद्धि गौड़ी-लक्षणा द्वारा की गयी है। यों तो प्रसाद ने मुहावरों का प्रयोग तो किया है, किन्तु वह विरल है। अधिकाश मुहावरों की भाषा बदल दी गयी है जिससे मुहावरों का प्रभाव क्षीण हो गया। मुहावरों का प्रयोग यत्र-तत्र तो हुआ है परन्तु खड़ी-बोली काव्य में इसे नही के बराबर समझना चाहिए। मुहावरों की भाषा लाक्षणिक है। इस प्रकार इन्होंनें लिखा है -

बंहुत दिनों पर एक बार तो सुख की बीन बजाऊँ।[138]

इसमें बीन के स्वर में उसने सुख का अनुभव किया है।

प्रसाद ने खड़ी बोली के काव्य भाषा के रूप में सिद्धि को इस स्थान तक पहुँचा दिया है कि उससे अप्रभावित रहना दुष्कर है। आख्यान कविताओं प्रसाद का काव्य विकास अधिक स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कानन-कुसुम में कवि के कई रूपों के दर्शन एक साथ हो जाते हैं। प्रकृति, विनय, भक्ति, इतिहास पुराण सभी से कवि ने प्रेरणा ग्रहण की है। भाषा की दृष्टि से उसमे परिमार्जन है तथा भावों का नैसर्गिक प्रवाह भी दिखाई देता है। प्रसाद जी ने आख्यानों की रचना में प्रयोगात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रसाद ने अपने काव्य ससार में विशेषणों का प्रयोग विभिन्न तरीकों से किया है। इन्होंने विशेषण को सज्ञा की भाँति व्यवहृत किया है - "इन्होंने "अ" जोड़कर अगन (अनगिन) "नि" जोड़कर निधड़क आदि शब्द बनाये। आज तक "बेधड़क" आदि प्रचलित थे।[139] इस प्रकार इन्होंने गुलर भी को गुलप्पन से लिया है -

ऊषा की सजल गुलाली जो
घुलती है नीले अबर में।[140]

प्रसाद ने कुछ नये शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने संवेदन का अर्थ बोध-वृत्ति से लगाया है -

"मनु का मन था विकल हो उठा, सवेदन से खाकर चोटे[141]

इस प्रकार सम्वादात्मकता के साथ-साथ इनकी कविता में पर्यायवाची शब्दों के सूक्ष्म अन्तर, उनके भाव, चित्र, ध्वनि सभी का अध्ययन किया है। इनकी कविता में दृश्य, गति, क्रिया सभी के चित्रण प्राप्त होते हैं। शब्दों की गुप्त शक्ति पहिचानने उपयुक्त एवं चित्र भाषा का प्रयोग हुआ है -

जीवन का जटिल समस्या, है बढ़ी जयसी कैसी ?[142]

तथा गति व्यजना के लिए कवि ऐसी शब्द मणिया विजाड़ित करता है जो सजीव एव सचल को स्पष्ट रूप से बिम्बित कर देती है। इनकी कविता में ऐसे शब्द मुकुर प्रचुरता से प्राप्त होते हैं -

वह जीवन की चिनगी अक्षय
प्राणों की रिलमिल-झिलमिल सी।[143]

रिलमिल-झिलमिल शब्दों से चीटियों के भार लेकर चलने का चित्र स्पष्ट हो जाता है।

कामायनी में भी इसके विशिष्ट उदाहरण पाये जाते हैं।

इस प्रकार जब हम प्रसाद के काव्य-भाषा के रूप का अवलोकन करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि उनकी मुख्य धारा स्थूल इति वृत्तात्मकता से सूक्ष्म अभिव्यंजनात्मकता की ओर रही। इनके काव्य में स्थूल ओर सूक्ष्म दोनों की प्रवृत्ति साथ-साथ चलती है। विभिन्न कारणों से कभी एक प्रबल हुई कभी दूसरी। यह प्रक्रिया देश में औद्योगीकरण तथा उससे सम्बन्ध पूंजीवाद एवं नगरीकरण की प्रवृत्ति तीव्र होने के साथ ही तीव्रतर हुई। इससे यह सिद्ध होता है कि काव्य-भाषा सामाजिक विकास से निरन्तर सम्बन्ध होती है। गतिशील समाज में काव्य-भाषा गतिशील रहती है और स्थिर समाज में स्थिर रहती है। वह सामाजिक परिवर्तन के साथ बदलती है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्र0सं0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सख्या
1.	हिन्दी साहित्य (भूमिका से)	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी	17
2.	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	प्रसाद	16
3.	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	"	71
4.	"	"	44
5.	"	"	44
6.	"	"	44
7.	"	"	68
8.	"	"	68
9.	"	"	121
10.	"	"	121
11.	छायावाद	उदयभान सिंह	11
12.	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	प्रसाद	122
13.	हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य	प्रेम शंकर	203
14.	चन्द्रगुप्त	प्रसाद	170
15.	चन्द्रगुप्त	"	86
16.	स्कन्धगुप्त	"	145
17.	उपहूता पृथ्वी माता उपमा पृथ्वो माता हृदयताम यजुर्वेद		2/10
18.	कामायनी श्रद्धा सर्ग	प्रसाद	64
19.	कामायनी कर्म सर्ग	प्रसाद	132
20.	कामायनी कर्म सर्ग	"	140
21.	"	"	139
22.	कामायनी श्रद्धा सर्ग	"	65
23.	अजातशत्रु	"	85
24.	राज्यश्री	"	82

क्र0सं0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
25·	कामायनी	जयशकर प्रसाद	85
26·	कामायनी	"	67
27·	कामायनी	"	252
28·	कामायनी	"	256
29·	यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता	मनुस्मृति	3/6
30	ध्रुवस्वामिनी	"	19
31·	कामायनी	"	272
32·	स्कन्धगुप्त	"	139
33·	शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम। न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धवे तद्दि सर्वदा।	अथर्ववेद	3/18
34·	करूणालय	जयशंकर प्रसाद	12
35·	बच्चे-बच्चो से खेले हो स्नेह बढ़ा उसके मन में कुल लख्मी हो मुदित भरा हो मंगल उसके जीवन में बन्धु वर्ग हो सम्मानित, हो सेवक सुखी प्रणत अनुचर अजातशत्रु	जयशंकर प्रसाद	26
36·	यतोऽभ्युदयः निः श्रेयसे सिद्दि सः धर्मः	वैशेषिक सूत्र	1/1/2
37·	धर्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है, न करे तो मनुष्य और पशु में भेद ही क्या रह जाय। कंकाल	प्रसाद	110
38·	कंकाल	"	124
39·	गीता		17/28
40·	कामायनी	प्रसाद	137
41·	स्कन्धगुप्त	"	38
42·	अजातशत्रु	"	89
43·	कामायनी	"	158
44·	कामायनी	"	140
45·	कामायनी	"	13
46·	चन्द्रगुप्त	"	87
47·	कामायनी	"	114

क्र0सं0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
48.	आँसू	जयशंकर प्रसाद	78
49	While both philosophy and poetry aim at the same end their starting points are different. They approach reality from different angles. The Philosophy of Tagore by Dr. S. Radhakrishnan.		P. 163
50.	In Poetry Phiolosphy lives.	Ibid.	P. 142
51.	छायावाद और वैदिक दर्शन	प्रेम प्रकाश रस्तोगी	151
52.	कानन कुसुम	प्रसाद	6
53.	कामायनी	"	202
54.	एकसदिव् बहुधा वदन्ति ऋग्वेद		1/146/46
55.	ऋग्वेद		10/90
56	कवि प्रसाद की काव्य साधना	रामनाथ सुमन	287-88
57	आम्मा इन्द्रमय आनन्द आत्मा	तैत्तरी योपनिषद	3/6
58.	छायावाद और वैदिक दर्शन	प्रेम प्रकाश रस्तोगी	214
59.	बृह0 उपनिषद		4/45
60.	कामायनी	प्रसाद	83
61.	काव्य कला तथा अन्य निबन्ध	प्रसाद	36
62.	"	"	37
63.	"	"	37
64.	ऋग्वेद		7/88/3
65.	झरना	प्रसाद	73
66.	उस दिन जब जीवन के पथ में छिन्न पात्र ले कम्पित कर में। मधु भिक्षा की रटन अधर में इस अनजाने निकट नगर में, आ पहुँचा थं अकिंचना लहर	प्रसाद	17
67.	आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचार धारा पर पाश्चात्य प्रभाव	हरिकृष्ण पुरोहित	250

क्र0सं0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
68·	कामायनी	जयशंकर प्रसाद	68
69·	स्कन्धगुप्त	"	162
70·	प्रसाद का काव्य	डॉ0 प्रेम शंकर	162
71·	महाराणा का महत्त्व	प्रसाद	15
72·	चित्राधार	प्रसाद	21
73·	प्रेम पथिक	प्रसाद	24
74·	प्रेम पथिक	"	32
75·	प्रसाद की कला	गुलाब राय	38
76	झरना	प्रसाद	§परिचय से§
77·	झरना	"	15
78·	झरना	"	18
79·	आँसू	"	10
80	आँसू	"	16
81·	आँसू	"	19
82·	कामायनी	"	46
83	अथर्ववेद		19/44/5
84·	कामायनी	प्रसाद	46
85·	लहर	"	11
86·	सम्मेलन पत्रिका भाग भाग-57	डॉ0 राजकुमार मिश्रा	
87·	हिन्दी साहित्य कोश भाग-1	प्रसाद	
88·	आँसू	प्रसाद	15
89·	कामायनी	"	46
90·	कामायनी	"	168
91·	झरना	"	36
92·	कामायनी	"	63
93·	कामायनी	"	136
94·	छायावाद की प्रासंगिकता	रमेश चन्द्र शाह	23

क्र0स0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
95·	लहर	प्रसाद	29
96	घिर रहे थे घुँघराले बाल अंश अवलम्बित मुख के पास कामायनी	प्रसाद	47
97·	इन्दु, किरण 5 सं0 1996		77
98·	आँसू	प्रसाद	23
99·	कामायनी	"	46
100	कामायनी	"	40
101·	कामायनी	"	103
102	आँसू	"	10
103	जयशंकर प्रसाद : वस्तु	रामेश्वर खण्डेलवाल	380
104	आँसू	प्रसाद	25
105·	दूरै खरे समीप को मान लेत मन मोद। होत दुहुन के दृगन ही बतरस हँसी विनोद। बिहारी बोधिनी	बिहारी	196
106·	रामचरित मानस §अयोध्या काण्ड§	तुलसीदास	155
107·	कामायनी	प्रसाद	196
108·	कामायनी	"	212
109·	कामायनी	"	125
110·	आँसू	"	78
111·	आँसू	"	75
112·	मत्त वरण यति गति नियम अंतहि समता बंद जा पद रचना में मिलै, भानु भनत सोई छंद छन्द प्रभाकर	भानु	1
113·	प्रेम पथिक	प्रसाद	23
114·	कानन कुसुम	"	92
115·	कामायनी	"	73
116·	कामायनी	"	3
117·	कानन कुसुम	"	97

क्र0सं0	ग्रन्थों का नाम	लेखक का नाम	
118·	विमल व्योम में देव दिवाकर अग्नि चक्र से फिरते हैं, किरण नहीं, ये पावक के कण जगती तल पर गिरते है।" कानन कुसुम	प्रसाद	25
119	प्रसाद : वस्तु और कला	रामेश्वर खण्डेलवाल	392-93
120	इतिहास और आलोचना	डॉ0 नामवर सिंह	76
121	आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना	पुत्तू लाल शुक्ल	253-54
122·	आँसू	प्रसाद	29
123·	लहर	प्रसाद	35
124·	कानन कुसुम	6	1
125	सरासर भूल करते है, उन्हें जो प्यार करते हैं। बुराई कर रहे है, और अस्वीकार करते हैं इन्दु, मई 1913 ई	प्रसाद	499
126	संध्या तारा - इन्दु श्रावण शुक्ल 2 कला 2 किरण	प्रसाद	4
127	पल्लव (प्रवेश)	पंत	44
128	हंस, प्रलय की छाया	प्रसाद	1
129	सिद्धानत और अध्ययन	गुलाब राय	46
130	विवेचना (संकलन)	अज्ञेय	2
131	रीति विज्ञान	विद्या निवास मिश्र	44
132	भाषा और संवेदना	राम स्वरूप चतुर्वेदी	157
133·	प्रेम पथिक	प्रसाद	22
134·	इस पथ का उद्देश्य नहीं है, श्रान्त भवन में टिक रहता प्रेम पथिक	प्रसाद	22
135·	झरना	प्रसाद	15
136·	आँसू	प्रसाद	12
137·	लहर	प्रसाद	10
138·	कामायनी	प्रसाद	112
139·	निधड़क तूने ठुकराया तब मेरी टूटी मधु प्याली को। माधुरी	प्रसाद	136

क्र0सं0	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
140·	कामायनी	जयशकर प्रसाद	75
141·	कामायनी	"	36
142·	आँसू	"	14
143·	कामायनी	"	46

---000----

अध्याय - 4

निराला का काव्य और उनका काव्य-चिंतन

निराला का काव्य और उनकी विचारधारा :

"काव्य सर्जना है। यह भाव प्रवण की रागात्मक अभिव्यक्ति है। यह माना जा सकता है कि सिद्धान्तों को सामने रखकर सफल काव्य सृजित नही हो सकता, परन्तु काव्य का इतिहास यह सिद्ध करता है कि जब कवि की प्रतिभा में टकराव की स्थिति आती है तो कवि को अपनी रचना के साथ-साथ आलोचना भी करनी पड़ती है। समान धर्मी रचनाओं को परखने के लिए दृष्टि भी देनी पड़ती है। तुलसी, पंत, मुक्तिबोध, बादलेयर, एजरा पाउण्ड, टी0एस0 इलियट आदि इसके प्रमाण है। निराला के विषय में उनकी कविता "जूही की कली" की स्वय उसके द्वारा प्रस्तुत समालोचना इस कथन के सार्थकता के लिए पर्याप्त है।"[1]

निराला छायावादी कलाकार है। छायावादी कलाकारों का यह दुर्भाग्य या सौभाग्य रहा कि उन्हें अपने जीवन काल या रचना काल मे प्रबल साहित्यिक विरोधों का सामना करना पड़ा, उसी प्रकार जिस प्रकार अग्रेजी के कवि शेली और कीट्स को। परिणामस्वरूप छायावादी कवि-कलाकारों को लम्बी भूमिकाओं, वक्तव्यों एव आलोचनात्मक निबधों के माध्यम से अपने विचार, अपने काव्य मूल्य और अपनी मान्यताओं को स्पष्ट करना पड़ा। निराला ने अपनी रचनाओं को परखने के लिए उचित कसौटी का निर्माण किया। निराला कवि होने के अलावा तार्किक, पत्रकार, वाद-विवाद मे भाग लेने वाले तीक्ष्ण बुद्धि आलोचक भी थे। उन्होंने अनेक निबन्धों मे सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक समस्याओं पर अपने विचार विस्तार से प्रकट किया है।

इन्होने काव्य और जीवन के अन्योन्याश्रित सम्बन्ध को पहचाना है। इस सम्बन्ध को इन्होने कलात्मक रूप दिया। इन्होंने अपने काव्य में रूढ़ि ग्रस्त जर्जर मान्यताओं को स्थान नही दिया। मानव जीवन पर साहित्यकार की प्रतिष्ठा की रक्षा एक आचरण के रूप में की है। इन्होंने जीवन के सिद्धान्तों के आधार पर काव्य-शास्त्रीय चिन्तन भी किया है। निबन्धों और भूमिकाओं के साथ-साथ रचनाओं के माध्यम से भी अपनी बात दो टूक कहा है। इनकी मान्यताएं स्वच्छन्द दिखायी देती है। बंगला के आतक से हिन्दी काव्य को मुक्त करते हुए हिन्दी को यथोचित स्थान प्रदान करने का प्रयास इन्होंने किया है। कवि के विषय में ये कहते है -"कवि हृदय से नितान्त कोमल होता है। उसमें अपार सहानुभूति होता है। जिससे उसके हृदय में किसी भी चित्र की छाया ज्यों की

त्यों पड़ जाती है। अप्रत्यक्ष रूप से कवि का स्वाभाविक धर्म बन जाता है।"[2] निराला ने विश्व कवि टैगोर की कविताओं से भी कतिपय आदर्श ग्रहण किया हैं। निराला की दृष्टि में - "जिनके वचन-विन्यास में शक्ति होती है, जिनके शब्दों में मधुरता का स्वाद मिलता है वे कवि कहे जाते हैं। कवि शब्दों को जोड़ते नही उनके शब्द हृदय के स्वाभाविक उद्गार होते हैं। कवियों के हृदयों से निर्गत कविता रूपी उद्गार मे इतनी शक्ति होती है कि उसका प्रवाह जनता को अपनी गति की ओर खींच लेता है।"[3]

इससे स्पष्ट है कि निराला अपने इस कथन से वर्डसवर्थ से मिलते-जुलते हैं। इनके विचार से कविता स्वय उत्पन्न होती है, यह किसी उद्देश्य से नहीं रची जाती है। इस प्रकार जो साहित्य उच्च भावना सम्पन्न होता है, वह स्वयं कल्याणकारी होता है। निराला ऐसे साहित्य को गम्भीर अर्थों में लेते हैं। भावना चाहे वह कठिन ही क्यों न हो उसे भावों की अनुगामिनी मानते हैं। निराला मेधावी और चितनशील कवि हैं। जिस प्रकार वे कल्पनाशील है उसी तरह प्रखर विवेकी भी हैं। उनकी विशेषता यह है कि समाज को अप्रिय लगने वाले विचारों से घबराते नही हैं। निराला में जीवन जीने व उसका सुख पाने की अमिट आकाक्षा है। वे प्रकृति सौन्दर्य, नारी और मानव उल्लास के कवि हैं किन्तु इनके काव्य में उसका चरम उत्कर्ष नही है। उनकी शोकानुभूति गहरी है। जहां वेदना के तीव्र आघातों से मन सज्ञाशून्य हो जाता है, वहा मन की दशा को देखते हुए काव्य की रचना करते हैं।

भावों और विचारों के सघर्ष को मूर्त रूप देने व अन्तर्द्वन्द को देखने की पुष्टि 'तुलसीदास' और "राम शक्ति पूजा" में दिखायी देती है। निराला के रचनाकार व्यक्तित्व की विशिष्टता है ध्वनि सम्बन्धी सूक्ष्म ज्ञान है। जो बात शब्दों के अर्थ से नहीं मालूम होती है वह उनके ध्वनिप्रवाह से मालूम होती है। निराला में भारतीय दर्शन की अनेक धाराएं विद्यमान है। साख्ययोग ,शांकर, वेदान्त के अलावा उनमें शैव और शाक्त धारणाए भी मिली हैं। वे समकालीन बगला साहित्यधारा से सम्बन्ध जोड़ते हैं। उन्होंने अग्रेजी साहित्य से भी प्रेरणा ग्रहण की है तथा उर्दू के काव्य का भी अध्ययन किया है।

इस प्रकार निराला परिमल की भूमिका के आरम्भिक अंश मे एक लम्बे रूपक

के माध्यम से छायावादी कविता की प्रकृति का लेखा-जोखा पेश करते हुए, आगे की सम्भावनाओं और कवि कर्म पर प्रकाश डालते हुए लिखते है - "इसके सिवा अभी कर्म की अविराम धारा बहती हुई नही दिख पड़ती। इस युग के कुछ प्रतिभाशाली अल्पव्यस्क साहित्यिक प्राचीन "गुरूम" के एक ऐसा आवर्त बाधकर उठने वाला है, जिसके साथ साहित्य के अगणित जल कण उस एक ही चक्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ एक ही प्रवाह में बह जायेंगे।[4]

इस प्रकार यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो "बगावत" का सम्बल लेकर निराला ने "कर्म की अविराम धारा" को "नवीन जीवन" से जोड़ने की चुनौती स्वीकार की है। इन्होंने जिस नवीन जीवन को रूपायित किया है वह वेदना से पूरित था। "विधवा", "भिक्षुक" "दीन जन" किसान-मजदूर तुलसी दास के माध्यम से निराला की वेदना की कथा कहते दिखायी पड़ते हैं।

निराला का काव्य प्रयोग अनेक विविध भंगिमाओं से सपुष्ट एव परिपूर्ण है। विषय वस्तु के विविधता के साथ उनमें अनुभूति की गहनता है। वे व्यापक जीवन को साथ लेकर चलते हैं। "परिमल" की भूमिका में वे "कर्म की अविराम धारा" को "नवीन जीवन" से जोड़ने की प्रतिज्ञा करते हैं। अब इनके चिन्तन के मुख्य पहलू पर दृष्टि जाती है कि उनके चिन्तन का मुख्य आधार क्या था ?

(क) <u>ऐतिहासिक दृष्टिकोण</u> :

निराला तो हिन्दी साहित्य में ओज गुण के लिए प्रसिद्ध हैं। दार्शनिक चिन्तन, साहित्यिक वाद-विवाद, माधुर्य और व्यग्य तथा शोक मे भी उनकी वाणी ओजस्वी ही रही है। यह उनके व्यक्तित्त्व की नहीं बल्कि उनके युग की देन है। अग्रेजी कवि मिल्टन भी अपने उदात्त काव्य के लिए ही प्रसिद्ध हैं। ये यूरोप की पहली सामन्त विरोधी क्रान्ति के प्रबल समर्थक थे। उनके गद्य-पद्य में जो ओजस्विता दिखाई देती है उसका सम्बन्ध उस युग की क्रान्तिकारी चेतना से ही हो सकता है।

निराला ने बचपन मे बंग-भग स्वदेशी आन्दोलन देखा। इन्होंने उन युवकों की भी कहानियां पढ़ी, जिन्होंने भारत को मुक्त कराने के लिए अपने जान की बाजी लगा दी। निराला के काव्यों में ऐतिहासिकता की अमिट छाप पड़ी है। इन्हें भारतीय

व विश्व राजनीति के बारे में जो सामग्री मिलती है, उसे ध्यान से पढ़ते है। फिर अंग्रेजी राज और भारत के बारे में अपना निष्कर्ष निकालते हैं। इनके चिन्तन का मुख्य पहलू यह है कि इन्होंने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की आर्थिक नीति, राजनीतिक दांव पेच तथा सांस्कृतिक मामलों पर उनके हस्तक्षेप को पहचाना। इन्होंने अग्रेजो के उपनिवेशवादी नीति के विषयपरविचार व्यक्त किया है - "महात्मा जी के आन्दोलन के बाद से इंगलेण्ड के व्यवसायी भारत से राजग रहते और ये पूंजीपति ही प्रकारान्तर से इंग्लेण्ड के विधाता हैं, इसलिए ये इतने उदार होंगे कि अपनी भलाई भूलकर भारत की भलाई का ख्याल करेंगे, यह बिल्कुल भ्रांत धारणा है। भारत अंग्रेजी मात्र खपाने के लिए अग्रेजों का सबसे बड़ा केन्द्र है।"[5]

साम्राज्यवाद आर्थिक शोषण की व्यवस्था है। यह सत्ता हृदय हीन है। निराला इन तत्कालीन परिस्थितियों को अपने चिन्तन का मुख्य विषय बनाया। इससे इनका क्रान्तिकारी हृदय उद्वेलित हो उठा। निराला ने साम्राज्यवाद का अर्थ, पूंजी की सार्वभौम सत्ता माना है। ये लिखते हैं - "साम्राज्यवाद इंग्लेण्ड की राजनीति का मूल है, पूंजी के द्वारा वणिक शक्ति की वृद्धि के इतिहास के साथ -साथ साम्राज्यवाद इंग्लेण्ड के साथ गुथा हुआ है। पूंजी की तरह यह हृदय हीन है। .... इतिहासकार जानते हैं कि इंग्लेण्ड की सरकार पूंजीपतियों की सरकार है और साम्राज्यवाद उनकी जीवन शक्ति का मूल आधार।"[6]

निराला ने अपने निबन्धों में ब्रिटिश सुधारों का विरोध किया। दमन व बर्बरता का दृश्य खींचकर जनता को संघर्ष के लिए प्रेरित किया। जब यतीन्द्रदास ने ब्रिटिश अन्याय के विरूद्ध अनशन करते हुए प्राण गवां दिया तब निराला उद्वेलित हो उठते और कहते हैं - "भारतवर्ष ने जितना सहना था सह लिया। वह समय निकल गया जब भारत खिलौना पाकर बहल जाता था।"[7] इस प्रकार भारत में कैसे स्वतन्त्रता आन्दोलन मोड़ लेने लगा इस पर विधिवत् विवेचना निराला की रचनाओं में देखने को मिलती है। अंग्रेज, सुधार व दमन की दोहरी नीति लागू करके आन्दोलन को कमजोर करने लगे इन्होंने हिन्दुओं, मुसलमानों तथा अछूतों में फूट डालना प्रारम्भ कर दिया। इस नीति की निराला ने आलोचना की तथा कांग्रेस को समर्थन देकर निम्न जनों को संगठित करने का उपाय बताया। साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप का जो विवेचना निराला

ने किया है, वह राजनीतिक दाव-पेच से मिलता है। निराला की इस दृष्टि पर कार्ल मार्क्स का प्रभाव है। निराला ने तत्कालीन अंग्रेजों के विचार पर व्यक्त किया है - "भारतवर्ष अंग्रेजों की साम्राज्य लालसा का सर्व प्रधान ध्येय रहा है। यहां की सभ्यता और संस्कृति अंग्रेजों की सभ्यता और संस्कृति से बहुत कम मेल खाती थी, पर सात समुद्र पार से आकर इतने विस्तृत और इतने सभ्य देश में राज्य करना जिन अंग्रेजों से अभीष्ट था, वे बिना अपनी कूटनीति का प्रयोग किये कैसे रह सकते हैं ? अंग्रेजों की नीति थी भारत के इतिहास को विकृत कर दो और हो सके तो उसकी भाषा को मिटा दो। चेष्टाएं की जाने लगी। भारतीय सभ्यता और संस्कृति तुलना में नीची दिखाई जाने लगी।"[8]

निराला इस विषय पर विशेष मनन करते हुए यह कहा कि यह लड़ाई तब तक शुरू नहीं हो सकती जब तक साम्राज्यवाद का पूरी तरह विरोध न हो जाय। इन्होंने इसे बहुत सचेत ढंग से पूरा करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार चाहे भाषा पर विचार किया जाय चाहे साहित्य पर परन्तु निराला व्यवस्थित रूप से भारत का इतिहास लिखने नहीं बैठे थे। ह्रास या प्रगति के लिए उनकी कसौटी होती है। उस समय की सामाजिक परिस्थितियों में शूद्रों के प्रति द्विजों का व्यवहार असहनीय था। इनके इस विचारात्मक संघर्ष का सम्बन्ध वर्ण-व्यवस्था की रक्षा या विनाश से है। बौद्धों का विरोध शंकर ने ज्ञान से किया तो कवियों ने सहृदयता से। बुद्ध ने जब तपस्या से अपनी ज्ञात ज्योति फैलायी" "तब शिक्षा का माध्यम रहा उस समय की प्रचलित भाषा। साधारण जनों को यह बात बहुत पसन्द आयी। कुछ काल के लिए भारत में सुख शांति का साम्राज्य हुआ।"[9]

चाहे भाषा पर विचार कीजिये, चाहे साहित्य पर - निराला की अनेक स्थापनाओं से यह धारणा पूरी तरह खण्डित हो जाती है कि भारत का सांस्कृतिक इतिहास केवल ह्रास गाथा है। इतिहास की गति पर इस तरह से विचार करने पर यूरोप व भारत के बीच तारतम्य टूटता नहीं है। निराला के तर्क देते हैं कि यूरोप के विजातीय भाव भारतीय साहित्य को विकसित करने के लिए आवश्यक है। यूरोप के लोग शराब पीते है तथा फारसी साहित्य में भी शराब का वर्णन है। यह आसुरी प्रवृत्ति का भी द्योतक है। किन्तु निराला ने अपनी कविता में विकास देने के लिए सात्विक गुण विरोधी भाव

को भी उचित ठहराया है - "नशे की नींद के बाद ही जागरण का आनन्द मिलता है औरजागरण की जरूरत के साथ नींद की भी आवश्यकता सिद्ध होती है। इसी तरह इन दिव्य भारतीयों को कुछ प्रसन्न करने के लिए आसुर शराबी भाव भी आवश्यक है।"[10]

इतिहास पर चिन्तन करते हुए ये कहते हैं यूरोप ने जो भौतिक प्रगति की है, वह अवांछनीय है। भारत को भी उसका अनुकरण करना चाहिए था ऐसा न करने से ही उसका पतन हुआ। वर्तमान हिन्दू समाज में वे कहते हैं कि विक्रमादित्य के युग में जब संस्कृत फूली-फली कही जाती है, अशिक्षा का काल शुरू हो गया। अगर ऐसा नहीं होता तो रोमन व ग्रीक की सभ्यता के साथ-साथ भारत को आधिभौतिक सभ्यता का विकास देख पड़ता। निराला भारतवासियों की आलोचना करते हुए कहते हैं 'भारत को आसुरी भाव यूनान से मिला है, क्योंकि वहां सौन्दर्य की देवी वीनस की पूजा होती है। परन्तु भारत को जो सीखना चाहिए वह नहीं सीखा। इस प्रकार इन्होंने भारतीय व रोमन सभ्यता पर जो वैषम्य दिखाया है वह नहीं है। जो लोग दूसरों की सभ्यता से कुछ ग्रहण करना राष्ट्रीय आत्म सम्मान से विरूद्ध समझते हैं, उन्हें लक्ष्य करके निराला कहते हैं - "किसी प्रकार का भौतिक सम्बन्ध, जिससे एक जाति अपर जाति से आदान-प्रदान करती है राज्य की व्यवस्था बदलती है तथा अनेक प्रकार के उत्कर्ष करती है, नहीं स्थापित किया। यह सब अज्ञान पारस्परिक विरोध तथा व्यर्थ का स्वाभिमान जान पड़ता है। दूसरे मनुष्यों को मनुष्य न समझना, यह वृत्ति बहुत पीछे मुसलमानों के शासन काल में भी भारतवर्ष के लोगों की थी।"[11] भारत पर तुर्क आक्रमणों के युग की चर्चा निराला और देशों से तुलनात्मक ढंग से करते हैं। ये और देशों के विषय में जानकारी न रखने को ही भारत के पतन का कारण बताते हैं। इस प्रसंग में वे कहते हैं - "जब शत्रु घर में घेर लेता था, तब यहां के बीर तलवार उठाते थे। रहते संसार में थे पर उससे लापरवाह होकर ही जीना चाहते थे।"[12] निराला का ऐतिहासिक विचार यह है कि मनुष्य को राष्ट्रीय संकीर्णता से दूर हटकर उस स्तर पर सोचना चाहिए जिससे अनेक सांस्कृतिक धाराएं मिलकर एक मानव संस्कृति का निर्माण करती है। इनका विचार है कि देश जल, मिट्टी, मेघ द्वारा एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। अंग्रेजी साहित्य के उत्कर्ष में वे समझाते हैं कि वहां के रचयिता विदेशी सभ्यता से परिचित थे। ये शेली की क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित थे। शेली तो भारत

को बहुत प्यार करता था। अग्रेजी राजधर्म के खिलाफ तो लिखता है -

यहां उसकी विचार स्वतन्त्रता देखी जा सकती है। यही साहित्यिक विशालता लोगों के भीतर पैठकर उन्हें तेजस्वी बनाती है। रूरा के विषय में अध्ययन करने के बाद ये कहते है कि पहले वहां का साहित्य है फिर स्वतन्त्रता। सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता से वे हिन्दी जातीयता को जोड़ते हैं।

इस प्रकार निराला का ऐतिहासिक दृष्टिकोण एक देश को दूसरे देश से जोड़ना है। इन्होंने प्रायः सभी विकसित देशों का अध्ययन किया तथा उस समय की परिस्थिति का अध्ययन करके उसका समाधान भी खोजते हुए दिखाई पड़ते है। उनका ऐतिहासिक दृष्टिकोण उनकी दार्शनिक दृष्टि तथा अचूक तर्क पद्धति का परिणाम है, जो संसार को गतिशील, विरोधी गुणों के संघर्ष को गति का कारण, विभिन्न देशों की परस्पर संबद्धता व मनुष्य की महत्ता स्वीकार करती है। इन्होंने अंग्रेजों की नीति की कटु आलोचना करके भारत को उससे निकलना सिखाते हैं।

(ख) दार्शनिक दृष्टिकोण :

निराला के सम्पूर्ण काव्य को यदि शक्ति का काव्य कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। शक्ति की वैविध्यपूर्ण अभिव्यंजना इन्होंने अपने काव्य के माध्यम से की है। निराला के बिना छायावाद अपने पूर्णत्व को न प्राप्त होता। जिस कविता में प्रेम, कोमल भावों की अभिव्यक्ति सौन्दर्य ही सब कुछ हो, उसको निराला ने सर्वशक्ति सम्पन्न बनाया। थियोडोर, वाट्स, डन्टन ने जिस शक्ति काव्य की कल्पना की थी, उसका समाहार निराला में स्वतः हुआ है। आचार्य शुक्ल ने काव्य-शक्ति को ब्रह्मानन्द शक्ति बताया है। निराला ने इस विराट की उपासना अपने काव्य में की है। उनकी एक-एक पंक्ति ओजस्वी है। व्यक्तिगत जीवन में आघात पर आघात सहन करने के कारण इनका ओज गुण और विकसित हुआ है -

धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।[13]

ओज और आत्म दान का यह समन्वय निराला की ही देन हो सकती है। शक्ति की अवधारणा व माया एक दूसरे के पूरक है। वेदान्त दर्शन की प्रमुख समस्या हैं माया।

कामायनी की आलोचना करते हुए निराला लिखते है - "वास्तव में सृष्टि का तत्त्व समझने के लिए माया की व्याख्या सबसे उत्तम है यद्यपि हजारों वर्षो से आज तक बहुत कम लोगों की समझ में यह आयी है।"[14] ये माया को ब्रह्म से अभिन्न मानते हैं तथा ब्रह्म को सूर्य व माया को उसकी किरण मानते हैं। परेशानी तब पैदा होती है जब दार्शनिक सूर्य को उसकी किरणों से अलग करके देखना चाहता है। केवल ब्रह्म को ही पाना चाहता हैं। परन्तु वे एक व्यापकता को दूसरी व्यापकता से अलग करना चाहता हैं। यह शक्ति एक ही हो सकती है चाहे ब्रह्म हो, चाहे शक्ति। इस प्रकार ब्रह्म का जो स्वरूप सच्चिदानन्द है, उसमें शक्ति की भी सत्ता विराजमान हैं। जिस प्रकार सूर्य को उनकी किरणों से अलग नहीं किया जा सकता, उसे किरणों से अलग करके ही देखना है। इस प्रकार माया की व्याख्या बहुत कम लोगों की समझ में आयी।

शक्ति के अनेक रूपों के दर्शन हमें निराला के व्यावहारिक और काव्यगत जीवन में होते हैं। उन्हें तुलसी का अवतार ही कह सकते है। तुलसी जिस प्रकार विराट की ओर झुके थे, उसी से कुछ मिलते-जुलते निराला भी हैं, जैसे जागा जागा संस्कार प्रबल।[15] इस प्रकार यह निराला के जीवन का एक अंग बन सकता है। निराला के चिन्तन में जो अर्न्तविरोध है, वह यह है कि एक ओर शक्ति को ब्रह्म से अभिन्न मानकर उसे ब्रह्म के बराबर दर्जा देते है और दूसरी ओर ब्रह्म में लीन होने की कल्पना करते हैं। ये ज्ञान और शक्ति को समकक्षी मानते है, और कहते हैं - "ज्ञान और शक्ति दोनों का परिणाम अनादि है, दोनों बराबर है। रूपको में आकर अपना-अपना अर्ग प्रकट कर ब्रह्म की तरह निर्लिप्त"[16] यह है निराला के आन्तरिक शक्ति का परिचय। उनके ऊपर विवेकानन्द का प्रभाव पड़ा है। स्वामी जी कहते थे कि - "ख्याल टप्पा बन्द करके लोगों को ध्रुपद गान सुनने का अभ्यास करना होगा। वैदिक छन्दों की गुरु गम्भीर ध्वनि संदेश में प्राण का संचार करना होगा।"[17] निराला इसी वैदिक परम्परा को पुर्नजीवित करना चाहते थे। जिस प्रकार इन्होंने अपनी ओज भरी वाणी से समूचे राष्ट्र का उद्‌बोधन किया उसी प्रकार निराला भी राष्ट्र की सोई हुई शक्ति को जागृत करना चाहते थे। इसके लिए इन्होंने मुक्त काव्य को सर्वोत्तम माध्यम समझा। इनकी दृढ़ धारणा बन गयी थी कि बन्धन मुक्त कविता ही हमारे हृदय की मौलिकता को व्यक्त करने में समर्थ है। हम साहित्य में अपनी बहुत दिनों की भूली हुई शक्ति को आमन्त्रित करना चाहते हैं। जो

अव्यक्त रूप से सबसे व्यक्त अपनी ही आंखों से विश्व को देखती हुई अपने ही भीतर से उसे ढाले हुए है। भूली हुई शक्ति से इनका तात्पर्य वैदिक काल के महर्षियों के दार्शनिक और महत्वपूर्ण उद्‌गारों से है और जो कुछ उस युग के कविताबद्ध साहित्य में अभिव्यक्त किया गया है, उसमें सर्वोपरि है। मनुष्य के शरीर के अन्दर ही इन्होंने जड़ चेतन के संघर्ष का प्रत्यक्ष दर्शन किया है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन जड़ाक्रान्त है। उच्च विचार, संयम और नियम श्रेय के लिए अनवरत जीवन में चैतन्य और सजगता के मार्ग है "राम की शक्ति पूजा की शक्ति"[18] को आध्यात्मिक शक्ति के रूप में देखना भूल तो ही है। जिस भूधर में राम पार्वती की कल्पना करते हैं वह शक्ति का विराट प्राकृतिक रूप है।

शक्ति की मौलिक कल्पना करने के साथ ही निराला ने शक्ति के साधक राम की प्रतिमा का निर्माण भी - "नवीन पुरुषोत्तम" के रूप में किया है। शक्ति व विराट के कई चित्र उन्होंने आंके है। मंगलमय परिणाम वाला विराट का एक चित्र द्रष्टव्य है -

लख महाभाव-मंगल पद तल धंस रहा गर्व,
मानव के मन का असुर मन्द हो रहा सर्व।[19]

इन्होंने नारी को भी विराट स्वरूप का परिचायक माना है। इन्होंने यो आंका है - "यह विश्व हंस है चरण सुघर जिस पर श्री[20]। इसमें इन्होंने नारी का देवी रूप प्रदर्शित किया है। इन्होंने अपने काव्य में शक्ति के दो रूपों को प्रदर्शित किया है, एक अन्तर्मुखी दूसरा बर्हिमुखी। इनमें आत्म संयम, आत्म दान की भावना और त्याग जो काव्य के माध्यम से साफ झलकता है, वही इस बात का परिचायक है। बर्हिमुखी शक्ति का परिचय उन्होंने तब किया जब चारों ओर के विरोध को छोड़ा और नये युग का सूत्रपात किया। विराट शक्ति का परिचय देने वाले विवेकानन्द की रचनाओं का इन्होंने इसलिए अनुवाद किया कि उनमें उनके मन की बात कही गयी है। महाशक्ति का उपासक मृत्यु से भय नहीं खाता। ये विराट का चित्रण करते हुए कहते हैं -

मन बुद्धि चित्त अहंकार, देव और यज्ञ,
मानव-दानव-गण,
पशु-पक्षी कृमि-कीट,
××× ××× ×××
देखा एक सम क्षेत्र में है सब विद्यमान।[21]

मनुष्य का शरीर प्रकृति है, उसका मन, गुण और चरित्र भी प्रकृति ही है। निराला इसका वर्णन अपने काव्य के माध्यम से करते हैं - "जहां मन को वश में करने की शक्ति होती है, वहा रूप की अदृश्य महाशक्ति का प्रकाश है। ऐसा समझना चाहिए।"[22] इनके लिए पगली भिखारिन महाशक्ति का प्रत्यक्ष रूप है। प्रकृति अद्वैत की सीख है। माया की व्याख्या करना जिस प्रकार मुश्किल होता है और हजारों साल से बहुत कम लोगों की समझ में आया है। यदि माया प्रवंचना है तो संसार भी तो प्रवंचना है। निराला का दार्शनिक विचार यह है कि प्रकृति अद्वैत के अनुसार मूल तत्त्व एक है - ब्रह्म। वही परिवर्तित होकर शक्ति बनता है, शक्ति ही परिवर्तित होकर संसार बनती है। डॉ० एस०एन० गणेश "शक्ति और अनुभूति का कवि निराला" नामक लेख में लिखते हैं "निराला की कविताओं पर प्रति पाद्य विषय तथा व्यंजना शैली के वैचित्र्य के रूप में पड़े हुए आवरण को हटाकर अवलोकन करें तो उन सबमें हम ऐसी आत्मा को पा सकेंगे, जो सतत् संघर्ष में ही पलकर अपरिमेय शक्ति का स्रोत बन गई।"[23] ये शक्ति का प्रमाणिक परिचय देते हुए कहते है -

मरण को जिसने वरा है

उसी ने जीवन भरा है।[24]

इस प्रकार भारतीय साहित्य में निराला की सूक्ष्म दार्शनिक दृष्टि, उनकी अचूक तर्क पद्धति का परिणाम है। निराला विराट व्यक्तित्व के धनी थे, वैराट्य की जैसी सफल योजना उन्होंने अपने काव्य में की है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। निराला का यह दृष्टिकोण अद्वैत से ज्यादा भरा-पूरा, विज्ञान सम्मत, सामाजिक और साहित्यिक प्रगति को समझने के लिए अधिक उपयोगी है। माया और ब्रह्म के चिरन्तन अर्न्तविरोध से वह मुक्त है। समाज और साहित्य के प्रति निराला के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को वह तर्क संगत ढंग से सार्थक सिद्ध करते हैं।

§ग§ सामाजिक दृष्टिकोण :

काव्य रचना के समय निराला ने राजनीति में भी सक्रिय भाग लिया। राष्ट्रीय-आन्दोलनों के प्रति वे पूर्ण सजग थे। स्व० गगा प्रसाद पाण्डेय लिखते हैं कि सन् 1925 में चर्खे को लेकर रवीन्द्र व गांधी में जो विवाद हुआ उसमें निराला ने रवीन्द्र की ही बहुत सी गलतियां बताई हैं। गांधीवाद के भी ये समर्थक थे तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों

के भीतरनिरन्तर स्फूर्ति भरते रहें - "निराला ने राजनीतिक दासता और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति सदैव विद्रोह किया है। पर किसी ने सच कहा है कि गुलाम देश का नेता भी गुलाम मनोवृत्तियों का शिकार होता है, विशेषकर भारत तो इसका अद्भुत उदाहरण है। इसलिए निराला की राजनीतिक सूझों का महत्व नेताओं ने नहीं माना।"सन् 1931 में निराला ने "अधिकार समस्या" नामक एक निबन्ध लिखकर देश की स्थिति और उसके सुधार का सुझाव सामने रखा।"[25] इस प्रकार निराला जिस राजनीति का अकसर जिक्र करते हैं, वह क्रान्तिकारी नहीं सुधारवादी है। इस सुधारवादी राजनीति को पूंजीपतियों का ही समर्थन प्राप्त है। परतन्त्र भारत में निराला ने लिखा है -

बहुत दिनों बाद खुला आसमान।
निकली है धूप खुश है जहान।[26]

युगों से पीड़ित शूद्र जातियों के प्रति भी उन्होंने पूरी सहानुभूति दिखाई। इनका विचार यह था कि सामाजिक क्रान्ति शुरू करने के लिए विभिन्न जातियों को आगे बढ़ाना होगा। निराला के लिए जाति प्रथा का विनाश और समानता के आधार पर समाज को संगठित करना एक राजनीतिक कर्त्तव्य था। उसे पूरा किए बिना राष्ट्रीयता का विकास सम्भव नहीं था। निराला विश्वास के साथ कहते हैं शूद्र शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरण फूटेगी, वही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य है, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि संतृप्त जातियां शूद्र। ..... भारत तभी तक परतन्त्र है जब तक वह जागृत अवस्था में नहीं है। ये कहते हैं कि राष्ट्र की दृढ़ नींव तभी मिटेगी जब जाति प्रथा मिटाकर नए सिरे से समाज का गठन होगा। जाति प्रथा पर निराला जी कहते हैं कि भारतीय समाज में जाति-पाँति ऊँच-नीच का भेदभाव आसमान पर से नहीं टपक पड़ा। उनका कहना है कि सामन्ती व्यवस्था जहां जितनी मजबूत रही, वहां जाति-पाँति का भेदभाव उतना ही दृढ़ रहा। जातियां चाहे जितनी हों, सामन्ती समाज में मुख्य भेद होता है द्विज और शूद्र में। खाने-पहिनने की चीजें तो जुटाते शूद है, उसका लाभउठाते हैं सवर्ण। अंग्रेज राज्य सत्ता का मुख्य आधार जाति-पाँति द्वारा ही सुदृढ़ कर रहे थे। शूद्रों के बेगार का लाभ उठाते ये जमींदार, तथा संरक्षक तो अंग्रेज थे। उनके शासन में देशी सामन्त और पूँजीपतियों के दो तरफ शोषण से भारत की निम्न जातियाँ भयानक रूप से त्रस्त हो उठीं। उनके त्रासने निराला के मर्म को छू लिया था। जहां अपनी कहानियों में उन्होंने कुल्ली भाट, चतुरी चमार और बिल्लेसुर बकरिहा के माध्यम से निम्न वर्ग का यथार्थ

है। शूद्रों की स्थिति के बारे में लिखते हैं -

> वे शेष-श्वास पशु मूक भाष,
> पाते प्रहार अब हताश्वास,
> सोचते कभी आजन्म त्रास द्विज गण के,
> होना ही उनका धर्म परम,
> वे वर्णाश्रम रे द्विज उत्तम,
> वे चरण चरण बस, वर्णाश्रम रक्षण के।[27]

इस प्रकार "सेवा प्रारम्भ" कविता के नायक स्वामी विवेकानन्द जी के गुरु भाई, स्वामी अखण्डानन्द के माध्यम से दीनोद्धार की सुन्दर सृष्टि की है। निराला सच्चे अर्थों में जन कवि थे। वे राजनीति का प्रवेश साहित्य में निषिद्ध मानते थे। निर्धनों की सेवा में इन्होंने अपना सर्वस्व लुटा दिया।

निराला सर्वसाधारण के कवि थे। लेकिन उन्हें पूर्ण जनकवि कहा जा सकता है। साहित्यकार ही जनता का सच्चा प्रतिनिधि होता है। "सरोज स्मृति" में इन्होंने जाति प्रथा की संकीर्णता का पर्दाफाश किया है।"[28] जाति के पीछे एक सुयोग्य कन्या का विवाह किसी असभ्य अशिक्षित व्यक्ति से करना सरासर अन्याय ही तो है। इन्होंने सामाजिक विरोध का डटकर सामना किया। निराला समाज में किसी प्रकार की भेद-भावना को स्थान नहीं देना चाहते हैं। उनकी कल्पना में मनुष्य का विश्व-व्यापी रूप ही समाया है। वर्ण-व्यवस्था की संकीर्णता के प्रति उन्होंने अश्रद्धा प्रकट की है - "इस प्रकार के देश व्यापी बल्कि विशद भावना द्वारा विश्व-व्यापी मनुष्य आगे चलकर आप ही अपनी जाति का सृजन करेंगे, जहां ब्राह्मण सज्जन और वैश्य सज्जन की एकता में फर्क न होगा। उस स्वतन्त्र भारत में इस वर्ण व्यवस्था से केवल परिचय ही प्राप्त होगा, ऊँच-नीच निर्णय नहीं।"[29]

निराला वर्ण व्यवस्था की उपयोगिता अथवा अनावश्यकता इतिहास के सन्दर्भ में देखते हैं। उनका विचार यह था कि किसी समय वर्ण व्यवस्था आवश्यक थी, किन्तु अब बिना इसको हटाये सामाजिक प्रगति संभव नहीं है। इस प्रकार समाज में इस भेदभाव के साथ-साथ स्त्री-पुरुष में भी छोटे-बड़े का भेद पैदा हुआ। सामाजिक कुरीतियां जैसे

शूद्रों को दास बनाये थी, वैसे स्त्रियों के पराधीनता का कारण बनी। निराला कहते हैं - "प्राचीन शीर्णता ने नवीन भारत की शक्ति को मृत्यु की तरह घेर रखा है। घर की छोटी सी सीमा में बँधी हुई स्त्रियाँ आज अपने अधिकार, अपना गौरव, देश तथा समाज के प्रति अपना कर्त्तव्य सब कुछ भूली हुई हैं।[30] निराला का मन भारतीय दुर्दशा को देखकर तड़प उठता है। "एक मजदूर युवती भी उनके अमर लेखनी से धन्य हो गयी।"[31] मांसलता को उन्होंने जीवन में कोई स्थान नहीं दिया। शारीरिक आकर्षण को वे तुच्छ समझते हैं। निराला का नारी का चित्र अत्यन्त स्वस्थ है। इन्होंने नारी को शक्ति की खान, योगिनी, पवित्रता की निधि व प्रेरणा दात्री माना है। "निराला का व्यक्तित्त्व कभी नारी आसक्ति से स्खलित नहीं हुआ। वे श्रृंगार और सौन्दर्य से श्लथ चित्रण में भी सदा निर्लेप रहे हैं तथा प्रसाद और पन्त दोनों से संयमित और सूक्ष्म। प्रसाद और पन्त के काव्य में ऐन्द्रिकता का आभास पा लेना कठिन नहीं है, पर निराला में इसका एकान्त अभाव है।"[32] इन्होंने विरह में ही जन्म लिया, अभावों में पले तथा संघर्ष से टक्कर मारते-मारते मृत्यु को वरण किया - "मुक्ति हूँ मैं, मृत्यु में आयी हुई न डरो।"[33] इन्होंने नारी के महान रूप को प्रदर्शित किया है। इनकी नारी भावना का यही प्रमुख पक्ष भी है। "चुम्बन" शेफालिका, जूही की कली, मौन रही हार में इन्होंने श्रृंगार के संयोग पक्ष पर बल दिया है। दूसरी ओर वियोग श्रृंगार भी उनकी लेखनी से अछूता न रहा। गीतिका में "प्राण धन" को स्मरण करते और "वे गये असह दुःख भर" तथा परिमल में "विफल वासना" वियोग श्रृंगार के उदाहरण हैं। लेकिन मुख्यतः निराला शक्ति के कवि है। इसलिए अपनी भावना के अनुकूल अधिकांश कविताओं में नारी को शक्ति और प्रेरणा के उत्कृष्ट आभरणों से ही अलंकृत किया है।

इनके चिन्तन का मुख्य पहलू यह है कि समाज में जितनी कुरीतियां हैं उससे सर्वाधिक हानि स्त्रियों को होती है। पर्दाप्रथा, बाल विवाह आदि कुरीतियां स्त्रियों का सबसे अनिष्टकारी पक्ष है। स्त्री शिक्षा से निराला की दिलचस्पी विशुद्ध साहित्यिक होने के कारण ही हैं। इस सम्बन्ध में निराला ने लिखा है - "स्त्रियां यदि अपढ़ रह गई, यदि उन्हीं की जबान न मजी तो बच्चा पढ़कर कुछ नहीं कर सकता, मौलिकता का मूल बच्चे की माता है।"[34]

निराला वास्तविक अर्थ में संस्कृति और जनता के कवि थे। उन्होंने भारतीय समाज के आडम्बरपूर्ण व्यवहार पर करारी चोट की है। वर्णाश्रम व्यवस्था की संकीर्णता

को ललकारा, अनपढ़ ब्राह्मणों को फटकारा और पद्दलित शूद्रों के उद्धार की अनवरत चिन्तना की। "दान" कविता एक करारा सामाजिक व्यंग्य है। "दान" जैसी उत्कृष्ट प्रवृत्ति के भ्रष्ट स्वरूप को उन्होंने दर्शाया है। यहां निराला ने धर्म के खोखले रूप, भक्ति का ढोंग, स्वार्थान्ध वृत्ति के अलावा निराला की मानवतावादी भावना भी मुखरित हुई है। पीड़ितों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति है। पीड़ितों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने में वे देर नहीं करते। "भिक्षुक" के करुणा जनक और मर्मभेदी चित्र प्रस्तुत करते है -

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनो मिलकर है एक
चल रहा लकुटिया टेक।[35]

भिखारी के साथ दो बच्चे भी है। जो बाए हाथ से पेट मलते हुए चलते हैं और दायां हाथ दया दृष्टि पाने के लिए फैलाते हैं। जूठी पत्तल भी उनके भाग्य में नहीं हैं, क्योंकि उसे झपटने के लिए कुत्ते खड़े है। इस कविता के माध्यम से जहां इन्होंने परतन्त्र भारत की दयनीय दशा को दिखाया है वहीं दूसरी ओर दलितों के निर्धनता का यथार्थ चित्रण भी किया है। इस प्रकार "तोड़ती पत्थर" और "विधवा" कविताएं इनके सामाजिक चिन्तन का ही परिणाम है। भगवान नीलकण्ठ की तरह उन्हें सामाजिक विरोध और अपमान का ही घूंट पीना पड़ा। ढोंग और पाखण्ड का उद्घाटन करते हुए निराला राम भक्त विप्रवर का एक चित्र प्रस्तुत करते हैं -

झोली से पुट निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं इधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर/
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं धन्य श्रेष्ठ मानव।[36]

इस प्रकार निराला ने अपने अधिकांश कविताओं में समाज का यथार्थ चित्रण किया है। ये प्रगतिशील विचार के परिचायक है। समाज में जो थोथा है उसे उड़ा देना चाहते हैं। "मित्र के प्रति", "दान", "भिक्षुक", "तोड़ती पत्थर", सरोज-स्मृति, वन बेला,

वे किसान की नई बहू की आंखे, सेवा आरम्भ, विधवा, कविताएं उनके सामाजिक चिन्तन को अच्छी तरह समझा सकता हैं। निराला काव्य में तत्कालीन भारत के सम्बन्ध में ठोस जानकारी प्राप्त होती है। इनके विद्रोही विचार से तत्कालीन समाज के विषय में पता चलता है। उनके काव्य मे सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश दिखाई पड़ता है।

कुकुरमुत्ता और "नये पत्ते" इसके ज्वलन्त उदाहरण है। मूर्तिपूजा, वाह्याडम्बर, छुआछूत की भावना तथा ढोंगी भक्तों, पुरोहितों व पण्डों को उन्होंने आड़े हाथो लिया है। निराला कहते हैं कि स्त्रियों के लिए दूसरा कानून है पुरूषों के लिए दूसरा। विधुर पुरूष दूसरा विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री के विधवा हो जाने पर उसे सारा जीवन यों ही विताना पड़ता है। इससे क्षुब्ध होकर निराला ने लिखा है - "सीता, सावित्री, दमयंती आदि की कथाए आंख मूदकर लिख सकता हूँ, तब बीवी के हाथ "सीता" और "सावित्री" आदि देकर बगल में "चौरासी आसन" दबाने वाले विता से नाराज न होंगे। उनकी इस भारतीय संस्कृति को बिगाड़ने की कोशिश करके ही बिगड़ा हूँ, अब जरूर संभलूँगा।"[37] निराला का मन एक भारतीय स्त्री की दुर्दशा देखकर तड़प उठता है। वे कहते है शिक्षा के अभाव में समाज के भीतर अनेक कुरीतियों प्रचलित थी जिनसे सर्वाधिक हानि स्त्रियों की होती थी। पर्दा प्रथा, बाल विवाह तो ऐसी ही कुरीतियां हैं। निराला, दयानन्द और आर्य समाज के प्रशंसक थे। क्या ये लोग स्त्री शिक्षा के विशेष पक्षधर थे वे कहते हैं - "वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसगों में पुरूषों के ही बराबर स्त्रियों को अधिकार देते हैं।"[38] इस प्रकार इनकी विधवा शीर्षक कविता स्वयं में काव्य विषय से सम्बन्धित एक नवीन प्रयोग है। जिसमें मर्मस्पर्शी व्यग्य का फैलाव बहुत ज्यादा है। इन्होंने सामाजिक विषमता और रूढ़ियों, भारतीय समाज की दुर्दशा और नारी पर अत्याचार का पर्दाफाश किया है। निराला ने विधवा के जीवन में व्याप्त दैन्य और करूणा को विराट आयाम प्रदान किया है -

दुख रूखे सूखे महवर त्रस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है स्फुट स्वर में
दुःख सुनता है आकाश धीर[39]

इनके प्रगतिशील विचारों का इससे अधिक परिचय और क्या मिल सकता है वे विधवा विवाह को को अनिवार्य और नैसर्गिक बतलाते हैं।

राष्ट्रीय और मानवतावादी दृष्टिकोण :

निराला के राष्ट्रीय चेतना का अनेक चित्र इनके काव्य में विद्यमान है। भिक्षुक, तोड़ती पत्थर, विधवा आदि कविताओं के माध्यम से भारत की दीन-हीन दशा का चित्रण इन्होंने किया हैं। दूसरी तरफ मित्र के प्रति, वन बेला, दान आदि कविताओं में देशोद्धार की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। निराला रात-दिन राष्ट्र के उत्थान की चिन्ता करने में उसे सजाने संवारने की पुरातन-रूढ़ियों को झकझोर कर नव निर्माण करने में संलग्न थे। "अपरा" की प्रथम कविता है "भारती वन्दना", भारतमाता कैसी भव्य और विराट है - "भारति जय विजय करे"[40]। "बादल राग"[41] कविता में वे भारतीय कृषक के सच्चे हितैषी के रूप में आये हैं। इसमें इन्होंने पराधीन भारत के कृषकों की हीन दशा का सफल चित्रण किया है। "दिल्ली" कविता में वे भारत के गौरवपूर्ण अतीत की याद करते हैं - "क्या यह वही देश है"[42]...। ये एक महर्षि की तरह देशवासियोंको उद्‌बोधित भी करते हैं। "छत्रपति शिवाजी का पत्र" मुर्दों में भी जान फूंकने वाली रचना है। इनके भिन्न शब्द में व्यापकता है। इसमें जातिगत तथा धर्मगत संकीर्णता नहीं है। ऐसी बात हमें इनकी कविता के अमर तत्वों में मिलती हैं -

दूर तक फैलाओ
अपना श्री अपना रंग
अपना रूप अपना राग।
व्यक्तिगत भेद ने छीन ली हमारी शक्ति।[43]

निराला में समष्टि कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। हमारे समाज में स्वार्थ व विषमता का जो विष फैला हुआ है या था, उसका चित्रण उन्होंने अपरा में सन् 1922 में ही कर दिया है। 'धोखा है अपनी छाया से', इस प्रकार वे समाज की स्वार्थ भावना का ही तो चित्रण करते हैं। इनका विचार यह है कि आपसी भेद-भावों को भुलाकर यदि सारे भारतवासी एक जुट हो जाय तो क्या नहीं हो सकता। आज के सन्दर्भ में यह बात सत्य ही ठहरती है। पहले हम अंग्रेजों की दासता में जकड़े है। भारत की मुक्ति के लिए कवि आत्म-बलिदान को खेल ही सिद्ध करता है - "दे मैं करूंवरण"[44] इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण ही तो है। इसमें इनके हृदय के सच्चे बल का परिचय मिलता है, कहीं आवेश नहीं दिखाई देता। इनका व्यक्तिगत जीवन भी ऐसा था। मृत्यु से मुकाबला या तो महान

आशावान या बहुत बड़ा कायर या निराश व्यक्ति कर सकता है। परन्तु पहले के उत्सर्ग को हम अमर बलिदान व दूसरे को आत्महत्या कहेंगे। वे इस शाश्वत जीवन में जन्म और मृत्यु को मामूली घटना ही तो समझते हैं। उनके काव्य में मातृभूमि के लिए बलिदान की प्रेरणा सहज ही मिलती है -

मुक्त करूंगा तुझे अटल
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय श्रम संचित फल।[45]

"भारतीय जय विजय करे, कनक शस्य कमल धरे"[46] भी ऐसी ही कविता है। डॉ0 नगेन्द्र एक जगह लिखते हैं - "आस्तिक कवि और आगे बढ़ा और गीता के विराट रूप के आधार पर इसने मातृभूमि को सर्वेश की मूर्ति से एक रूप कर दिया। निराला ने - "भारति जय विजय करे" में भी माता का यही देवी-रूप अंकित किया है। इस चित्र में मन्दिर का वातावरण और मुखर हो गया है।"[47] डॉ0 नगेन्द्र ने अपने इसी लेख में देश भक्ति के "उत्साह और राग"[48] में मुख्यतया इन दो तत्त्वों की अवधारणा की है। निराला को सभी काव्य करीब - करीब इससे प्रभावित है। देश के प्रति इनका राग पग-पग पर दिखाई देता है। राष्ट्र कल्याणार्थ इनका उत्साह कविता से निबन्धों तक दिखायी देता है। इन्होंने भारत माता के विराट व भव्य रूप का दर्शन कराया है। इनकी देश-प्रेम पर लिखी हुई कविताओं में भाषण ज्यादा व मार्मिकता कम होती है। निराला के चिन्तन में "भारत और भारती" एक दूसरे से अलग नहीं है। इसीलिए उनमें द्रष्टा का आलोक और भक्त की विह्वलता है। इन्होंने भारतीय संस्कृति की सहज सरस अभिव्यंजना की है तथा भारत-माता के विराट व भव्य रूप के दर्शन कराये है। "कहां देश है"[49] 'खण्डहर के प्रति' और 'सहस्त्राब्धि' कविताएं निराला की राष्ट्रीय चेतना के अन्य प्रमाण है। खण्डहर निराला की कविता में स्थान पा जाने के बाद खण्डहर नहीं रह जाता। वह भारतीय संस्कृति का मूर्तिवत इतिहास और अमूल्य स्मारक बन जाता है। प्रो0 नरेन्द्र भानावत अपने लेख - "निराला की राष्ट्रीयता के अन्तर्गत उनकी राष्ट्रीयता के निम्न रूपों का वर्णन करते हैं -

1 देश की तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ।
2 नारी की महानता और पवित्रता का चित्रण।
3. अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव गान।
4 भविष्य के सुखी, स्वाधीन समाज का मधुर चित्र।

राष्ट्रीय चेतना का सबसे स्वस्थ रूप निराला काव्य में ही दिखायी देता है। उनके राष्ट्रीय विचार की यह विशेषता है कि उसके माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति का भी चिंतन किया है। जागो फिर एक बार कविता छायावाद की अमूल्य निधि है। जो बात हमारे दार्शनिक घुमा-फिरा कर कहते है, वहीं निराला जन-भाषा में ही व्यक्त करते हैं। चिंतन के क्षणों में उनकी राष्ट्रीयता विश्व मानवता बाद में परिणित हो जाती है। वे मानवता के सच्चे पुजारी थे। मानव कृत भेदों में विश्वास नहीं करते थे। जहां वे विधवा कविता में विशुद्ध राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है, वहीं "भिक्षुक" में सारे संसार के दलित वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति दिखायी देती है। उनका विचार है -

मानव-मानव से नहीं भिन्न

निश्चय, हो श्वेत कृष्ण अथवा (स्मृति के आधार पर)

वे मनुष्य मात्र का कल्याण चाहते थे। उनका विचार था कि मानव निर्मित भेदों से मानवता को विकसित करने का कोई स्थान नहीं है। वे प्रबन्ध प्रतिमा में कहते हैं - "समाज का सामाजिक बाह्य निष्कर्ष इस समय राजनीतिक संगठन हैं। जहा मनुष्य-मनुष्य के ही वेश में उदारता, समग्र और मनुष्यता के साथ पूर्ण रूपेण मिल जाता है। इस प्रकार के देश व्यापी बल्कि विशद द्वारा विश्व-व्यापी मनुष्य आगे चलकर आप ही अपनी जाति का सृजन करेंगे, जहा ब्राह्मण सज्जन और वैश्य सज्जन की एकता में फर्क न होगा। ब्राह्मण और वैश्य केवल कर्म के ही निर्णायक होंगे, पद उच्चता के नहीं। उस स्वतन्त्र भारत में इस वर्ण व्यवस्था से केवल परिचय ही प्राप्त होगा, उच्च नीच का निर्णय नहीं।"[51] सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं निराला का मानवतावादी विचार विरोधी विचारधाराओं पर आधारित है। इनकी राष्ट्रीय चेतना और मानवतावादी भावना एक ही धरातल पर आधारित है। निराला ने राष्ट्रीय चेतना के कई चित्रों में मानवतावादी भावना का परिचय दिया है। यदि बारीकी से निराला के काव्य का अध्ययन किया जाय तो राष्ट्रीय चेतना, मानवतावादी व जनवादी भावनाओं की त्रिधारा अविरल वेग से प्रवाहमान होती दिखायी देगी। इनका मानवतावाद अद्भुत सत्य है। इन्होंने इसका सफल प्रयोग अपने जीवन में किया है।

अतः हम इन्हें क्रांतिकारी या विद्रोही भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि उनके काव्य का मूल स्वर निर्माण का है विध्वंस या विद्रोह का नहीं।

आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण :

भारतीय अध्यात्म के दो रूप हैं - एक शक्तियुक्त व ओज पूर्ण, दूसरा शान्तिपूर्ण। लेकिन शक्ति की विद्यमानता दोनों रूपों में है। शक्ति तत्त्व को हम विराट रूप में भी जानते हैं। निराला पूरे जीवन भर शक्ति और विराट के ही उपासक रहे। निराला ने भारतीय अध्यात्म और सस्कृति को काव्यबद्ध किया है। शक्ति के उपासक होने के नाते निराला कर्म को प्रधानता देते है। निराला ने प्राचीन अध्यात्म को नूतन परिवेश में प्रविष्ट कराया है। अध्यात्म और युगधर्म का सामजस्य निराला की अद्भुत देन है। आध्यात्मिकता को निराला ने अपने काव्य में विविध रूपों से प्रदर्शित किया है। आत्मा की व्यापक शक्ति का चमत्कार इन्होंने दिखाया है। उसके द्वारा जीवन का उन्नयन, उद्बोधन तथा जागृति की भावना परिलक्षित हुई है। अन्धकार युक्त माया को आलोक पूर्ण दिखाना निराला का ही कार्य है -

हुई ज्योत्सनामयी अखिल मायापुरी,
लीन स्वर-सलिल में मैं बन रही मीन।[52]

ये आसक्ति में अनासक्ति को मानकर चलते थे। अपने निजी जीवन में वे बन्धनों को महत्त्व नहीं देते थे। बन्धन मुक्त आत्मा की शक्ति को इन्होंने अपने जीवन में व्यावहारिक रूप दिया है। मृत्यु के ज्ञान से प्रणय क्षितिज का खुलना निराला का आध्यात्मिक चमत्कार है -

छिन्नकर जुड़े जुए सब पाश,
प्रणय का खोल दिया आकाश,
मृत्यु में पैठ भंग भू-लास,
रंग दिखलाती हो सस्वर।[53]

निराला के काव्य में आध्यात्मिकता कई रूपों में दिखाई पड़ती है। प्रबुद्ध आत्मा के दर्शन इन्होंने कई रूपों में कराया हैं। वे दृगों को ज्ञान का द्वारा मानते हैं।[54] इन्होंने लौकिक व अलौकिक का समन्वय अपने काव्य में व्याख्यात किया है। सार-असार, तिमिर-प्रकाश, ज्ञान भ्रम, नश्वर-अनवश्वर का भी सुन्दर चित्रण किया है -

व्यर्थ हुआ जीवन यह भार
देखा संसार वस्तु
वस्तुतः असार
भ्रम में जो दिया, ज्ञान में लो तुम गिन-गिन।[55]

इन्होंने माया को अनेक रूपों में देखा है। इनकी ऐसी रचनाओं में न तो आकर्षण रहता है न विकर्षण। वे कहते हैं कि माया को जीवन में तटस्थ बनाना चाहिए। इन्होंने अपने अध्यात्म में नैराश्य को बहुत कम स्थान दिया है। निराला स्वय विकट स्थिति का सामना करने वाले थे। इनका अध्यात्म लोकोपयोगी भी है। यही कारण है कि इनकी सास्कृतिक चेतना बहुत बलवती है। इन्होंने जीवन के उच्च मूल्यों को प्रमुख स्वर दिया है। इन्होंने ऋषियों-महर्षियों के तेज, उनकी ओजस्वी वाणी तथा निष्कलुष जीवन को सर्वसाधारण में अवतरित करने का प्रयास किया है।

कवि ने सास्कृतिक चेतना का भी कई चित्र दिखाया है। राष्ट्र के वैराट्य की कल्पना, राष्ट्र जागरण, जीवन का उद्बोधन, ज्ञान प्रकाश का प्रसार नारी उत्थान की भावना, मां भारती के दिव्य व भव्य रूप की साकार कल्पना इनके काव्य में विद्यमान है। मागलिक भावों की उद्घोषणा इनके काव्य में परिलक्षित होती है।

देष-दम्भ-दुख पर जय पाकर,
खिले सकल नव अंग मनोहर|
चितवन संस्कृति की सरिता तर,
खड़ी स्नेह के सिन्धु किनारे।[56]

समाजवादी भावनाएं इनके काव्य में प्रबल रूप में दिखायी पड़ती है। समाज के वर्ग वैषम्य के प्रति आक्रोश को उन्होंने अनेक स्थलों पर व्यक्त किया है। कवि पन्त कहते हैं कि इनका समाजवादी सिद्धात अपने वसूलों पर नही आधारित है। वह तो आध्यात्मिक शक्ति से युक्त है। उनका विचार है - "निराला ने समस्त देह, प्राण, मन तथा जागतिक द्वन्द्वों से ऊपर की आत्म ज्योति का निराकार स्पर्श दिया है।"[57] निराला के काव्य में एक विचार स्पष्ट झलकता है कि ये वह समाज बनाना चाहते है जहा हर प्रकार की सकीर्णता नष्ट हो जाय।

निराला संस्कृति के कवि के रूप में सबसे ज्यादा सफल हुए हैं। उनके काव्य में अर्न्तनिहित ओज, शक्ति, अध्यात्म, राष्ट्रीयता, मंगलाशा आदि मूलाधार है, उनकी प्रबल सास्कृतिक चेतना। उन्होंने शूद्रों को भी गले लगाया है। उनका विचार था कि जब तक हम पददलितों को उठाकर अपने मे न मिला ले तब तक हमारा सास्कृतिक विकास अपूर्ण रहेगा। यदि किसी भी राष्ट्र का वर्ग विशेष पद दलित है तो यह उस देश की सस्कृति में बहुत बड़ा कलंक है। भारत के सांस्कृतिक स्वरूप का चित्रण कवि मंगल कामना के रूप में करता है -

दूर हो तम भेद यह वो वेद बनकर वर्ण संकर
पार प्राणों के करे उठ गगन को भी अवनि के स्वर।[58]

सास्कृतिक कवि के रूप में निराला भावुक नहीं थे। निराला का सांस्कृतिक कवि सामयिकता की कसौटी में भी खरा उतरता है। उनका काव्य विश्व-कल्याण की सतत् प्रवाहिनी धारा बहाता है। उन्हें महान समन्वयकारी कहा जा सकता है। नूतन और पुरातन महान तत्त्वों का समन्वय उन्होंने अपने काव्य में किया है। वे ऐसी संस्कृति का निर्माण करना चाहते थे जिससे देश में शक्ति और समानता का चरम विकास हो। परन्तु काव्य रचना के समय उन्हें अभावों ने धर दबाया और उनका क्रान्तिकारी स्वर मुखरित होने लगा। यही क्रॉतिकारी प्रवृत्ति उन्हें महान शक्ति या आध्यात्मिक शक्ति का संचयन करने की दिशा में ले गयी।

निराला अपने जीवन में सदा विरोध ही पाया हैं। जिससे उनके आन्तरिक संसार में शक्ति पक्ष का ही सबसे अधिक परिचय प्राप्त हुआ।

समकालीन लेखन पर विचार :

खड़ी बोली काव्य धारा का कवि होने के कारण निराला ने स्वाभाविक रूप से पूर्ववर्ती एवं समकालीन कवियों पर लेखनी चलायी है। अपने समकालीन कवि पन्त तथा हिन्दी के विशिष्ट आलोचक रामचन्द्र शुक्ल पर उनके विचार गहन अध्ययन के योग्य है। वे शुक्ल जी को तो बहुदर्शी व भाषा ज्ञानी तो मानते हैं परनतु कवित्त्व की दृष्टि से विशिष्ट दर्जा नहीं देते। क्योंकि उनके अनुसार - "शुक्ल जी अलंकार निर्वाह में असमर्थ हैं, और शब्दों को तोलकर उचित ढग से नहीं रख पाते। उनकी प्रतिभा के पानी तक कविता की आंच पहुँची ही नही ये कवित्त छन्द के प्रयोग में चूक जाते हैं।"[59]

पन्त का "पल्लव" तो ऐतिहासिक महत्त्व से परे है। पल्लव एक प्रस्थान बिन्दु है। पल्लव की भूमिका में पंत की सूक्ष्म चेतना का प्रमाण मिलता है। इसमें काव्य में खड़ी बोली व ब्रजभाषा के प्रयोग से लेकर सामाजिक समस्याओं आवरण में खड़ी बोली की शक्ति व ब्रजभाषा की असमर्थता का बयान मौलिक ढंग से हुआ है। परन्तु पल्लव पर प्रहार करते समय उद्धरणों की झड़ी लगाते हुए कहते हैं - "पंत स्थान-स्थान से एक-एक पंक्ति लेकर और तुक मिलाकर इस तरह सफाई से छन्द रच लेते हैं कि मूल को पकड़ना

आसान नहीं रह जाता। ऐसा करके पन्त मूल कविताओं के सौन्दर्य को बढ़ाते नहीं बल्कि कम कर देते हैं।[60] पन्त जी प्रायः कविता से "है" को निकाल देने का तर्क देते हैं।"[61] "है" के प्रति जैसी उदासीनता "पल्लव" के प्रवेश में पन्त जी ने प्रकट की है जान पड़ता है, उसे निकालने के लिए पल्लव के छपने के समय उन्होंने उस जगह निज बैठा दिया है।[62] लेकिन निराला इसे अनिवार्य मानते हैं। पंत स्वच्छन्द छन्द के लिए दीर्घ मात्रिक संगीत को जरूरी मानते हैं। इसे निराला अनावश्यक मानते हैं। उनका कहना है कि "स्वच्छन्द छन्द संगीत की कला से विहीन होता है। उसमें पठन की कला होती है। स्वच्छन्द छन्द स्वर प्रधान न होकर व्यंजन प्रधान होता है। स्वच्छन्द छन्द की सुन्दरता गायन में नहीं हैं। उसकी प्रवृत्ति वार्तालापी है। उसमें स्त्री सुकुमारता नहीं होती पौरुष होता है और उसका जन्म कवित्त छन्द से हिन्दी में हुआ है।"[63]

निराला प्रायः अनूदित भावनाओं के पक्ष में नहीं है। वे पाश्चात्य विद्वानों व रवीन्द्र नाथ को हिन्दी के लिए गौरव की वस्तु नहीं मानते। वे आन्तरिक विकास को महत्त्वपूर्ण मानते हैं और उसी में विश्व विकास की स्थिति देखते हैं। वे नहीं चाहते हैं कि - "देश के ठाकुरों को छोड़कर विदेश के कुक्कुरों की पूँछ पकड़ी जाय।"[64]

दूसरों के प्रभाव को निराला बुरा नहीं मानते, बल्कि अनिवार्य मानते हैं। लेकिन प्रभाव को उस सीमा तक आत्मसात् कर लिया जाय कि वह मौलिक होने के लिए प्रेरणा बन सके। इस तरह निराला समाज के एक मौलिक चिन्तक के रूप में सामने आये हैं और प्रायः हर पहलुओं पर विचार करते हैं तथा समाज को एक दिशा प्रदान करने की कोशिश की है।

निराला का काव्य और उनका शिल्प-विधान

कविता में अभिव्यंजना-शिल्प की स्थिति सश्लेष की स्थिति है। सच्ची कविता अपने सम्पूर्ण रूप मे रचनाकार की मानसिकता की प्रतिबिम्ब होती है। इसीलिए आधुनिक काल में भारतीय मानसिकता में जिस क्रम से परिवर्तन होता था उसी परिमाण में कविता की विषय वस्तु और अभिव्यंजना शिल्प में भी परिवर्तन होना शुरू हो गया। निराला की आशा का आधार तथा उनके समस्त कर्मों का लक्ष्य भारत है। निराला की कविता एक ओर प्रचारात्मक है और उसका यह रूप निखरता हुआ कलात्मक बनता जाता है। इनकी कला में अन्तर्मुखता, सूक्ष्मता, रहस्योन्मुखता आदि इनके व्यक्तित्त्व का ही परिणाम है। पत जी इनके कलात्मक विवेचन के विषय में लिखते हैं - "निराला का विकास प्रसाद की तरह मन्द गजगामी गति से नही हुआ। उन्होंने कविता-कानन में अपने समस्त प्रवेग के साथ सिंह की तरह प्रवेश किया और उनकी पहली रचना जूही की कली ने नयी अभिव्यंजना तथा शिल्प कौशल के कारण आलोचकों की दृष्टि में हिन्दी जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया।"[65]

अभिव्यजना-शिल्प काव्यानुभव की बाह्य अभिव्यक्ति को सूक्ष्म और स्थूल दोनों तरह से प्रकट करता हैं। काव्यानुभव की बाह्य अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है भाषा और भाषा के ही विविध उपयोग, बिम्ब, प्रतीक, अलकार और छन्द का रूप धारण करते हैं। इनके रूप में काव्य भाषा की विविध क्षमताएं परिभाषित होती हैं। अभिव्यक्ति के ये विभिन्न तत्त्व काव्यानुभव के अनुकूल विभिन्न काव्य रूपों में प्राप्त करते हैं। अतः कविता के अभिव्यंजना शिल्प के प्रमुख तत्त्व है - काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अलकार, छन्द और काव्य रूप। निराला के अभिव्यंजना शिल्प के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि कवि की मानसिकता में होने वाला परिवर्तन न केवल कविता की विषय वस्तु में परिवर्तन करता है, अपितु कविता के अभिव्यंजना शिल्प में भी परिवर्तन करता है। अब हम निराला के अभिव्यंजना-शिल्प पर अध्ययन करेंगे।

काव्य भाषा (खड़ी बोली) :

"कविता का अन्तिम विश्लेषण उसमें प्रयुक्त भाषा का विश्लेषण है।"[66] कविता एक सशलिष्ट और जटिल रचना है। इनकी काव्य-भाषा के रूप का अध्ययन

करने में हमारा दृष्टिकोण क्या है। काव्य भाषा का लक्ष्य तथ्यात्मक सूचना देना, दार्शनिक या वैज्ञानिक प्रक्रियाओं निष्कर्षों एवं विचारणाओं को कहना या दैनिक जीवन के क्रिया कलाप को चलाना नही होता, बल्कि कवि की सौन्दर्य तात्त्विक अनुभूतियों को इस प्रकार अभिव्यक्त करना होता है कि श्रोता या पाठक में भी वह अभिव्यक्ति सौन्दर्य तात्त्विक अनुभूति को जागृत कर सके। हिन्दी कविता के इतिहास में समय-समय पर राजस्थानी, मैथिली, अवधी, ब्रजभाषा आदि बोलियां काव्य-भाषा का आधार बनती रहीं हैं। निराला भाषा के विषय में विश्लेषण करते हुए अपने काव्य भाषा निबन्ध में लिखते हैं - "वह (साहित्य) किसी उद्देश्य की पुष्टि के लिए नही आता, वह स्वयं सृष्टि है। इसीलिए उसका फैलाव इतना है, जो किसी सीमा में नही आता। ऐसे ही साहित्य से राष्ट्र का यथार्थ कल्याण हुआ है।"[67] निराला अपने काव्य में शब्दों का नवीन तरीके से प्रयोग करते हैं। निराला का वाक्य विन्यास गद्य से बहुत दूर चला गया है। दो वाक्य खण्डों के बीच में जब कुछ छूटने लगा तथा लय विधान भी भाव के अनुसार कुछ टूटने-जुड़ने लगा। इसी नवीन-विन्यास के कारण इनकी काव्य भाषा कुछ इस तरह है -

वह भाषा छिपती छवि सुन्दर
कुछ खिलती आभा में रंगकर
वह भाव कुरल-कुहरे सा भर कर भाया।[68]

"छायावादी काव्य-भाषा में कोन मधु हो जाता है, भाषा मूकता की आड़ में हो जाती है और मन सरलता की बाढ़ में जल-बिन्दु सा बह पाता है।[69] फिर आगे वे लिखते हैं - "मेरी छोटी रचनाएं और गीत (Lyrics) प्रायः ऐसे ही हैं। इनकी कला इनके सम्पूर्ण रूप में है, खंड में नही। सूक्तियां उपदेश मैंने बहुत कम लिखे है, प्रायः नहीं, केवल चित्रण किया है।"[7]

यह भाषा के प्रति नये तरह की सजगता, नये प्रकार का प्रयोग था। इस नयें विन्यास के कारण ही इनकी काव्य भाषा में उनकी प्रधान तत्सम शब्दावली में तद्भव, देशज, उर्दू आदि के शब्द इस प्रकार विन्यस्त होते हैं कि वे इनकी भाषा की दुर्बलता, अस्थिरता, भोड़ापन न होकर उनकी शक्ति एवं सौन्दर्य बन जाता है। इनकी कविता में कितना सार्थक प्रयोग हैं -

नयनों में हेर प्रिये,

मुझे तुमने ये वचन दिये।[71]

हेर उर-पट, फेर मुख के बाल

लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,

गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल

वासना की मुक्ति-मुक्ता

त्याग में तागी।[72]

उपरोक्त उदाहरणों में हेर, गेह आदि तद्भव शब्द है। ब्रजभाषा में बहुप्रयुक्त ध्वनि की दृष्टि से वे अन्य शब्दों के साथ इतना घुल गये है कि एकाएक हमारा ध्यान उस तरफ नहीं जाता। "हेर" शब्द रति भावना की विभिन्न छाया-चित्र व्यंजित करता है। "निराला ने देशज शब्दों के संसर्ग-बोध का बराबर ध्यान रखा है।"[73] उर्दू के भी शब्द इन्होंने तत्सम शब्दों के साथ जुड़ा है -

उत्ताल-तरंगा घात-पलय-घन-गर्जन-जलधि प्रवल में।

क्षिति में जल में - नभ में - अनिल-अनल में-

सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप, चुप, चुप

है गूँज रहा सब कहीं"[74]

चित्रमयता के लिए अप्रस्तुत-विधान आदि का भी उपयोग इन्होंने अपनी काव्य भाषा में किया है। निराला की भाषा चित्रात्मकता शब्द के लाक्षणिक उपयोग पर आधारित है। लक्षणा और व्यंजना के सभी उदाहरण इनकी कविता में सरलता से मिल जायेंगे। चमत्कार के प्रति निराला में भी आकर्षण था, किन्तु उनके पास अनुभूति की पूंजी इतनी अधिक थी कि उनका चमत्कार भी अन्ततः सार्थक सिद्ध हुआ। अनुभूति के तीव्र आवेग में जो शब्द स्वतः खिचें चले आते हैं उन्हें निराला ज्यों का त्यों अपना लेते हैं। इसी कारण उनकी कविता में यदा-कदा अप्रचलित और अकाव्यात्मक शब्द भी मिल जाते हैं। उनकी कविता में लक्षणाओं की एक पूरी श्रृंखला होती है। जो किसी दूसरे कार्य व्यापार को व्यंजित करती है। "जूही की कली" में जूही की कली और पवन के प्रणय-व्यापार को सारोप और साध्यवसाना लक्षणा की श्रृंखला के माध्यम से तरुण-तरुणी के संयोग का ठोस चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस विषय में निराला लिखते हैं - "लक्षणा छायावादी काव्य भाषा का प्राण तत्त्व है किन्तु व्यंजना के विविध रूपों के भी प्रचुर उदाहरण छायावादी कविता में सरलता से मिल जायेंगे।[75]

निराला छायावादी काव्य भाषा से विदा लेकर जन भाषा के निकट आये हैं। निराला की "कुकुरमुत्ता", "नये पत्ते" और "बेला" की कविताओं की भाषा में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। इसकी मूल दिशा है तत्समता की क्रमशः क्षीणता तथा तद्भवता एवं बोलचाल की शब्दावली की प्रधानता। निराला की इन कविताओं का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकलेगा कि इसमें छायावादी शब्दावली का निषेध है। "संस्कृत की तत्सम शब्दावली, उसके माधुर्य, ओज और सौन्दर्य की जगह ठेठ बीहड़ और पुराने मानदण्ड के अनुसार देशज, वर्जित और अकाव्यात्मक शब्दों में पूरी कविता लिखी गयी है।[76] "नये पत्ते" की निराला की "कैलाश में शरत" में तत्सम प्रधान पंक्तिया विद्यमान है।[77] निराला की बेला, नये पत्ते और कुकुरमुत्ता की रचनाओं में अंग्रेजी, देशज और उर्दू शब्दावली की भरमार है। इन्होंने उसे जनता की बोली के एकदम निकट रखा है। यह "कुकुरमुत्ता" की निम्नलिखित शब्द सूची से स्पष्ट होता है[78] वही, चमन, खुशनुमा, बुलबुल, टहनियां, राहें, सरो आरामगाह, बड़प्पन, मौसम, रोबोदाब, बुत्ता, खुशबू, खाद, केपीटलिस्ट, गुलाम, जाड़ा घाम, औरत, जानिब, तबेले, टट्टू, हस्ती, पोच, हरामी, खानदानी · · टेरीयर, डिक्टेटर, पोयेट, चपाती, कलिया, कबाब, चूल्हा, अर्ज, मजूर आदि।[79]

निराला की भाषा व्यंग्यात्मक भी है। नये पत्ते व कुकुरमुत्ता इसके श्रेष्ठ उदाहरण है। निराला के मास्को डायेलाग्स को पढ़कर यह समझ में आ जाता है कि सीधे सादे लगने वाले वर्णन एक शब्द या वाक्य के प्रयोग से किस प्रकार अर्थ दीप्त हो उठते हैं -

> मेरे नये मित्र है श्रीयुत गिडवानी जी
>
> बहुत बड़े सोश्यलिस्ट,
>
> मास्को डायेलाग्स लेकर आये हैं मिलने।[80]
>
> मुस्करा कर कहा, यह मास्को डायेलाग्स है।

निराला इस विषय में स्वयं मुखर होते है - "मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में "आकाशों" मुश्किल शब्द की विशेष व्यंजना का पता हमें तब चलता है जब कविता के अन्त में गिडवानी जी द्वारा लिखित उपन्यास की भाषा का नमूना देखते हैं - "पृष्ठ अस्नेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।[81]

सस्कृत के संयुक्ताक्षरों का प्रयोग निराला के काव्य में सीमित मात्रा में दिखायी देता है। परन्तु बगला से हिन्दी का ध्वनि तन्त्र मिलता जुलता है। बगला व हिन्दी में जो शब्द सामान्य है उनमें व-ब का भेद ही मौलिक है। जूही की कली में विजन, वन, वल्लरी, स्वप्न वासन्ती, विरह, विधुर, पवन आदि शब्दों में "व" का खुला हुआ उच्चारण है। बगता का महत्त्व दर्शाते हुए वे लिखते है - "खड़ी बोली की प्रतिष्ठा के बाद जो काव्य मैदान में पैर रखता है और आगे बढता है, उसके साथ दरबारीपन का कोई सम्बन्ध नहीं, आज बंगला को छोड़ शायद ही कोई दूसरी भाषा खड़ी बोली के उस काव्य से हाथ मिला सके।"[82]

राम विलास शर्मा जी इनके भाषा का विश्लेषण करते हुए कहते हैं - "निराला अपनी कविता के लिए नयी भाषा गढ़ते है, इसके लिए वे संस्कृत शब्द शक्ति का सहारा लेते हैं, किन्तु न तो उस पर पूरी तरह निर्भर रहते हैं नही उसका उपयोग करने में सस्कृत कवियों की अभिरूचि का अनुसरण करते हैं।[83] निराला किसी शब्द को काव्य के लिए त्याज्य नहीं मानते। वे परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले शब्दों को विवेक पूर्वक अपनी कविता में रखते चले जाते है।

निराला अपनी ध्वनियों के साथ यान्त्रिक ढंग से कोमल या कठोर भाव नहीं जोड़ते। अनेक शब्द रूपों मे उन्हें सजाकर पूरे ध्वनि सन्दर्भ के अनुसार उनसे भाव व्यंजना में सहायता लेते हैं। ये अपनी कविता के लिए नयी भाषा गढ़ते हैं। इसके लिए वे संस्कृत शब्द शक्ति का सहारा लेते हैं, किन्तु उस पर पूरी तरह निर्भर नही रहते हैं। निराला की भाषा व्यंजना प्रधान है, परन्तु इसका मतलब नहीं कि वे स्वर पर ध्यान ही नहीं रखते। इसलिए ये अपनी भाषा व कविता के विषय में गीतिका में कहते हैं - "जो सगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तद्नुकूल भाषा और प्रकाश से व्यक्त होता है, उसके साफल्य की मैंने कोशिश की है। ताल प्राय सभी प्रचलित है। प्राचीन ढंग पर रहने पर भी वे नवीन कण्ठ से नया राग पैदा करेंगी।"[84]

निराला का बिम्ब-विधान :

कविता के सन्दर्भ में बिम्ब से क्या तात्पर्य है। इस प्रश्न का तो दो टूक उत्तर नही दिया जा सकता है। आधुनिक काल में जबसे बिम्ब की चर्चा प्रारम्भ हुई, इस शब्द का

अर्थ विकसित होता रहा है। यह अवधारणा फैलते-फैलते यहा तक पहुँच गयी है कि - "बिम्ब एक दृश्यचित्र, संवेदना की एक अनुकृति, एक विचार एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भाव स्थिति कुछ भी हो सकता है।"[85] चित्र निर्माण की प्रक्रिया में कल्पना का हाथ रहता है तथा काव्य बिम्बाजिन चित्रों को निर्मित एवं संप्रेषित करता है उसका मन ही तो प्रत्यक्ष रहता है। डॉ0 नगेन्द्र ने लिखा है "काव्य-बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है। जिसके मूल भाव में प्रेरणा रहती है।"[86] अतः बिम्ब एक जटिल तत्त्व है। बिम्ब-विधान की दृष्टि से छायावादी कविता की समृद्धि अभूतपूर्व है। स्वच्छन्दतावादी दृष्टि एव कल्पना को अत्यधिक महत्त्व देने की प्रवृत्ति के कारण छायावादी कविता में यथार्थवादी वस्तु बिम्बों की संख्या कम है। इस दृष्टि से तो निराला की कविता अपवाद पैदा करती है। विजय-वन-वल्लरी पर सुहाग भरी स्नेह-स्वप्न-मग्न जूही की कली, उपवन-सर, सरिता, गहन-गिरि-कानन को पार करता मलयानिल आदि के द्वारा इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य की सीमा को विस्तृत कर दिया है। निराला ने बिम्ब निर्माण की परम्परागत प्रक्रिया कम और नयी प्रक्रिया अधिक अपनायी है। निराला के बिम्ब कथा प्रधान हैं जो लम्बी कविताओं में दिखलायी पड़ते हैं। बिम्बों के अनेक प्रकार ऐसे हैं, जो इन्होंने पहली बार प्रयुक्त किया है। "राम शक्ति पूजा" के निर्माण में आदिम बिम्ब का ही हाथ है। साथ ही इन्होंने पौराणिक बिम्ब की भी रचना की है। निजन्धरी बिम्ब का भी उदाहरण हमें राम की शक्ति पूजा में मिलता है। देवी दह से एक सौ आठ कमल लाने, एक सौ आठवें इन्दीवर के चुरा लिए जाने आदि का प्रसंग निजन्धरी अभिप्राय है। यह घटना इसकी चरम बिन्दु है -

राम ने बढ़ाया कर लेने को नील कमल
कुछ लगा न हाथ हुआ सहसा स्थिर मन चंचल।[87]

यह जीवन की जटिलता का द्योतक है, परन्तु ऐसा प्रयोग इनकी कविता में कम दिखाई पड़ता है। इनकी कविता छोटे-छोटे सुकुमार बिम्बों की कविता है। परन्तु उसमें विराट व उदात्त बिम्ब भी समाहित हैं। "राम की शक्ति पूजा" में युद्ध से लौटते राम में लक्षित उपलक्षित बिम्ब अम्बुधि और भूधर, विशाल, हनुमान के क्षोभ से सम्बन्ध बिम्ब राम के द्वारा, देवी के सिंह के रूप में अपनी कल्पना का बिम्ब आदि विराट बिम्ब के ही उदाहरण है। विराट बिम्ब के साथ-साथ इनकी कविता में यौन बिम्ब भी सुलभ हैं। इनका यौन

बिम्ब मासल ज्यादा है -

"प्रेम-चयन के उठा नयन नव
विधु चितवन, मन में मधु कलरव
मौन पान करती उन धरासव
कण्ठ लगी उरगी।[88]

यह अभिव्यक्तिगत संयम के कारण अश्लील नही हो पाया है। यौन-बिम्बों के परिणामस्वरूप कविता में तिर्यक या अत्यन्त क्षीण वस्तुगत आधार पर निर्मित रहस्यात्मक व काल्पनिक बिम्बों ने जन्म लिया, परन्तु इनके काव्य में यह अपवाद स्वरूप ही दिखाई देता है। "राम की शक्ति पूजा" में विषाद मग्न राम के द्वारा कुमारी सीता के साथ अशोक वाटिका में हुए प्रथम साक्षात्कार का स्मृति बिम्ब दिवा स्वप्न बिम्ब का श्रेष्ठ उदाहरण है।[89]

बिम्ब के लिए ऐन्द्रिय बोध अनिवार्य है तो निराला के काव्य में ये जटिल, संश्लिष्ट या मिश्रित बिम्ब है। इनके काव्य में जितने फूल हैं, उतने पक्षी नहीं। इनके गीत चाहे पहले के हो चाहे बाद के, ये जितना फूलों के गन्ध पर रीझते हैं उतना पक्षियों के स्वर पर नहीं। इसलिए छायावादी कवियों में निराला की घ्राणेन्द्रिय सबसे तेज है। निराला का काव्य जगत, शेली कीट्स व रवीन्द्रनाथ के काव्य जगत से भिन्न हैं। निराला की चेतना इन्द्रिय बोध के अनेक स्तरों पर सक्रिय है। अनेक तरह के विचार एक ही सम्पूर्ण अनुभव में समेट लेती है, उनमें तीव्रता पैदा करके उनके अलगाव की सीमाएं दूर कर देती है -

सुख के भय काँपती प्रणय-क्लम
वन श्री चारु तारा।[90]

निराला का बिम्ब विधान चित्रकला की अपेक्षा स्थापत्य कला के अधिक निकट है। उनकी आंख रंगों के प्रति उतनी सचेत नहीं है जितनी प्रसाद, पन्त या महादेवी की। अतः उनके बिम्ब छायावादी कवियों की तुलना में कम रंगीन है।[91] श्याम को या उसकी विभिन्न रंगतो को निराला का प्रिय वर्ण कहा जा सकता है। यद्यपि उनके बिम्ब में अरूण, वसन्ती, कृष्ण, नील, कनक, हरित आदि कई रंग दिखाई देते है। इनमें एक ही वर्ण का गहरा व अधिक प्रयोग है। "जिधर देखिये उधर श्याम विराजे"[92] में वन, यमुना, कुंज, गगन, धरा, घन, तृण, बलाका, शालि, मयूर, काम, रवि आदि सब कुछ श्याम वर्ण है। तथा "नील नयन

नील पलक[93] में सब कुछ नीला है।

इनकी कविता में नाद-बिम्बों की भरमार है। इनकी श्रवणेन्द्रिय सबसे तेज है। वे हर पत्रों से फूटने वाले स्वर सुन लेते है -

"फूट हरित पत्रो के उर से
स्वर सप्तक छाये।[94]

इनके लिए इन्द्र धनुष के रंग स्वर हैं। वे तरू की शाखाओं के प्रसार में सगीत सुनते हैं, उनके लिए वन बेला वन्य गान है, वे परिमल के कलरव पोधों की रागिनी, अन्धकार, गन्ध और वर्ण की ध्वनि को सुन लेते है।[95] राम विलास शर्मा इनके विषय में लिखते हैं - "साहित्य में जो चित्र खींचता है काव्य में जो बिम्ब प्रस्तुत करता हैं - वे उसे जीवन से अथवा पुस्तकों से प्राप्त होते हैं। जहा नयी भाषा गढ़ता है। नये बिम्ब रचता है, वहां भी आधारभूत सामग्री उसे सामजिक परिवेश से मिलती है।"[96]

प्रतीक-योजना :

बिम्ब की तरह प्रतीक भी मूलतः पश्चिम की देन है। अमेरिका के हर्मन, थोरो एडगर, एलेन, पो तथा फ्रान्स के बोदलेयर, वैलेरी, रिम्बो आदि तथा इंग्लैण्ड के टी0ई0 हुल्मे, एजरा पाउण्ड आदि के चिन्तन ने प्रतीकवाद को जन्म दिया तथा उसे विकास की चरम अवस्था तक पहुँचाया। प्रतीक अभिव्यंजना की एक सशक्त पद्धीत है। प्रतीक के प्रयोग से साहित्य में कम से कम शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक वक्तव्य वस्तु को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया जा सकता है। छायावादी कविता में प्रयुक्त प्रतीकों में रूढ, परम्परागत प्रतीकों की अपेक्षा नवीन, वैयक्तिक प्रतीक अधिक है। निराला ने रूढ़ एवं परम्परागत प्रतीकों का प्रयोग बहुत किया है। जैसे इस गीत में -

गई निशा वह, हँसी दिशाएं
खुले सरोरूह, जग चेतन।[97]

आगे इन्होंने कली, शेर, स्यार, मेष माता, फूल, भंवर, नाव, पारावर आदि रूढ़ व परम्परागत प्रतीक हैं। इनकी कविता में रूढ़ प्रतीकों का एक वर्ग ऐसा है जिसका सम्बन्ध दर्शन, साधना व रहस्यवाद से है। परन्तु इनके रूढ़ प्रतीकों में नवीनता और ताजगी है। इन्होंने अपने रूढ़ प्रतीकों को योजना के द्वारा नवीनता प्रदान किया है -

अरुण पंख तरुण किरण[98]

खड़ी खोलती है द्वार।

इसमें किरण माया की प्रतीक है। इनके काव्य में "किरण" के प्रतीकार्थो का विवेचन करके डॉ0 राम विलास शर्मा ने ठीक ही निष्कर्ष निकला है - "प्रतीक एक होते हुए भी प्रतीक योजना रहस्यवादी रूढ़ि से उल्टी दिशा में चल रही है।[99] इसमें एक ही परम्परागत प्रतीक एक से अधिक प्रतीकार्थों का व्यंजक बन गया है। निराला की कविता में प्रकृति का हर पदार्थ, हर प्राणी, हर दृश्य प्रतीक ही हैं -

वहां नयनों में केवल प्रात

चन्द्र ज्योत्सना ही केवल गात।[100]

इसमें प्रात उल्लास का व चन्द्र ज्योत्सना निर्मल कान्ति की प्रतीक है। इन्होंने घिसे पिटे प्रतीक का मौलिक उपयोग किया है। ये पुराने प्रतीक को नयी दृष्टि से देखते हैं। अन्य छायावादी कवियों की तरह इन्होंने भी सांस्कृतिक प्रतीकों को अपनाया है। वैदिक व धार्मिक प्रतीक इनकी कविता में प्रचुरता से मिल जाता है -

किन्तु क्या अन्धे भी तुम हो गये ?

राक्षस वह, रखते हो नीति का भरोसा तुम।[101]

इसमें राक्षस का प्रतीकवत् प्रयोग करके निराला ने औरंगजेब के चरित्र की राक्षसी प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। इसलिए इनकी कविता में पौराणिक धार्मिक प्रतीकों में प्रतीकात्मकता अधिक है - पौराणिकता कम। निराला के काव्य में योग सम्बन्धी प्रतीक दिखाई पड़ते हैं। खप्पर, खंग, रुधिर, चक्र, त्रिकुटी, सहस्रार आदि शाक्त एवं कुडंलिनी योग सम्बन्धी साम्प्रदायिक प्रतीक है। इसलिए इनकी कविता में दर्शन के क्षेत्र से गृहीत प्रतीक मिलते हैं। इन्होंने अनेक प्रतीक चित्र, संगीत और मूर्ति, ललित कलाओं से लिये है। ललित कलाओं से गृहीत प्रतीक उदाहरण इनकी कविता में दिखाई पड़ता है -

वीणा वह स्वयं सुवादित-स्वर,

कूटी तर अमृक्षार-निर्झर,

यह विश्व-हंस, है चरण सुघर जिस पर श्री[102]।

इसमें "वीणा" हृदय की रूढ़ प्रतीक है।

छायावादी कवि अपने प्रतीकों के माध्यम से अधिकांश अपनी लौकिक-अलौकिक रति भावना को तथा उससे सम्बद्ध विभिन्न अनुषंगिक भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। निराला की जुही की कली में अनेक काम प्रतीक है। निराला की "तुम और मै"[103] कविता के प्रतीक आध्यात्मिक प्रतीक है, जिनके द्वारा परमात्मा और आत्मा की विभिन्न विशेषताओं के आधार पर पारस्परिक सम्बन्धों को निरूपित किया गया हैं। मै और तुम के इन आध्यात्मिक प्रतीकों को वेदान्ती प्रतीक कहा जा सकता है। इनहोंने संयोग व वियोग का विभिन्न चित्र खीचा है। "हुआ प्रात", प्रियतम, तुम जावोगे चले[104] में प्रात जन्म का, प्रियतम परमात्मा का, प्रेयसि आत्मा का, रात्रि जन्म से पूर्व की स्थिति का आलोक माया का प्रतीक माना जा सकता है।

निराला कही-कही एक से अधिक प्रतीकों का प्रयोग एक ही जगह करते हैं। राम की शक्ति पूजा में जो विभिन्न प्रतीक इधर-उधर बिखरे हुए थे, वे एकत्रित हो गये हैं। रामविलास शर्मा इनके प्रतीकात्मक विचार की विश्लेषण करते हुए लिखते हैं - "निराला की प्रतीक योजना चाहे सचेत रूप से संयोजित की गई हो चाहे अचेत रूप से, वह यथार्थ की विरोधी नही है"।[105] इनका युद्ध वर्णन भी प्रतीकवत न होकर सजीव रूप में आया है।

इस प्रकार निराला की प्रतीक योजना यथार्थवादी मूर्तिमान के विपरीत नहीं बल्कि आश्रित है। इनके प्रतीक विधान की उल्लेखनीय विशेषता है साधनामूलक प्रतीकों का प्रयोग जिसे सिद्धों और सन्तों में विशेष रूप से दिखाई देता है।

<u>छन्द-योजना :</u>

निराला के छन्द पर अध्ययन करते समय इसे हम दो खण्डों में बांट सकते है - (1) मुक्त (2) वर्णिक व मात्रिक। क्योंकि मुक्त छन्द यही से शुरू होता है। निराला ने अपने काव्य में मात्रिक छन्द के साथ-साथ मुक्त छन्द को भी सफलता के साथ ग्रहण किया है। इनकी दृष्टि से भाषा को गति लय से मुक्त करना ही मुक्त छन्द है जिसमें कोई बन्धन न हो। मुक्त छन्द में इनकी अच्छी खासी पैठ थी। इन्होंने मात्रिक छन्द का प्रयोग तो किया है परन्तु वह मुक्त छन्द के आगे नगण्य दिखायी पड़ता है। इसके पहले मुक्त छन्द का वेदों आदि में प्रयोग हुआ है। ये वेदान्त से मुक्त छन्द का सम्बन्ध जोड़ते हुए कहते है -

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों

निराला "पंत जी और पल्लव" में मुक्त छन्द को मात्रिक छन्द से तुलना करते हुए कहते हैं कि मुक्त विहग वृत्तियों के समान है। परिमल की भूमिका में वे कहते है - "मनुष्य की मुक्ति कर्मो के बन्धन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के बन्धन से अलग हो जाना है।"[107] इस प्रकार वे मुक्त छन्द का सम्बन्ध मनुष्य की स्वाधीनता से जोड़ते है। मुक्त छन्द में न तो निश्चित वर्ण मात्राएं आवश्यक है न अन्त्यानुप्रास इसमें केवल लय ही आवश्यक है। इसका मूल आविष्कर्ता कौन है इसको तो निर्णयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। निराला तो वैदिक मन्त्रों से मुक्त छन्द ग्रहण किये हैं। इन्द्र नाथ चौधरी ने कहा है कि - "हिन्दी में सर्वप्रथम निराला ने "पचवटी प्रसंग" में मुक्त छन्द का उपयोग किया है।"[108] इसमें सन्देह नहीं है कि मुक्त छन्द के प्रथम आविष्कर्ता और प्रयोक्ता निराला हैं। बन्धनमय छन्दों से मुक्त होने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि कवि का भाव बदल गया था।" भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है यहां भाषा भाव और छन्द तीनों स्वतन्त्र है।"[109] निराला मुक्त छन्द को कविता का प्राण मानते हैं। परिमल की भूमिका में ये लिखते हैं - "मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है। मुक्त छन्द भी अपनी विषम गति में एक ही साम्य का अपार सौन्दर्य देता है।[110] मुक्त छन्द वस्तुतः अपनी प्रथम प्रायोगिक स्थिति में पूर्णतः मुक्त नहीं था। वह अपने पूर्ववर्ती छन्दों के लयाधार को लेकर चला। उनका विचार है - "मुक्त छंद लय प्रधान है और अनुरूपता लय का नित्य धर्म है अतः मुक्त छन्द में वर्णों की अनुरूपता मिल जाती है।"[111] यह अपने पूर्ववर्ती छन्दों को लयाधार को लेकर चला। लयाधार के कारण हिन्दी में दो प्रकार के मुक्त छन्दों का व्यवहार हुआ। एक तो वर्णवृत्तों के लयाधार पर रचा गया दूसरा मात्रिक छन्दों के लयाधार पर। घनाक्षरी के लयाधार पर सर्वप्रथम निराला ने मुक्त छन्द का निर्माण किया। निराला ने अनुभव किया था कि - "हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर ही सफल हो सकता है। कारण, यह छन्द चिरकाल से इस जाति के कण्ठ का हार हो रहा है।"[112] निराला ने जब इस छन्द की रचना की तो कोई निश्चित नियम नहीं बनाया। दरअसल मुक्त छन्द, कवित्त की वर्ण संख्या को छोड़ देता है, बलाघात संख्या पकड़े रहता है, इसलिए छन्द बना रहता है।[113] और जहां केवल लय, केवल बलाघात को ही पकड़े रहता हो वहां छन्द की एक-एक रूपता बनी रहना असम्भव है। इनके काव्य में कवित्त के लयाधार पर चलने वाले मुक्त छन्द के अनेक रूप मिलते है।

जूही की कली में इसका एक रूप इस तरह है -

विजन-वन-वल्लरी पर

सोती थी सुहाग भरी स्नेह स्वप्न मग्न

अमल कोमल तनु तरुणी जूही की कली[114]

××× ××× ××× ×××

जागो फिर एक बार में इसका दूसरा रूप प्रयुक्त हुआ है -

जागो फिर एक बार

समर अमर कर प्राण

गान गाये महा सिन्धु से

सिन्धु नद तीर वासी[115]

'कुकुरमुत्ता' में तो निराला मुक्त छन्द को और ही तरह से प्रस्तुत करते हैं -

अबे, सुन बे, गुलाब

भूल मत, जो पाइ खुशबू, रंगोआब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतराता है कैपीट लिस्ट[116]

इसी प्रकार के कई अन्य रूप निराला में मिल जायेंगे। इन्हें देखने से यह मालूम पड़ता है कि इनमें कवित्त छन्द का बलाघात विद्यमान है, किन्तु पंक्तियों की लम्बाई या प्रत्येक पंक्ति में वर्णो की संख्या का कोई नियम नहीं हैं। यह छन्द अन्त्यानुप्रास मुक्त भी हो सकता है और युक्त भी हो सकता है। "मुक्त छन्द वास्तव में अर्धनारीश्वर है कभी-कभी एक ही कविता में पौरुषता और सुकुमारता दोनों गुण दिखाता है"।[117] निराला के कविता पर आधारित मुक्त छन्द की एक विशेषता उसकी सानुप्रास शब्दावली भी है। निराला का मुक्त छन्द बंगला से प्रभावित है। वर्णिक व मात्रिक दोनों प्रकार के मुक्त छन्द का जन्म छायावाद में हुआ। निराला अपने मुक्त काव्य के विषय में कहते हैं - "मुक्त काव्य में बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह में जो सुख मिलता है, उच्चारण से बुद्धि की जो अबाध धारा प्राणों को सुख प्रवाह-सिक्त निर्मल किया करती है, वही उसका प्रमाण है।"[118] निराला स्वर पात पर भी ध्यान देते है। यह कहां ठीक है कहां नहीं, इसे भी देखते हैं। "मेरे गीत व कला" में ब्रज भाषा के कवियों पर कहते हैं "देखिये भूषण कवित्तों में गंवार की तरह चिल्ला रहे हैं या देव छंदो में मारे श्रृंगार के दुहरे होते जा

रहे हैं।"[119] इस आलोचना में थोड़ा ज्यादती है लेकिन यह बात सही है कि कवित्त कई तरह से पढ़े जा सकते हैं। निराला को अपने मुक्त छन्द पर शंका है। शंकित मन कहता है बोल चाल की लय को अपनाने के लिए यह जरूरी नहीं है कि मुक्त छन्द ही लिखा जाय।

निराला ने प्रचलित मात्रिक छन्दों का कम प्रयोग किया है। परन्तु इनकी प्रारम्भिक कविताएं परम्परागत छन्दों में ज्यादा है। इनका अधिकांश परवर्ती काव्य नियमित छन्दों में बंधा है। वीर, ताटक, तमाल, रोला आदि ही कुछ मात्रिक छन्द है। परम्परागत मात्रिक छन्दों के टुकड़े उनके गीतों एवं मुक्त छन्दों में बीच-बीच में मिलते हैं। इनकी कविता के गीतों में लयात्मक वैविध्य अत्यधिक है। इसको वर्गीकृत करना असम्भव सा प्रतीत होता है। कुछ गीतों की रचना भक्ति कालीन पदों जैसी है और कुछ के लयाधार लोकगीतों से गृहीत हैं। इन पर होली और कजली की लोकधुनों का विशेष प्रभाव है। "नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे खेली होली"[120] हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ होली गीत है।" "गीतिका के बाद निराला के गीतों पर लोक संगीत का रंग गहरा हुआ है।"[121] उनके परवर्ती संग्रहों में अनेक गीत लोक संगीत से प्रभावित हैं जो वर्णिक छन्द के मुख्य उदाहरण हो सकते है -

वरद हुई शारदा जी हमारी
पहनी वसन्त की माला संवारी।[122]

निराला का गीत शुद्ध भारतीय है। टैगोर की भाँति इन्होंने पाश्चात्य संगीत को नहीं अपनाया। इस विषय में निराला गीतिका की भूमिका में लिखते हैं - "अंग्रेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी, यह संदिग्ध है। कारण, भारतीय संगीत की स्वर मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं, वे अंग्रेजी संगीत में लगते हैं।"[123] ये भारत के शास्त्रीय संगीत से पूरी तरह परिचित थे। गीतिका की भूमिका में इन्होंने लिखा है कि इनका काव्य भारतीय शास्त्रीय संगीत में रमा है। संगीत ज्ञान के साथ-साथ भाषा के संगीतात्मक माधुर्य के प्रति सजगता से परिचय दिया है। "संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के निकट लाने का सबसे अधिक प्रयास निराला जी ने किया है।"[124] इनकी कविता में जितना महत्व परम्परागत छन्दों का है, उससे कहीं अधिक महत्व छन्द सम्बन्धी प्रयोगों एवं नये छन्दों के निर्माण का है। नवीन छन्दों का प्रयोग निराला ने बहुत किया है - कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

विषम विकर्षाधार छन्द

गीत जगाजा 8

गले लगा लो 8

हुआ गैर जो, सहज सगा हो 16

करे पार जो है अति दुस्तर।[125] 16

8 ओर 16 मात्राओं का क्रम चोपाई के अष्टक के आधार पर चलता है। अतः भिन्न विस्तार वाले चरणों में लय-मैत्री संभव हुई है। इस प्रकार के विकर्षाधारों का प्रयोग इनके गीतों एवं मुक्तक कविताओं में अधिक हुआ है। इन्होंने अपने प्रयोगशील वृत्ति का उपयोग करके अनेक मौलिक छन्द का आविष्कार किया है। इन्होंने "राम की शक्ति पूजा" में रोला से मिलते-जुलते तीन अष्टकों पर आधारित एक नये छन्द का आविष्कार किया, जिसे "शक्ति पूजा छन्द" कहा गया। इसी प्रकार इन्होंने कुण्डल की लय के आधार पर एक त्रिफलात्मक नये छन्द का आविष्कार किया है। इस छन्द का निर्माण 6-6-5 मात्राओं के क्रम से होता है -

फुली दिङ् मडल में चाँदनी 6, 6, 5 मात्राएं

बँधी ज्योति जितनी थी बांधनी[126] 6, 6, 5 "

अणिमा में प्रयोग होने के कारण इसे अणिमा छन्द भी कहा गया है। घनाक्षरी और कवित्त को हिन्दी का जातीय छन्द मानते है। निराला जानबूझ कर छन्द की गति में परिवर्तन करते हैं। किन्तु जगह-जगह पर भंग दोष और मजबूरी दिखायी देती है। इस प्रकार निराला - "शृंगार रस प्रधान स्थलों पर मात्रिक पदों का प्रयोग अधिक करता है। यदि यह विधान कहीं न भी हुआ हो तो वीर रस के प्रंसग में मात्रिक छन्द भी वर्णिक चतुष्क के रूप में उच्चरित होते हैं। जिससे ध्वनि में प्रौढ़ता और ओज का निर्माण हो सके।"[127] "राम की शक्ति पूजा" में बड़ी पंक्तियों में स्वभावतः अन्त्यानुप्रास पर और भी अधिक बल है, उसे छोड़कर दूसरी पंक्ति में अर्थसार का प्रयत्न निराला नहीं करते। सरोज-स्मृति और तुलसी दास में इन्होंने कवित्त छन्द का प्रयोग किया है। इनके छन्दों पर बंगला, उर्दू व अंग्रेजी का प्रभाव कम दृष्टिगोचर होता है। कविता गाने की चीज न रहकर पढ़ने की रह गयी निराला ने मुक्त छन्द लेकर "आर्ट ऑव रीडिंग"[128] (पाठ कला) की बात अकारण नहीं कहा था।

इन्होंने उर्दू छन्दों का अनुसरण करने का प्रयत्न किया तो, आंशिक सफलता ही हाथ लगी। लेकिन द्विवेदी युग केबाद सबसे ज्यादा सचेत प्रयोग इन्होंने ही किया है। इनकी गजलें बेला में संग्रहीत है। बेला के आवेदन में इन्होंने स्पष्ट किया है कि "बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं। जिनमें फारसी के छन्द शास्त्र का निर्वाह किया गया है।"[129] इन प्रयोगों में इन्हें कुछ हद तक सफलता मिली है।"हँसी के तार के होते है, ये बहार के दिन"में बहर मुज तज मुसम्मन, मखनून मजहूफ का सफल निर्वाह है।[130] परन्तु लयाधार कहीं-कही खण्डित है। निराला ने तांटक और वीर छन्द का भी प्रयोग किया है। इस प्रकार हिन्दी की प्रकृति मात्रिक छन्दों के अधिक अनुकूल है। निराला ने मात्रिक छन्दों का सफाई के साथ प्रयोग किया है।

<u>अलंकार-योजना</u> :

आदर्श कविता वही कही जायेगी जो विवेक से नहीं बल्कि भावावेश से निकली हो। इस प्रकार अलंकार भाषा की वाह्य एवं आंतरिक क्षमताओं का एक विशेष तरह का उपयोग है। निराला की अलंकार के विषय में यह धारणा है कि अलंकार कविता को सजाता है न कि उसके भाव को -

> निरलंकार कवित्व अनर्गल
> किसी महाकवि कलित-कंठ से
> झरता था जैसे अविराम कुसुम-दल[131]

जैसे पुष्प समूह लगातार झरता है, वैसे कवि कण्ठ से कविता। दूसरी पंक्ति में अनुप्रास की बहार दिखाई देती है।पुष्प दल की कविता से तुलना करने पर इसमें उपमा अलंकार दिखायी देता है। वैसे यहां विशेष कारीगरी तो नहीं है, लेकिन कवि का अलंकार प्रेम दिखाई देता है। "निराला का विचार वेदों के विषय में है कि इस विषय को ऋषियों ने अलंकार विहीनता से व्यक्त किया है।[132] वक्रोक्ति, प्रहेलिका, यमक, पुनरूक्ति प्रकाश, रूपक, उपमा आदि तो इनके काव्य की महत्वपूर्ण कड़ी है, किन्तु अनुप्रास का इन्होंने अधिक सार्थक उपयोग किया है। उन्होंने कृत्रिम अनुप्रास योजना के बावजूद इसके द्वारा भाषा में मधुरता लाने का प्रयास किया है। अनुप्रास में इन्होंने शास्त्रीय सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया है। परन्तु उसके नये-नये रूपों का प्रयोग किया है। इनमें से एक रूप है - ध्वन्यर्थ व्यंजना

§अनामिका§ इन्होंने ऐसी बहुत सी पंक्तियां लिखी है जिनमे ध्वनि ही उनके अर्थ की व्यंजना करती है। सम्भवतः हिन्दी में कोई दूसरा ऐसा कवि नहीं है जिसे शब्दों की ध्वनियों के प्रति इतना लगाव हो इसलिए इनके काव्य में ध्वन्यर्थ व्यंजना के अधिक उदाहरण सुलभ हैं -

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन गिरि कानन
कुंज-लता-पुंजो को पारकर
पहुँचा .....।[133]

इसमें पवन की गति की ध्वनि ही उसकी काम-जनित व्यग्रता को व्यंजित करती है। इनकी कविता में ध्वन्यर्थ- व्यंजना का यह रूप अंग्रेजी और बंगला काव्य के मिले-जुले प्रभाव के रूप में आया है। इनके अप्रस्तुत विधान में भी पूर्ववर्ती विधान का थोड़ा बहुत साम्य है। इनके अप्रस्तुत में प्रस्तुत कम दिखायी पड़ता है। इसके दो रूप दिखायी देते हैं पहले तो वे प्रस्तुत दिखायी देते हैं। बाद में अप्रस्तुत। "निर्झर" कविता में निर्झर प्रस्तुत दिखायी देता है, परन्तु बाद में वह अप्रस्तुत बन जाता है, क्योंकि जब वह पत्थर से टकराता है और हँसकर अनन्त की ओर इशारा करके चल देता है।"[134] अर्न्तमुखी कवि होने के कारण इनकी कविता में अमूर्त प्रस्तुत बहुत आये है उसके लिए इन्होंने मूर्त प्रस्तुत का प्रयोग किया है। जैसे -

आंसुओं से कोमल झर-झर
स्वच्छ निर्झर-जल-कण-से प्राण।[135]

इन्होंने प्रस्तुत-विधान का कुछ ढाँचा बना लिया है। उसी के अनुसार अप्रस्तुत विधान की रचना करते हैं। इसलिए इनके अप्रस्तुत विधान में उपमानों का मनोकूल प्रभाव पड़ाहै। इन्होंने अपने काव्य में विराट उपमानों का प्रयोग किया है। इनके उपमान मांसल की दिखाई देते हैं। उपमान करूणा को भी व्यंजित करते हैं। इनकी पीड़ा बहुत आवेगपूर्ण है इसलिए इसे दुःख की संज्ञा दी जा सकती है। परन्तु निराला का तीव्र आवेग उनके पौरूष से भी जुड़ा है।'दुःख से डूबे राम' निम्न चित्र में उपमान जहां गहरी निराशा को व्यंजित करता है, वहीं विराट पौरूष को भी दर्शाता है -

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल

कहा जाता है कि मिल्टन की कविता दो बार पढ़नी पड़ती है एक बार संगीत के लिए और दूसरी बार उसे समझने के लिए, परन्तु निराला की कविता तीन बार पढ़नी चाहिए, पहले समझने के लिए फिर ध्वनि हृदयगम के लिए और तीसरी बार आनन्द के लिए। इस प्रकार अप्रस्तुत योजना का अलकारों से अपरोक्ष रूप से अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। इसका ‡अप्रस्तुत योजना‡ का शत-प्रतिशत परिणाम अलंकार होता है। इनकी रचना में सभी औपम्य मूलक अलंकार मिल जायेंगे। परन्तु कुछ विशिष्ट अलंकारों की अपनी अलग विशेषता है। सांग रूपक इनका अत्यन्त प्रिय अलंकार है। वे यदि कोई कविता वसन्त से प्रारम्भ करते हैं तो पूरा ऋतु चक्र ही समाप्त करके दम लेते हैं। "दैवी सरस्वती" कविता में भारतीय संस्कृति की गाथा को रूपक के माध्यम से व्यक्त करते हैं। "तुलसीदास" में सांस्कृतिक संध्या उसके बाद रात्रि और फिर प्रभात का चित्र रूपक के द्वारा ही अंकित किया गया है।"[137] इनकी कविता में रूपक केवल अलंकार ही नहीं बल्कि कविता का रचना विधान है।

मानवीकरण का भी इनकी रचनाओं में सफल प्रयोग है। 'जुही की कली' में इसका सफल प्रयोग है। इनकी कविता में यह अलंकार कितना सिद्ध है यह इसी से पता चलता है कि सन्ध्या या रात्रि इन्हें स्त्री रूप में दिखाई देती है -

> दिवसावसान का समय
> मेघमय आसमान से उतर रही है।[138]

निराला की कविता यमक की ओर तो नहीं आकृष्ट हुई है परन्तु वह कहीं-कहीं स्वतः ही आ गया है -

> पास ही रे हीरे की खान
> खोजता कहां उसे नादान[139]

श्लेष भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। उपमा में इन्होंने एक उपमेय के लिए दूसरा उपमान लाया है। यह इनका प्रिय अलंकार है -

> भृति पर ज्यों बिजली सी टूटती है सुमित्रा मां
> शत्रु पर त्यों सिंह सा झपटता है लखन लाल।[140]

इसमें कवि एक उपमा को दूसरे के समानान्तर इस भांति स्थापित करता है कि एक उपमेय के दो उपमान एक साथ ही अलंकृत होते हैं। दीर्घ पृच्छा उपमाएं हिन्दी कविता में कम है।

इसके लिए पाश्चात्य विद्वान प्रसिद्ध है। परन्तु निराला ने ऐसी उपमाए अपने काव्य में रखी हैं -

मुक्ति नहीं जानता भक्ति रहे काफी है।[141]

निराला ने नेत्रों की उपमा खंजन या चकोर से न देकर बैठे हुए विहगो से दी है -

वे किसान की नई बहू की आँखे
ज्यो हरीतिमा में बैठे दो विहग बदकर पाँखे,[142]

समारोक्ति व मुद्रा अलकार भी इनकी कविता में बहुत मिलता है। इसके अलावा इन्होंने अन्योक्ति प्रतीक, ध्वन्यार्थ व्यंजना और रूपक का तो विशेष प्रयोग किया है। छायावाद में तो नये प्रकार का अलंकरण है। निराला प्रारम्भ में ही "निरलंकार और निर्बन्ध कवित्व की बात सालंकार भाषा में करते है।"[143] उल्लेख प्रौढ़ोक्ति, विषम काव्य लिंग, परिकर, प्रत्यनीक, तद्‌गुण, उत्तर आदि भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ते है। और विरोधमूलक अलंकार में विरोधाभास, विशेषोक्ति, असंगति आदि प्रयोग मिलता है।

प्रारम्भ से लेकर अंत तक इन्होंने उभयालंकारों का भी प्रयोग किया है। जहां व्यंजनों की अधिकता से अनुप्रास सहज हो जाता है वहीं एक भी अर्थालंकार आने से संकर अलंकार हो जाता है -

सखी नीरवता के कन्धे पर डाले बांह
छांह सी अम्बर-पथ से चली।[144]

इसमें उपमा (छांह सी) और रूपक (अम्बर-पथ) सम्मिलित होते हुए भी अलग है इसलिए संसृष्टि है।

इस प्रकार निराला का अलंकार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इन्होंने जीवन को नये ढंग से देखने व चित्रित करने का प्रयास किया है। जिसमें इनका अलंकार सजीव हो उठा है। निराला के प्रत्येक गीत व छन्द में कुछ न कुछ व्यंजना अवश्य रहती है। अतः इनके अलंकार काव्य में चमत्कृति प्रयास ही नहीं बल्कि सचमत्कार भाव से युक्त है।

रस-योजना :

छायावादी कविता ने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह किया। इसलिए वह अप्रत्यक्ष रूप से रस से दूर हटती गयी। रस हमेशा प्रस्तुत को सामने रखकर अप्रस्तुत की सहायता लेता है। समय चक्र के साथ-साथ छायावादी कविता ध्वनि प्रधान होती गयी, इसलिए रसवादी धारा का अभाव स्वाभाविक है। निराला ही एक ऐसे छायावादी कवि है जिसके शब्द ध्वनि में रस अनवरत रूप से बहता है। इसका प्रमुख कारण कवि की भाव सम्बद्धता है। छायावादी गीतकारों में ऐसी श्रृंखलित भावावलि किसी में भी नहीं मिलती। निराला का काव्य रहस्यमय है। इनके काव्य में प्रेम, सौन्दर्य व प्रकृति रहस्यमय है। इनकी कविताएं द्विधा चिन्तन करती है। एक सरसता युक्त तथा दूसरा शुद्ध विचार मयी। सरस चिन्तन में संचारी अधिक से अधिक भाव तक पहुँचता है, किन्तु विचार में भाव का अभाव है। अतएव रस का आस्वाद दोनों में नहीं हो पाता। निराला के अनुसार "काव्य की आत्मा रस है किन्तु मुख्य बात उसे समझने और यथार्थ रूप में व्यक्त करने में है।"[145]

निराला प्रकृति प्रेमी भी हैं। परन्तु प्रकृति रति-भाव को पुष्ट तो करती है, परन्तु रति की विषय नहीं हो सकती। नारी रूप में कवि जो चित्रण (प्रकृति) करता है वह रति सम्बन्धी भावना का फल है। इनके काव्य में रीतिकाल के श्रृंगारिक वर्णन लुप्त होने लगे। परन्तु इन्होंने भी नारी की स्वस्थता में आकर्षण पाया है। इनके काव्य में जिज्ञासा इतनी प्रचुर है कि एक भाव हृदय में नही ठहरता। गीत की निरपेक्षता, स्वयं-पूर्णता भाव को रस नहीं बनने देती। भाव अग्रसारण ही इनके गीतों की विशेषता है, इसलिए इनके काव्य में रस का अनुभव सरलता से होता है -

> प्रति पल तुम ढाल रहे सुधा-मधुर ज्योति धार
> मेरे जीवन पर, प्रिय यौवन-वन के बहार।
> बह-बह कुछ कह-कह आपस मे
> रह रह जाती हैं रस रस में
> कितनी ही तरुण अरुण किरणें।[146]

दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति ने इन्हें करुण रचनाओं की प्रेरणा दी। परवश नारी, असहाय कृषक, पीड़ित मजदूरों से सम्बन्धित कविता में करुण रस का परिपाक हुआ है। छूआ-छूत पर व्यंग्य करते हुए इन्होंने करुण रस का कितना सुन्दर वर्णन किया है -

सहजाते हो

उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,

हृदय तुम्हारा दुर्बल होता भग्न,

अन्तिम आशा के कोनों में

स्पन्दित हम सब के प्राणों में

अपने उर की तप्त व्यथायें

क्षीण कण्ठ की करुण कथायें

कह जाते हो।[147]

वीर, रौद्र, वीभत्स और भयानक रस इनकी देश सम्बन्धी कविताओं में मिलते हैं। इनकी रचनाओं में कुतूहल और जिज्ञासा का प्राचुर्य है। इसलिए इनकी कविता में अद्भुत रस नहीं मिलता। इन्होंने व्यंग्यपूर्ण रचनाएं ज्यादा की है। जिससे हास्य को भी विशेष दर्जा मिला है। हास्य अन्य रसों की अपेक्षा कम सार्वलौकिक है। वह सामाजिक अधिक है। शिल्प-कौशल पर पंत जी लिखते हैं - "निराला का विकास प्रसाद की तरह मन्त गजगामी गति से नहीं हुआ। उन्होंने कविता कानन में अपने समस्त प्रवेग के साथ सिंह की तरह प्रवेश किया और इनकी पहली रचना 'जूही की कली' ने नयी अभिव्यंजना तथा शिल्प-कौशल के कारण आलोचकों की दृष्टि में हिन्दी जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया।"[148]

इस प्रकार निराला का शिल्प-विधान छायायुग की एक क्रान्ति ही कही जा सकती है और उन्होंने हर पहलू पर विधिवत अध्ययन किया है। इसकी प्रेरणा उनकी अपनी जन्म-स्थली है। इस विषय में पंत जी लिखते है - "जिस तरह मुझे प्रारम्भ में हिमालय के सान्निध्य से और फिर अंग्रेजी कवियों के सम्पर्क में आने से काव्य रुचि और कलाबोध सम्बन्धी प्रेरणा मिली उसी तरह निराला को भी बंगला के उन्नत साहित्य महीधर प्रांगण में रहने के कारण प्रथम प्रेरणा मिली हो तो यह बिल्कुल स्वाभाविक ही है।[149]

सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्र0सं0	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	210
2.	रवीन्द्र कविता कानन	निराला	78
3.	निराला ग्रन्थावली भाग-1	निराला	78
4.	परिमल §भूमिका§	निराला	5
5.	सुधा, फरवरी 30 संपादकीय टिप्पणी		7
6.	सुधा, अक्तूबर 32		
7.	सुधा, नवम्बर 29		1
8.	सुधा, जून 30		6
9.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	87
10.	चाबुक	निराला	49
11.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	236
12.	"	"	236
13.	अनामिका	"	164
14.	सुधा, अक्तूबर 1936		
15.	अपरा	निराला	85
16.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	203
17.	विवेकानन्द चरित	सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	442
18.	साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित लेख	डॉ0 निर्मला जैन	25
19.	अनामिका	निराला	161
20.	तुलसीदास	निराला	54
21.	अनामिका	निराला	98
22.	सुधा निराला लेख दिसम्बर 33		
23.	निराला व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ0 एस0एन0 गणेश	155
24.	अपरा	निराला	143
25.	महाप्राण निराला	गंगा प्रसाद पाण्डेय	72

क्र0सं0	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
26.	अनामिका	निराला	130
27.	तुलसीदास	"	25
28.	ये कान्य कुब्ज कुल कुलागार खाकर पत्तल में करे छेद। इनके कर कन्या अर्थ खेद कल घ्राण प्राण से रहित व्यक्ति। अनामिका	निराला	129
29.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	344-45
30.	प्रबन्ध प्रतिमा	"	131
31.	वह तोड़ती पत्थर देखा मैने उसे इलाहाबाद के पथ पर, अनामिका	निराला	79
32.	महाप्राण निराला	गंगा प्रसाद पाण्डेय	26
33.	अपरा	निराला	142
34.	प्रबन्ध प्रतिमा	"	136
35.	अपरा	"	67
36.	अनामिका	"	25
37.	सुधा 1, फरवरी 34	"	
38.	प्रबन्ध प्रतिमा	"	62
39.	परिमल	"	99
40.	अपरा	"	11
41.	अपरा	"	13
42.	अनामिका	"	58
43.	अपरा	"	89
44.	अपरा	"	91
45.	गीतिका	"	83
46.	गीतिका	"	73
47.	आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां	डॉ0 नगेन्द्र	29

क्र0सं0	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
48.	आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां	डॉ0 नगेन्द्र	19
49.	अनामिका	निराला	55
50.	निराला: व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ0 प्रेम नारायण टण्डन	47
51.	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	344-45
52.	गीतिका	"	104
53.	गीतिका	"	71
54.	खोलो दृगों के द्वय द्वार - गीतिका	"	48
55.	गीतिका	"	56
56.	गीतिका	"	43
57.	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पन्त	94
58.	गीतिका	निराला	94
59.	निराला ग्रन्थावली भाग-1	"	511
60.	निराला ग्रन्थावली भाग-2	"	424
61.	पल्लव (प्रवेश)	पंत	49
62.	निराला ग्रन्थावली भाग-2	निराला	467
63.	निराला ग्रन्थावली	निराला	443
64.	निराला ग्रन्थावली भाग-1	"	539
65.	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	62
66.	पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त	दिनकर	71
67.	प्रबन्ध पद्म	गंगा धर पाण्डेय	24
68.	तुलसीदास	निराला	18
69.	परिमल	निराला	29
70.	प्रबन्ध प्रतिमा	"	210
71.	गीतिका	"	7
72.	गीतिका	"	4
73.	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	386-87
74.	अपरा	निराला	23

क्र0सं0	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
75.	अनामिका	निराला	22
76	कुकुरमुत्ता §भूमिका§	निराला	32
77	नये पत्ते	"	101
78	कुकुरमुत्ता §भूमिका§	"	33
79.	नये पत्ते	"	25
80	नये पत्ते	"	25
81	प्रबन्ध प्रतिमा	"	32
82.	निराला की साहित्यिक साधना	राम विलास शर्मा	363
83	गीतिका §भूमिका§	निराला	12
84.	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	केदारनाथ सिंह	27
85.	काव्य बिम्ब	डॉ0 नगेन्द्र	5
86.	अनामिका	निराला	167
87	गीतिका	"	33
88.	अनामिका	"	155
89	गीतिका	"	49
90.	निराला काव्य पर बंगला प्रभाव	इन्द्रनाथ चौधरी	112
91.	गीतकुंज	निराला	17
92.	आराधना	"	45
93.	परिमल	"	42
94.	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	330-31
95.	"	"	548
96.	गीतिका	निराला	59
97.	परिमल	निराला	30
98.	परिमल	"	117
99.	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	322
100.	परिमल	निराला	99-100
101.	अपरा	"	84

क्र०स०	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
102	तुलसीदास	निराला	54
103	अपरा	"	68
104·	गीतिका	"	96
105·	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	329
106	परिमल	निराला	176
107·	परिमल §भूमिका से§	निराला	
108	निराला काव्य पर बंगला प्रभाव	इन्द्रनाथ चौधरी	132
109·	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	200
110·	परिमल §भूमिका से§	"	
111	परिमल	"	
112·	परिमल	"	20
113·	निराला की साहित्य साधना - 2	राम विलास शर्मा	428
114·	परिमल	निराला	171
115	परिमल	"	179
116·	कुकुरमुत्ता	"	39
117·	निराला की साहित्य साधना - 2	राम विलास शर्मा	426
118·	प्रबन्ध पद्म	गंगाधर पाण्डेय	97
119·	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	269
120·	गीतिका	"	47
121·	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	444
122	गीतकुंज	निराला	55
123·	गीतिका	"	10
124·	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	660
125·	अणिमा	निराला	3
126	अणिमा	"	42
127·	छायावादी काव्य और निराला	"	273
128·	परिमल	निराला	21

क्र०सं०	ग्रन्थों के नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
129·	बेला	निराला	5
130·	निराला	धनञ्जय वर्मा	228-29
131·	परिमल	निराला	144
132	सहज भाषा समझाती थी ऊँचे तत्त्व अलंकार लेश रहित श्लेषहीन शून्य विशेषणों से नग्न नीलिमा से व्यक्त भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी परिमल	निराला	235
133·	परिमल	निराला	171
134·	किसी पत्थर से टकराते हो फिर कर जरा ठहर जाते हो। परिमल	निराला	167
135·	अपरा	निराला	106
136·	अनामिका	"	153
137	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	412
138·	परिमल	निराला	126
139·	गीतिका	"	27
140	परिमल	"	241
141	परिमल	"	243
142·	अनामिका	"	146
143	निराला की साहित्य साधना	राम विलास शर्मा	408
144·	परिमल	निराला	126
145·	छायावादी कवियों का आलोचना साहित्य	शीला व्यास	164
146·	परिमल	निराला	70
147·	अपरा	"	113
148·	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	62
149·	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	61

---000---

अध्याय - 5

पंत का काव्य और उनका काव्य-चिंतन

पंत का काव्य और उनकी विचार धारा

छायावाद की पृष्ठभूमि में अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय हलचले दिखाई पड़ती है। उन्नीसवीं शताब्दी तो सांस्कृतिक और बौद्धिक जागरण का काल रहा है। सामंती सभ्यता के समाप्त होते-होते पूँजीवादी युग का सूत्रपात हुआ। पूँजीवाद से भुखमरी सामाजिक विषमता, असन्तोष, पूँजी-संचयन तथा अन्य कई कुपरिणाम उत्पन्न हुए। इसी सामाजिक विपन्नता में छायावादी कवि पंत का आर्विभाव हुआ। उस समय सामाजिक विषमता की जड़े इतनी मजबूत हो चुकी थी कि कवि को कुछ भी जीवन को प्रेरणा देने के लिए शेषन रह गया। अत छायावाद के कवि को प्रकृति साहचर्य में ही शान्ति मिली। पंत ने प्रकृति को ही अपने कविता का क्षेत्र बनाया है। प्रकृति ने यदि अपने नाना रूपों से इन्हें न लुभाया होता तो इनका कवि जीवन गौण ही रहता। ये स्पष्ट शब्दों में इसकी पुष्टि करते है - "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्माचंल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था, और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अत्यन्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"[1] इनके लिए प्रकृति वरदान सिद्ध हुई। क्योंकि माता सरस्वती देवी की मृत्यु और पत का जन्म यह दोनों काम एक साथ हुआ है। एक प्रकार से मां के अभाव की पूर्ति प्रकृति ने ही किया। इस विषय में इन्होंने स्वयं कहा है - "जैसे मां बच्चे को अपनाती है, वैसे प्रकृति ने मुझे अपनाया है। उसने मेरे चंचल मन की आकुल व्याकुलता को जिसे मैं किसी पर प्रकट नहीं करता हूँ, अपने में ले लिया है।...... उसकी एकान्त क्रोड़ में बैठकर मैं अपने को सबसे बड़ा अनुभव करता हूँ, जो अनुभूति मुझे और किसी के सम्मुख नहीं हुई है।"[2] पंत जी के इन विचारों से इस बात की पुष्टि होती है कि इनका पोषण मातृ प्रकृति ने ही किया है। आगे वे कहते हैं - "कौसानी की गोद मुझे मां की गोद से भी अधिक प्यारी रही है।"[3] अच्छे कपड़े पहनना और स्वयं को सुन्दर बनाकर रखना इनका शौक था। नेपोलियन के चित्र को देखकर इन्होंने बाल बढ़ा लिया। साहित्य के प्रति तीव्र अभिरुचि भी इसी का परिणाम है। जहां तक शिक्षा का प्रश्न है, स्कूली शिक्षा का उतना महत्व नहीं रहा जितना कौसानी के प्रकृति का। बच्चों के शिक्षा व विकास के लिये ये प्रकृति को ही अनिवार्य शिक्षक मानते हैं। एक बार आकाशवाणी वार्ता में

इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा - "बचपन में मुझे पुस्तकों से कहीं अधिक चंचल हरियाली ने स्वच्छ नीले आसमान ने सिखाया है। मेरे मन में उसने अपनी स्वच्छता और सुन्दरता की अमिट छाप लगा दी है। मैं बराबर सोचा करता हूँ कि बच्चों को प्रकृति के खुले आंगन में अधिक समय बिताना चाहिए। कवि के रूप में इन्होंने हरी-भरी उपत्यकाओं से सौन्दर्य-दृष्टि व हिमालय से आदर्श ग्रहण किया।"[4]

मातृहीन बालक को प्रकृति ने वरण किया। इनकी मानसिक संरचना में प्रकृति की अपूर्व भूमिका है। प्रकृति ही उनकी मा, सहचरी, सखी, धात्री काव्य प्रेरणा व जीवनदात्री रही। पंत की स्वभावगत कोमलता, इनके उच्च सस्कारों का परिणाम है। पंत को प्रभावों का कवि कहा जा सकता है। उनका मन मस्तिष्क बाह्य प्रभावों की ओर उन्मुक्त रहता था। गांधी व अरविंद के जीवन दर्शन का प्रभाव इन पर दिखायी पड़ता है। पंत अपने प्रारम्भिक रचनाओं (यानी पल्लव की रचनाओं) में आकाश पर विचरण करते दिखायी देते हैं। उनका कवि मन कल्पना की हिलोरे ले रहा था। इनकी सम्पूर्ण रचनाएं प्रकृति को समर्पित है। परन्तु तद् युगीन परिस्थितियों का उन पर प्रभाव पड़ा क्योंकि देश विषम परिस्थितियों, परतन्त्रता, साम्राज्यवाद से जूझ रहा था। तो वे मुक्त आकाश में विचरण करना छोड़ कर पृथ्वी पर आ गये। उन्होंने यह महसूस किया कि समाज में चलकर हमें कुछ करना चाहिए। फिर उन्होंने सामाजिक विकृतियों को समझा और उसका विश्लेषण किया और इसी का परिणाम है ग्राम्या। ग्राम्या की कविता जीवन से जगमगा उठी है। इसमें ग्राम का यथार्थ, जीवन्त सरल व मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित हुआ है। सन् 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में अंग्रेजों के अत्याचार से कवि-मन क्षुब्ध तथा दुःखी हो गया तो इन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक संघर्ष के साथ-साथ सांस्कृतिक आन्दोलन आवश्यक है। लोकायतन में इसे सफल बनाने का प्रयास इन्होंने किया है। इसमें कवि ने जीवन सत्य को प्रकट किया है। धरती पर दिव्य, सरल और मंगलमय जीवन का आह्वान किया है। वैसे तो पंत को ज्यादा प्रसिद्धि "पल्लव" से मिली है, परन्तु इसके बाद की रचनाएं मनुष्य के सभी क्षेत्रों पर आधारित हैं। इन्होंने शाश्वत् और युगीन् दोनों समस्याओं को ध्यान में रखा है। यह सर्वदेशीय और सर्वयुगीन है, क्योंकि इसमें मानव-जीवन की चिरन्तन और मौलिक समस्याओं का आकलन है। इसका आधार उच्च स्तरीय मानवीय मूल्य है, इसकी पृष्ठभूमि में सुन्दर दार्शनिक और सांस्कृतिक पीठिका है। इनकी कविता

में जहां कल्पना चरम सीमा पर है वहीं, व्यक्तिगत साधना का पवित्र सन्देश भी है। इनकी कल्पना व्यर्थ नहीं हुई है, वह नवीनता का सन्देश देती है।

पंत के कविता काल में आलोचना भी चरम रूप से सामने आ रही थी, इसलिए पंत ने अपने निबन्धों, कथा साहित्य, ग्रन्थों की भूमिका में इस पर विधिवत प्रकाश डाला है। यहीं इनके चिंतन की विशदता स्पष्ट जाहिर होती है। अब हम इनके चिंतन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

(क) दार्शनिक विचार

दर्शन के लिए भारत भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। यहां का प्राकृतिक वर्णन ही कुछ ऐसा है कि यहां दार्शनिक की संख्या कुछ ज्यादा ही है। किसी विदेशी का कथन इस विषय में सत्य ही दिखाई देता है कि भारत का हर व्यक्ति दार्शनिक है। पंत का दार्शनिक विचार उच्च भाव भूमिपर प्रतिष्ठित है। इन्होंने किसी एक दर्शन धारा को अपना अवलम्ब नहीं बनाया है, बल्कि हर जगह से कुछ न कुछ लिया है। इनका विचार है कि जगत में जो कुछ हो उसका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिए। त्याग का आज के हमारे कुत्सित स्वार्थों से भरे जीवन में सबसे बड़ा महत्व है। पंत ने इस भाव को अपनी कविताओं में इस तरह व्यक्त किया है -

> ईशावास्य मिदं सर्व कहते द्रष्टा ऋषि,
> उपनिषद के, जगती में जो कुछ अक्षय है,
> वह भगवत् सत्ता है, जग की निखिल वस्तुएं,
> ईश्वरमय हैं, वही सत्य है सार रूप में[5]।

पंत ईश्वर दर्शन भी सम्भव मानते है और ये संसार को ईश्वर से दूर नहीं मानते है - "वैसे भी मै जगत जीवन से ईश्वर तत्व या परम् चैतन्य तत्व को विच्छिन्न कर आत्मा की अधिभूमि पर साक्षात्कार से प्राप्त सत्य बोध को अर्ध सत्य ही मानता हूं, जैसा मैने उत्तरा, अतिमा, वाणी के प्रगीतों में तथा लोकायतन में और भी पूर्ण रूप से व्यक्त किया है।"[6] उपरोक्त अंश का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि पंत की रचनाओं पर उपनिषद् का भी प्रभाव है। क्योंकि जीवन के प्रति उपनिषद्कारों का दृष्टिकोण स्थिर हो गया था। संसार की असारता, कर्त्तव्य बोध, श्रेय प्राप्ति आदि का सम्यक ज्ञान उपनिषदों से ही प्राप्त होता है। कविवर पन्त आत्मा के विकास पर जोर देते हैं। इन्हें देह पूजा

के संदेश को ही तो दुहरा रहे हैं -

धिक-मैथुन आहार यन्त्र,
क्या इन्हीं बालुका भीतो पर,
रचने जाते हो भव्य अमर,
तुम जन समाज का नव्य तन्त्र ?
मानव जीवन का वर नायक,
वह स्वतन्त्र वह आत्म विधायक।[7]

औपनिषद् ब्रह्म से प्रभावित होकर पन्त ने ब्रह्म को भव्य और विराट दोनों रूपों में बताया है -

अहे अनिर्वचनीय। रूप धर भव्य भयकर
इन्द्रजाल सा तुम अनन्त में रचते सुन्दर।[8]

इन्होंने जीवन को ब्रह्म की कोटि में रखा है। तथा जीवन का दो पक्ष लिया है। एक अस्थिर दूसरा शाश्वत। आज के कटु जीवन में आशा को प्रवाहित किया है। पल्लविनी में इन्होंने इस विषय में अपना मत व्यक्त किया है - "ब्रह्मानंद के मोह अथवा ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास के कारण ही छायावादी कवि उच्चादर्शो तथा संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शो का प्रेमी बना।[9] इनका मत है जीवन विराट भव्य और महान है। सुख-दुख की दीवारों से परे भी उसका अस्तित्त्व सम्भव हो सकता है। ये ससार ब्रह्म से उत्पन्न है। जीव को साक्षात ईश्वर या ईश्वरांश मानते हैं -

तुम जीवों में ही हो ईश्वर।[10]

यहां पर कवि मुंडक-उपनिषद् से प्रभावित है।[11]

उपनिषदों के साथ-साथ इनकी कविता पर वेदों का भी स्पष्ट प्रभाव है। प्रकृति के माध्यम से असीम शक्ति का परिचय इन्हें प्रारम्भ से ही प्राप्त हो गया था। प्रकृति के समीप रहकर इन्होंने पहले अपने हृदय और मस्तिष्क का विकास किया और पुनः मानव भविष्य के सम्बन्ध में अपनी दृढ धारणाओं को काव्य के माध्यम से व्यक्त किया। प्रकृति तथा प्रकृति के नियन्ता के प्रति जिज्ञासा, सन्देह और आश्चर्य के भावों से लेकर ईश्वर के अस्तित्व तक की धारणा वैदिक ऋषियों ने की है। दर्शन का उदय जिज्ञासा से होता है। और इस भाव को पन्त ने कई जगह व्यक्त किया है। मौन निमन्त्रण कविता इसका स्पष्ट उदाहरण है। असीम शक्ति का परिचय पाने के लिए जहां ये उद्वेलित होते हैं, वहां इन्हें उसका परिचय विश्व नियन्ता की मंगल विधायिनी शक्ति के रूप में मिलता है -

न जाने मुझे स्वप्न में कौन

फिराता छाया जग में मौन।[12]

जहां ऐकेश्वर की धारण स्थिर होने पर वैदिक ऋषि कहता है -

सुपर्ण विप्राः कवयोर्वचोभि-

रेक सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।[13]

पन्त इसी भाव को इस प्रकार प्रकट करते हैं -

एक ही तो असीम उल्लास

विश्व में पाता विविधाभास।[14]

ईश्वर एक व्यापक शक्ति है। वेदों में कर्मवाद की आम चर्चा हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी ब्रह्म की विस्तृत व्याख्या है। आरण्यकों में भी ब्रह्म का स्पष्ट स्वरूप दिखाई पड़ता है। इन सब की अमिट छाप पंतके काव्य में दिखाई पड़ती है। पंत ने गीता के कर्मवाद का भी सहारा लिया है। इनकी शक्ति पक्ष का निर्माण गीता के सहारे ही हुआ है। चिदम्बरा की भूमिका में इन्होंने स्पष्ट किया है - "पदार्थ (मैटर) चेतना को मैने दो किनारों की तरह माना है, जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित होता है।"[15] यानी पंत ने चेतना का आदि और अंत माना है। इसे ही जीवन का सत्य सिद्ध कहते हैं। यही बातें भगवान कृष्ण ने गीता में भी कही है। अपने धर्म के लिए मरना भला है, किन्तु उससे विरक्त नहीं होना चाहिए। यहां पर धर्म का अर्थ कर्म व कर्त्तव्य से है। कर्म की दृढ़ता स्थापित करने के लिए कृष्ण ने अर्जुन से कहा है -

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्य कर्तार मव्ययम्।[16]

यहाँ यह दिखायी पड़ता है कि भगवान ने वर्णाश्रम धर्म को नहीं प्रोत्साहित किया है। यहां यही दिखाना उचित है कि गीता का कर्मवाद कितनी सुदृढ भित्ति पर खड़ा है। पंत के काव्य पर गीता के कर्मवाद की स्पष्ट छाप है और कर्मों को ही प्रधानता दी है -

भव रूप कर्म को करो समर्पित।

प्रथम कर्म कहता जन-दर्शन

पीछे रे सिद्धान्त मन वचन।"[17]

पंत काव्य पर बौद्ध दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन, गांधी, रवीन्द्र व विवेकानन्द का भी प्रभाव

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।[18]

इस प्रकार वेदना और करुणा ये दो मणियां इन्हें बौद्ध दर्शन से ही प्राप्त हुई है। जहा पंत जीवन के साथ जगत को सत्य मानते हैं वही अद्वैतवादी हो जाते हैं। इस विषय में ये स्वयं चिन्तन करते हुए दिखाई देते हैं - "मनुष्य को ईश्वर का स्पर्श पाने के लिए अपना आत्म सस्कार नहीं करना है, ईश्वर तो जीवन की पूर्ण क्षमता है। मनुष्य का मनुष्य के साथ जो सम्बन्ध है उसे उसका संस्कार करना है। मैं राग मूल्यों के नवीन जीवन वितरण में, राग भावना के विकास में तथा उसके नवीन विकसित परिस्थितियों के अनुरूप संस्कार में विश्वास करता है।"[19] वास्तव में पंत गीता, उपनिषद् के बाद सीधे बौद्ध दर्शन से प्रभावित होते है और अद्वैतवादी हो जाते हैं। पंत मार्क्सवाद से भी प्रभावित है। युगान्त और युगवाणी मार्क्सवाद से ही प्रभावित है। मार्क्सवाद में सांस्कृतिक धरातल की बात करना उसके मूल सिद्धान्तों का ही निराकरण है। पंत वर्ग हीन समाज के निर्माण के लिए चिन्तित है -

वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन
पूरित होंगे जनके भव जीवन के निखिल प्रयोजन।[20]

गाधी दर्शन को कुछ पाश्चात्य विचारक शुद्ध दर्शन नहीं मानते। गांधी को सामाजिक नेता मानते हैं। विवेकानन्द, टैगोर व अरविन्द के विषय में भी ऐसा मानते हैं। ये गाधी को राजनीतिक नेता, टैगोर को कवि, विवेकानन्द तथा अरविन्द को क्रमशः धार्मिक व आस्थावादी मानते हैं। इनके सम्मान का कारण दर्शन नहीं है। पन्त ने गाधीवाद को मानवता का नया मापदण्ड और मनुजोचित नव-संस्कृति कहा है -

गांधीवाद जगत में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण।[21]

ऐसे हम कह सकते हैं कि पंत गांधी दर्शन की अपेक्षा गांधी व्यक्तित्व से प्रभावित थे। विवेकानन्द ने तो सब धर्मो के श्रेष्ठ तत्वों का आदर किया है। वे हिन्दू मुस्लिम देवता को अलग-अलग नहीं मानते हैं। वे सब देवताओं में ब्रह्म की ही सत्ता स्वीकारते हैं। इन्होने मानवतावाद पर बल दिया है, और पंत भी इसे विश्वास में लेते है। इन्होंने इस विषय में कहीं चिन्तना नहीं की है। पंत पर टैगोर का कम, अरविन्द का ज्यादा

प्रभाव पडा है। क्योंकि प्रकृति को अरविन्द ने बहुत ऊँचा स्थान दिया है। युगवाणी से लेकर अन्त तक वे अरविन्द दर्शन से प्रभावित थे। युग उपकरण कविता में उनकी कामना है

यह संस्कृति नव मानवता की जिसमें विकसित भव्य स्वरूप।[22]

इनकी स्वर्ण किरण व स्वर्ण धूलि भी अरविन्द दर्शन से पूर्ण प्रभावित है। पन्त के काव्य में भारतीय दर्शन की प्राय: सभी विशेषताए पायी जाती हैं। क्योंकि उच्च संस्कृति के निर्माण में वही सहायक है। वास्तव में दर्शन की शोभा इसी में है कि वह जीवन की गुत्थियों को सुलझाये और दर्शन के ये दृष्टिकोण विश्व संस्कृति को ठोस रूप दे सकते है। आधुनिक दार्शनिक अपने विचारों में अत्यन्त उदार रहे हैं। इस विषय में ये स्वयं लिखते हैं - "जड़ और चेतन के तटों के बीच में बहने वाली जीवन की अविराम अक्षय धारा को मैं दोनों का अन्त: समन्वित सत्य ही नहीं मानता। जीवन के विकास के लिए ही उन दोनों की उपयोगिता या सार्थकता भी मानता हूँ। यह तर्क सम्मत दार्शनिक दृष्टि भले ही न हो पर दर्शन से मेरा मन अधिक महत्त्व जीवन के सहज बोध को ही देता रहा।"[23] पन्त बचपन से सौन्दर्य वादी थे इनका यह दृष्टिकोण पूर्ण मानवतावादियों से काफी मेल खाता है। दैवी गुणों के प्रति वे पूर्ण आस्थावान है। एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए वे सतत् चिन्तित है -

विश्वास असद् सद् का विवेक
दृढ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय,
मानव का मानव पर प्रत्यय
परिचय मानवता का विकास।[24]

इस मानवतावादी दृष्टि को इन्होंने संस्कृति व अध्यात्म के पृष्ठभूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहा है। मानव के बीच जो खाई है उसे पुनर्गठित करना चाहते हैं।

2 नव-संस्कृति के निर्माण की चिन्तना

पंत संस्कृति को देश विशेष से नहीं, अपितु मानव मात्र से जोड़ना चाहते हैं। ये जीवन के स्वर माधुर्य को बनाये रखना चाहते हैं। इनका विचार था कि नव संस्कृति का निर्माण देश व काल की सीमाओं से परे हो। सौन्दर्य का उपासक होने की वजह से हृदय की तमाम शक्तियों को विश्व भर में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। छायावादोत्तर

काल में पन्त-काव्य का संस्कृति प्रधान पक्ष चरम सीमा पर दिखायी देता है। लेकिन उनकी संस्कृति परक चिन्तना प्रकृति के साहचर्य काल से ही सजग थी। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है -

> मैं प्रेमी उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
>
> ××× ××× ××× ××× ××× ××× ×××
>
> नव आशा, नव अभिलाषा मुझे, ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे[25]

संस्कृति उच्चादर्श हर्ष-विमर्ष, उल्लास, नव आशा, नव अभिलाषा, नव जीवन आदि शब्दों द्वारा उन्होंने आस्थामय दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। कवि विश्व के लिए कैसा नया जीवन चाहता है, यह स्वतः स्पष्ट है। रश्मि बध में इस विषय में ये प्रकाश डालते हैं - "छायावादी कविता ने सोई हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में रागात्मकता की माधुर्य ज्वाला नवीन जीवन दृष्टि सौन्दर्य बोध तथा नवीन विश्व मानवता के स्वप्नों का आलोक उड़ेला। विश्व बोध के व्यापक आयाम, लोक-मानव की नवीन आकाक्षाएं, जीवन प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत अहंता के मांसल सौन्दर्य का परिधान उसने पहले पहल हिन्दी कविता को प्रदान किया।"[26] पंत का सारा काव्य ही सांस्कृतिक काव्य है।

कवि के उच्चादर्शों के पीछे कोरी कल्पना के साथ-साथ आदर्शों का आडम्बर भी नहीं है। सामाजिक गतिविधियों से वे दूर नहीं है। समाज में उच्च आदर्शों की स्थापना के लिए सतत प्रयत्नशील है। पंत पूर्ण परिष्कृत रुचि के व्यक्ति हैं, उन्हें जीवन के कुरूप चित्रों की कल्पना अच्छी नहीं लगती। संस्कृति पन्त के लिए एक व्यापक शब्द है। वे ऐसी संस्कृति का निर्माण करना चाहते थे, जिसमें घृणा, द्वेष, अहंकार, अन्ध विश्वास, जाति भेद, वर्ण भेद, धर्म भाषा तथा जाति अभिमान के लिए कोई स्थान न हो। उनकी अपनी एक पृथक संस्कृति है, जो भारतीय संस्कृति से अलग परन्तु उससे भी महान है। उत्तरा की भूमिका में वे इस विषय में कहते हैं - "मै लहर के साथ-साथ भीतर के क्रान्ति का भी पक्षपाती हूं। आज हम बाल्मीकि तथा व्यास की तरह एक ऐसे युग शिखर पर खड़े है जिसके निचले स्तरों में धरती के उद्वेलित मन का गर्जन टकरा रहा है और ऊपर स्वर्ग का प्रकाश, अमरों का संगीत तथा भावी सौन्दर्य बरस रहा है। ऐसे विश्व-

संघर्ष के युग में सांस्कृतिक सन्तुलन स्थापित करने के प्रयत्न को मैं जागृत चैतन्य मानव का कर्त्तव्य समझता हूं।"[27]

पंत के सस्कृति प्रदेश में विज्ञान का प्रवेशतबतक वर्जित है, जब तक वह संहारात्मक-विनाशात्मक कार्यो में संलग्न है। समन्वयात्मक दृष्टिकोण को कवि ने युगवाणी में अधिक स्पष्ट किया है। नव संस्कृति कविता में वे लिखते हैं -

रूढि रीतियां जहां न हो आराधित,
श्रेणि वर्ग में मानव नहीं विभाजित।
ऐसा स्पर्श धरा में हो समुपस्थित,
नव मानव-संस्कृति किरणो से ज्योतित।[28]

कवि बुद्धि और हृदय का सुन्दर मेल कराना चाहता है। हृदय की शक्ति को बुद्धि से ज्यादा महत्त्व देता है। क्योंकि उच्च संस्कृति का निर्माण हृदय की उर्वरा भूमि में ही हो सकता है। मानव जीवन में कवि की पूर्ण आस्था है। जीवन चिरन्तन है, सत्य हैं। वह ईश्वरीय शक्ति का प्रति रूप है। सत्य का ही दूसरा रूप ईश्वर है। ईश्वर को वह रूढ़ि के अर्थ में नही लेता, अपितु व्यापक सत्य के रूप में देखता है। इसीलिए नये क्षितिज की खोज करना चाहता है। इस विचार को कवि यों प्रकट करता है - "मनुष्य जाति के भाग्य का रथ-चक्र जड़वाद के गहरे पंक में धंस गया है। शासक-शासित धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षितों के बीच बढ़ते हुए भेद-भावों की दुरन्त खाई मानव सभ्यता को निगल जाने के लिए मुँह बाए हुए है। मनुष्य के आत्मज्ञान का श्रोत अनेक प्रकार के भौतिक वाद-विवादों के मरू में लुप्त हो गया हैं।"[29]

जब भारत में आत्मवाद की धूम मची थी तो मनुष्य के कल्याण के लिए एकजुट होकर प्रार्थना की जाती थी, लेकिन आधुनिक युग में जब आत्मवाद का स्वर दब गया तो आसुरी प्रवृत्तियां, कुत्सित विचारों वाले तथा स्वार्थान्ध मनुष्यों की भरमार हो गयी। जीवन की भयंकर विषमता ने संस्कृति की जड़े हिला दी। संस्कृति और ईश्वर को कवि व्यापक रूप से देखता है। कवि कल्पित नव संस्कृति मानव मात्र के लिए परम उपयोगी है। और ईश्वर मन को नियंत्रित, संयत, संस्कृति और विश्वास युक्त बनाने वाला एक शक्ति पुंज है। इसे हम देश या धर्म के चहारदीवारी में नहीं बांध सकते। संस्कृति और ईश्वर दोनों के साथ कवि नवीनता भी लाना चाहता है। विकास और ज्ञान के हर नये क्षितिज का कवि हार्दिक स्वागत करना चाहता है। विज्ञान अनेको तरह से विकसित हो

कि संसार से जब मानव की शक्ति व विश्वास खत्म हो जायेगा तो विश्व का कल्याण असंभव है। कवि का कथन है -

विश्वास चाहता है मन
विश्वास पूर्ण जीवन भर
××× ××× ×××
दुख के तम को खा खाकर
भरती प्रकाश से वह मन।[30]

दुख आत्मा का मुख्य आहार है। इससे आत्मा निखर उठती है। सुखों से निश्चेष्ट पड़ी रहती है। सुख की अति से जड़वाद उत्पन्न होता है। आत्म शक्तियों का उद्‌बोधन आवश्यक है क्योंकि एक बार वे उद्‌बोधित हो जाय तो विश्व में अपनत्व छा जाय -

रच जीवन की मूर्ति पूर्ण तम
स्थापित कर जग में अपना पन।[31]

कवि इसीलिए आत्मवाद की शक्ति को पुनः स्थापित करना चाहता है कि संस्कृति जड़वाद से दूर हटकर पृथ्वी में लहलहा उठे। ज्योत्स्ना में कवि का विचार है - "मनुष्य जाति अपने ही भेदों के भुलावे में खो गई है। इस अनेकता के भय को आत्मा की एकता के पास में बांध कर समस्त विभिन्नता का एक विश्व जनीन स्वरूप देकर नियंत्रित करना होगा। अनियंत्रित प्रकृति विकृत मात्र है।"[32] आत्मवाद के साथ-साथ कवि जीवन में सुखों के निस्संग स्वरूप को लेता है। और जीवन को आत्मामय बनाना चाहता है। कवि का विचार है कि मानव जीवन सुखों से आबद्ध न रहे। अनासक्ति व आसक्ति एक दूसरे के पूरक बने रहें। कवि कहता है -

निष्कंप शिखा-सा वह निरूपम, भेदना जगत जीवन का तम
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र वह सम।[33]

पंत का सांस्कृतिक विचार मानव हितों में समाया हुआ है। कवि कल्पित संस्कृति को यदि ठोस रूप दिया जाय तो विश्व की बड़ी-बड़ी समस्याएं स्वतः सुलझ जायेंगी।

सामाजिक विचार

पंत की सामाजिक चेतना प्रबुद्ध है। समाज के हर पहलू का अध्ययन उन्होंने निकट से किया है। जीवन के सुखो-दुखों से वे पूर्ण परिचित हैं। प्रकृति प्रेम व सौन्दर्य के वैयक्तिक, एकांत, हृदयावेग की अभिव्यक्ति के बाद पल्लव के परिवर्तन से जीवन

के यथार्थ की ओर अभिमुख होने लगते हैं। पल्लव के मुग्ध कैशोर्य, आत्म केन्द्रित भावावेश एवं आकुल तन्मय अभिव्यक्तियों में पत के अनुसार उनका - "विचारों का मन जागृत नहीं था, केवल भावों का मराल मुखर था।"[34] लेकिन जब विचारों का मन जागृत हुआ तो काव्य का समूचा तन्त्र चिन्तन-प्रधान अभिव्यक्तियों से झंकृत होने लगा। परिवर्तन में अंकित मानव जीवन के दु:ख दैन्य के बीज अधिकतर इनकी पुरातन रूढ़ि रीतियों तथा मध्ययुगीन सामाजिक व्यवस्था में है। इनकी रचनाओं में आत्म-निर्माण व परिष्करण का नगा कम गुंजन और ज्योत्स्ना में नवीन युग प्रभात के रूप मिलने हैं। इसके बाद युगांत में चिंतन की भाव भूमि दृढता विन्यास लिये हुए दिखाई पड़ती है। लेकिन ग्राम्या और अतरा तथा लोकायतन एवं अन्य परवर्ती काव्यों में पंत का चिंतन सर्वत्र मानव जीवन के उन्नयन की ओर उन्मुख हो रहा है। इन्होंने सर्व जन की मुक्ति में ही आत्म मुक्ति देखी है। सर्व जन हिताय में ही स्वान्त: सुखाय की भूमिका निर्मित की है। इस प्रकार पल्लव के बाद की रचनाओं में पंत का सामाजिक चिंतन उत्तरोत्तर आगे बढ़ा है। पंत जी के शब्दों में - "ग्राम्या के भाव पक्ष में - जिसे मैने कोरी भावुकता से बचकर सहानुभूति पूर्वक मान्यताओं के प्रकाश में संवारा है- लोक जीवन के कलुष पंक धोने के लिए नव मानव की अन्तार प्रकार है।"[35]

'यदि हम सौन्दर्य के प्रकृति वैभव व मधुर निष्छल भावावेगों के उस अथाह लहराते विचारों को देखें तथा परिपूर्ण क्षणों के अन्तरंग स्वर में डूबे उस काव्य-क्षितिज पर ध्यान दें जिसमें कि पंत का कवि खोया हुआ था तो ग्रन्थि से लेकर पल्लव तक के भाव पट पर मूर्त्त प्रकृति चित्रों व अमूर्त भाव-विम्बों के अंकन में लगा हुआ था। तब हमें यह समझते देर नहीं लगेगी कि फुफकारता, ललकारता जीवन यथार्थ कवि के चतुर्दिक कितना प्रभावी रहा होगा और उसके विषैले दंशों में कितनी मूर्च्छना रही होगी। क्योंकि उसकी अनुभव परिधि में पंत यदि एक बार आ गये तो पुनः अपने एकांत सौन्दर्य लोक में वापस नहीं लौट सके। वैसे भी वापस होने की प्रवृत्ति पंत में दिखाई नहीं देती।

पंत लिखते हैं - "अपने भीतर मुझे अधिक नहीं मिला।"[36] यहीं अपने भीतर से बाहर की ओर उन्मुख होने की प्रक्रिया ही उन्हें व्यक्ति से व्यक्ति के स्तर पर ले जाती है। संसार की नित्य, क्षण भगुर, स्वार्थ बद्ध, क्रिया कलापों में अनित्यता, शाश्वतता

एवं परमार्थ का विचार ही उन्हें युग बोध से जोड़ता है। और यही युग बोध आत्म-बोध बनता जाता है। अपने इस प्रेरणा सूत्र को पंत विभिन्न जगहों पर स्पष्ट करते हैं -

1 "मुझमें यह दृष्टिकोण §यथार्थ का आग्रह§ परिवर्तन प्रेम के कारण नहीं किन्तु भावनात्मक आवश्यकता के कारण ही संभव हो सका।"[37]

2 "मेरी प्रेरणा के स्रोत निःसंदेह मेरे भीतर रहे हैं जिन्हें युग की वास्तविकता ने सींचकर समृद्ध बनाया है।[38]

3. "युगांत तक मेरी भावना में नवीन के प्रति एक आग्रह उत्पन्न हो चुका था। इस नवीन भाव-बोध के सम्मुख मेरा "पल्लव" युग का कलात्मक रूप मोह पीछे हटने लगा।"[39]

इस प्रकार पंत आत्म मनन, व आत्म चिंतन के लिए अध्ययन व युग घटना क्रम के प्रति जागरूक दिखायी देते हैं। ग्रंथि, वीणा, पल्लव आदि की रचनाओं में तो आत्मेतर स्वर सुनाई पड़ता है, परन्तु उसका सम्पूर्ण बहुमुखी विकास ज्योत्स्ना के भावमय वस्तु योजना सेही प्रारम्भ होता है। छायावाद के वैचारिक सौन्दर्यात्मक मंच से उतर कर कवि युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में जीवन के कठोर सत्य की ओर अग्रसर हुआ है। इन्हीं दिनों कल्पना लोक से उतर कर जनसाधारण के कष्टों को समीप से देखा। कवि का विचार है - "मेरे सौन्दर्य-प्रेमी हृदय को गांवों की अत्यन्त दयनीय दुरवस्था को देखकर अनेक बार कठोर आघात भी लगें हैं और मेरा मन (विचार-जगत) क्षुब्ध तथा विचलित होता रहा है। अनेक रूप से मैने अपने व्यक्तिगत तथा लोक-जीवन के अवसाद को उस काल की रचनाओं में वाणी दी है - प्रकृति निरीक्षण, अध्ययन तथा ग्राम-जीवन की विपन्नता का विश्लेषण कालाकांकर के निवास-काल के मेरे प्रमुख जीवन-आलम्ब रहे हैं।[40] युगान्त में श्रमिक जनता की अभाव ग्रस्तता का यथार्थ चित्र देखिये -

ये नाप रहे निज घर का मग
कुछ श्रम जीवी धर डगमगडग
भारी है जीवन, भारी पग।[41]

अब कवि के आंखों के सामने दारिद्रय दुःख एवं अज्ञान के भयानक एवं प्रभावशाली चित्र उपस्थित होते हैं। वह जहां भी दृष्टि डालता है, उसे अत्याचार एवं बल-प्रयोग दिखाई

देते हैं। इन लोगों के आनन्द शून्य जीवन का यथार्थ चित्र कवि ने अपनी रचनाओं द्वारा प्रस्तुत किया है। युगवाणी की "कृषक" शीर्षक रचना में अभागे, शोषित किसान की दीन-हीन दशा का यथार्थ चित्रण किया है -

विश्व विर्वतन शील, अपरिवर्तित वह निश्चल
वही खेत गृह द्वार वही वृष, हंसिया औ हल।
××× ××× ××× ××× ×××
वह संकीर्ण, समूह कृपण, स्वाश्रित पर पीड़ित,
अति निजत्व-प्रिय, शोषित, लुण्ठित, दलित क्षुधादित।[42]

भारतीय सर्वहारा वर्ग अथवा सामान्य जन की असहाय रुग्ण, रूढ़ व दयनीय स्थिति से पंत ग्राम्या से जुड़ते हैं। इस विषय में पंत लिखते है - "ग्राम्या की भूमिका में मैने ग्रामीणों के प्रति अपनी जिस बौद्धिक सहानुभूति की बात लिखी है, उस पर मेरे आलोचकों ने मुझ पर आक्षेप किये है। ग्राम-जीवन में मिलकर उसके भीतर से मैं इसलिए नहीं लिख सका कि मैने ग्राम जनता को रक्त मांस के जीवों के रूप में नहीं देखा है, एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव स्वरूप देखा है और ग्रामों को सामन्त युग के खण्डहर के रूप में।"[43]

यदि यथार्थवादी दृष्टि से देखा जाय तो "ग्राम्या" कवि की प्रमुख कृति है। इसकी अधिकांश रचनाएं यथार्थवादी हैं। ग्राम्या के नायक हैं - सजीव जन। इस संग्रह में हम उन्हें यथार्थपूर्ण प्रतिनिधि के रूप में देखते हैं। "अमिनेष नेत्रों से चारों ओर देख, तथ्यों को कुशलता से छान बीन, कला पूर्ण ढंग से समझ-बूझ और उसका साधरणीकरण कर कवि हमारे सामने जैसे कृषकों के पोर्ट्रेटों की एक प्रभावोत्पादक चित्रशाला ही प्रस्तुत कर देता है।[44] ग्रामों में रहने वाले दीन-हीन, कुत्सा, मलिनता और दरिद्रता से आक्रान्त तथा शोषण से पीड़ित लोग जीवन की परिभाषा को भी लज्जित करने वाले हैं। ऐसे ही ग्राम का चित्र पंत जी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं -

यहां खर्व नर (वानर ?) रहते, युग-युग से अभिशापित
अन्न-वस्त्र पीड़ित, असभ्य, निर्बुद्धि, पंक से पालित।[45]

ग्रामीण जीवन के ऐसे ही दीनतामय चित्र कवि ने "ग्राम बच्चे', 'वह बुड्ढा', 'वे आंखे', 'ग्राम युवती' आदि कविताओं में अंकित किया हैं। 'वे आंखे' में घोर दुःख का मनोविज्ञान से परिपुष्ट और अत्यधिक सशंक चिन्ह अंकित हुआ है। दुःखी मानव की शब्दातीत वेदना

से भरी हुई दृष्टि कवि की आत्मा चीर देती है और वह मुखर हो उठता है -

अन्धकार की अतल गुहा सी
वह उन आंखो से डरता मन।[46]

आँखे दुःखी जनता के दुःख की प्रतिबिम्ब हैं जो दया के लिए मूक प्रार्थना कर रही है। इसी प्रकार "वह बुड्ढा" नामक कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य की अत्यन्त सशक्त एवं भाव परिपुष्ट कविताओं में से है -

खड़ी द्वार पर लाठी टेके,
वह जीवन का बूढा पंजर[47]

ग्राम जीवन के यथार्थ-चित्रों के आधार पर पंत ने सामाजिक कुरीतियों का दिग्दर्शन कराते हुए सामूहिक चेतना तथा विकास का मार्ग दिखाने का प्रयत्न किया है। वर्ग-भेद के कारण पनपने वाले शोषक का चित्रण कवि यों करता हैं -

जाति वर्ण वर्गो में मानव जाति विभाजित,
अर्थ शक्ति से रक्त-प्राण जनगणना के शोषित।[48]

पंत ने अपने काव्य में प्राचीन रूढ़ियों पर प्रहार व स्त्री दशा का भी अवलोकन किया है। उनके अनुसार सामाजिक विषमता, धार्मिक, साम्प्रदायिक वर्ण विषयक तथा अन्धविश्वास और रूढ़िवादी परम्पराएं मनुष्य की स्वतन्त्रता में बाधक है। यह मानव को अलग-अलग कर देती है और उनमें अंध विश्वास और अविश्वास उत्पन्न करती है। इसीलिए वे आह्वान करते हैं -

देश राष्ट्र के विविध भेद हर,
धर्म नीतियों में समत्व भर,
रूढ़ि रीतिगत विश्वासों की
अंध यवनिका आज उठा लो।[49]

मानव के नव-निर्माण के मार्ग में बाधा डालने वाली सभी रूढ़ि गत बातों का पंत जी विरोध करते हैं। उनके अनुसार धार्मिक कट्टरता ही सबसे घातक विष है, जो असंख्य मनुष्यों की चेतना को धुंधला कर देती है। "ग्राम देवता" शीर्षक रचना में वे उस अंध विश्वास का डटकर विरोध करते हैं जो मन की इच्छा शक्ति छीन लेता है, उसके सुखमय एवं स्वाधीन जीवन-यापन में बाधा डालता है। ऐसे "ग्राम देवता" को कवि "तुम रूढ़ि

रीति की खा अफीम लो चिर विराम।"[50] कहकर व्यंग्य करता है।

ग्रामों के रूढ़ि रीति ग्रस्त दैन्य जीवन के साथ ही कवि की दृष्टि नारी की दयनीय एवं अन्धकार हीन दशा की ओर भी गयी है। नारी रक्षा के लिए भी उन्होंने सतत् प्रयास किया। क्योंकि ग्राम जीवन के यथार्थ की विभीषिका से आहत होकर कवि उसकी विरूपता को प्रकट करने के लिए लालायित हो उठता है। यह विरूपता प्रकृति की नहीं बल्कि सामाजिक असंगति की है। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की खोज में निकले कवि के लिए यथार्थ का ऐसा साक्षात्कार निश्चय ही बहुत भयानक रहा होगा किन्तु धीरे-धीरे धरती की इस कुरूपता में छिपे सौन्दर्य को, उस पर कीड़ों से रेंग रहे जन के हृदय को नई दृष्टि से कवि ने देखना आरम्भ किया। इस प्रकार धरती के सौन्दर्य को मलि करने वाले मानव जीवन के यथार्थ से आहत होकर भी कवि धरती से टूटता नहीं, उसक वैषम्य को दूर करने के लिए लालायित हो उठता है। जीवन के यथार्थ-बोध में नारी के प्रति दृष्टि-परिवर्तन भी सम्मिलित है। नैतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से पंत जी अपनी चिर जीवन संगिनी नारी को स्वतन्त्र कराने के लिए आह्वान करते हुए नर प की दास्य पूर्ण निर्भरता की निन्दा ही नहीं करते अपितु इस बात पर दुःखी होते कि नारी समाज की एक अधिकारहीन सदस्य मात्र है। आधुनिक नारी कविता में दिखाया गया है कि किस बुर्जुआ समाज में नारी कलुषित व क्रीड़ा की वस्तु बन जाती है। "अपने प्रसाधन युक्त सौन्दर्य से नर को मुग्ध करने के लिए पशु-पक्षियों के चर्म, पंखों आदि को वह प्रयोग में लाती है, सारी आधुनिक संस्कृति जैसे उसने चूस ली है... पर यह सब होते हुए भी उसका सौन्दर्य अल्पजीवी है, चमक-दमक ने उसकी आत्मा को विषाक्त कर दिया है। प्रेम, दया, स्नेह, मार्मिकता उसके लिए दूर की वस्तुएँ है। वह तो एक रंग-बिरंगी तितली है जो रस की खोज में एक पुष्प से दूसरे के पास भटकती रहती है अथवा एक सुन्दर निश्चिन्त मनायक्षिणी है"[51]... उनके विचार में सामुदायिक श्रम नारी को अपने आन्तरिक गुणों को विकसित करने व स्वाधीनता प्राप्त करने का बहाना मात्र ही है। यानी कर्मगत, विचारगत तथा भावनागत खुले पन में, सहजता में ही नारी स्वतन्त्र हो सकती है। मजदूरनी के प्रति कविता में यही भाव है। फूल भरे जूड़े, अधखुले वक्ष और खिसकते घूंघट वाली पुरुषों के साथ मुक्त रूप से हंसती-बतियाती काम करती मजदूरनी

स्त्री नहीं "मानवी" है। नारी स्वातन्त्रय की आवाज कवि नैतिक स्तर पर उठाता है। पुरुष के सम्मुख नारी की दासता की वह निन्दा करता है और युग-युग से चली आयी अन्यायपूर्ण और नारी की अधिकारी हीनता के विरूद्ध उसके सम्मान एवं समान अधिकार की बात कहता है -

जीवन के उपकरण सदृश,
नारी भी कर ली अधिकृत,
मुक्त करो जीवन संगिनि को,
जननि देवि को आदृत,
जग-जीवन में मानव के संग
हो मानवी प्रतिष्ठित।[52]

हमारे समाज ने मध्य काल में नारी के महत्त्व को एकदम भुला दिया था। आधुनिक काल के प्रारम्भ तक वही स्थिति रही। पर नारी के प्रति जागरण की भावना तब स्फुटित हो चुकी थी। पल्लव में नारी-उत्थान को व्यक्त करने वाली दो कविताएं है - छाया और नारी रूप। इसमें कवि का ढंग अत्यन्त प्रभावशाली है। "ग्राम्या" में भी अनेक रचनाएं नारी समस्या से सम्बन्धित है। वह मुख्य रूप से भारतीय ग्रामीण नारी की स्थिति का दिग्दर्शन कराती है। ग्राम-युवती, ग्राम-नारी, ग्राम-वधू, स्त्री, आधुनिका मजदूरनी के प्रति आदि रचनाएं विशेष रूप से नारी पर ही लिखी गयी है। सीधी सरल ग्रामीण नारी में वह उच्चतम सौन्दर्य को देखता है। युगवाणी में कवि अपनी "चिर जीवन संगिनी नारी" की स्वतन्त्रता का आह्वान करते हुए पुरुष द्वारा नारी की दासता की निन्दा करता है और उसे मुक्त कराने के लिए आवाज उठाता है -

मुक्त करो नारी को मानव
चिर-वन्दिनी नारी को।[53]

इस प्रकार मानव के विकास में बाधा डालने वाली प्रत्येक वस्तु का पंत जी विरोध करते हैं। वे कहते हैं - "अतीत अभी भी सांप की तरह हमारे पैरों के नीचे रेंग रहा है। यद्यपि उसके मुंह से विषैला दांत निकाला गया है, फिर भी अभी वह बहुत खतरनाक है।"[54] पंत अतीत को विगत युगों के शोषक, रूढ़ि, जर्जर समाज के सड़ांध फैलाते कचरे के रूप में लेते हैं जो पानी के प्रवाह को अवरूद्ध करता है, बदबू, गंदगी और प्राण घातक रोग फैलाता है।

पंत का चिंतन अपने आप में कई भिन्न व मौलिक तत्व समेटे हुए हैं। वे क्रान्ति चाहते हैं, किन्तु सांस्कृतिक भूमि पर। टैगोर की तरह मात्र सांस्कृतिक क्रम-विकास में क्रान्ति की स्वयंमेव अवधारणा पर विश्वास करते हैं। यह राजनीतिक व आर्थिक सिद्धान्तों व प्रयोगों से परे की चीज हैं, यह अपने आप में शक्तिशाली विकास-प्रक्रिया लिये हुए है, क्योंकि इसे कोई हिंसावादी विनाशवादी दृष्टि नहीं रोक सकती। यह वस्तुतः उस युग में प्रसारित रवीन्द्र नाथ ठाकुर, स्वामी विवेकानन्द एवं अन्य लोक नेताओं, मनीषियों का समन्वित प्रभाव है, जो धार्मिक कट्टरता, रूढिवादिता एवं जर्जर नैतिकता का विरोध कर वृहद स्तर पर अंग्रेजी शासन के दमन चक्र से मुक्ति के लिए एक समन्वित विश्व धर्म व विश्व संस्कृति का आयोजन कर रहा था। इस प्रकार यह मानव चेतना को जकड़ने वाले शोषण के प्रत्येक रूप के प्रति विद्रोह का रचनात्मक संगठन था जिसे इन्होंने प्रतिध्वनित किया। किन्तु इसमें सब कुछ ध्वनि की प्रतिध्वनि ही नही बल्कि अपना बहुत कुछ सन्निहित है, जो उनकी नारी विषयक भविष्य, कामना व कल्पना से स्पष्ट है।

4. प्रकृति के साहचर्य का महत्त्व

कृत्रिम जीवन के शुष्क क्षणों में विशुद्धता और मौलिकता की अलग ही पहचान है। विशेष कर इस युग में जब हमारी भावनाएं कृत्रिमतासे प्रभावित है। तब हमें प्रकृति अपने निश्चल व्यापारों से मोहित करती है, प्रकृति का हर कार्य व्यापार, प्रकृति का हर रूप हमें प्रेरणा का अपूर्व बल देता है। प्रकृति में त्याग, कर्मठता, परस्पर सौहार्द और नियमबद्धता तथा निष्कपटता जितनी विद्यमान है उसका सहस्रांश भी जीवन में नहीं। कवि का सारा जीवन ही प्रकृति के साहचर्य में बीता है। कवि ने स्वयं व्यक्त किया है - "प्रकृति निरीक्षण से मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है, कहीं उससे विचारों की भी प्रेरणा मिली है। प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैने अपनी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिवास पहना दिया है।"[55] कवि प्रकृति के मोह को किसी भी कीमत पर त्यागना नहीं चाहता। प्रेयसी के बाल-जाल में फंस कर वृक्षों की शांति प्रदायिनी छाया को नहीं छोड़ना चाहता -

> छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
> बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन।[56]

पंत का जन्म व मां की मृत्यु ये दोनों घटनाएं एक साथ घटित हुई। मां के इस अभाव की पूर्ति प्रकृति ने की। बालक पंत का पोषण मातृ प्रकृति ने ही किया। प्रकृति का इतना निकट साहचर्य इन्हें प्राप्त हुआ, यह उनकी रचनाओं द्वारा स्पष्ट होता है - "कौसानी की गोद मुझे मां की गोद से भी अधिक प्यारी रही हैं।"[57] इस प्रकार प्रकृति ने उन्हें पूर्ण रूपेण अपना लिया था और कौसानी का प्राकृतिक सुषमा से पूर्ण-प्रांगण ही पंत का वास्तविक घर था। "आत्मिका" नामक कविता में वे व्यक्त करते है -

आरोही हिमगिरि चरणों पर

रहा ग्राम वह वह मरकत मणि कण

श्रद्धानत, आरोहण के प्रति

मुग्ध प्रकृति का आत्म समर्पण।[58]

प्रकृति का यह रहस्यमय सौन्दर्य पंत के किशोर मन को मात्र मुग्ध कर देता है और उन्हें असीम आनन्द की अनुभूति होती है। "यह आत्म विस्मरण ही प्राकृतिक सौन्दर्य का बोध या नैसर्गिक आनन्द था। यही एक मात्र सत्य था जिसका वे घण्टों निर्निमेष पान किया करते।"[59] स्वयं पंत का कथन है - "मेरे प्रबुद्ध होने से पहले ही प्राकृतिक सौन्दर्य की रहस्य भरी अनेकानेक मोहकता अनजाने ही एक के ऊपर एक अपने अनन्त वैचित्र्य में मेरे भीतर जैसे जमती गयी।"[60] प्रकृति साहचर्य ने पंत को इतना अधिक प्रभावित किया कि आज हिन्दी साहित्य में वे प्रकृति और सौन्दर्य के अद्वितीय कवि माने जाते हैं। प्रकृति ने ही उन्हें आत्म तुष्टि प्रदान की जो सदैव के लिए आत्म-सम्बल बना। उनके मानसिक, भाविक, बौद्धिक और आध्यात्मिक जीवन का संरक्षण प्रकृति ने स्वयं किया। प्रकृति की क्रोड़ में उन्हें आत्म-बल, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और काव्य प्रेरणा मिलती रही। कविता करने की प्रेरणा पंत को सर्वप्रथम प्रकृति से ही मिली।

प्रकृति के साहचर्य के साथ-साथ समाज के साहचर्य की भी आवश्यकता है। निःसन्देह प्रकृति साहचर्य हमारे जीवन को निष्कलुष बनाता है, परन्तु सन्तुलन बनाये रखने के लिए समाज साहचर्य भी अत्यन्त आवश्यक है। दोनों के समन्वय से ही जीवन का विकास सम्भव है। प्रकृति साहचर्य की अति ने जहां एक ओर कवि को प्रेरणा का अपूर्व बल दिया दूसरी ओर उसमें समाज-भीरू होने का भाव भर दिया। कवि अपनी

कमजोरी स्वयं स्वीकार करता है - "प्रकृति के साहचर्य ने जहां एक ओर मुझे सौन्दर्य स्वप्न और कल्पना जीवी बनाया, वहां दूसरी ओर जन-भीरू भी बना दिया। यही कारण है कि जनसमूह से अब भी दूर भागता हूँ। और मेरे आलोचकों का यह कहना कुछ अंशों तक ठीक ही है कि मेरी कल्पना लोगों के सामने आने में लजाती है।"[61] लेकिन कवि का सौन्दर्यवादी विचार प्रकृति के साहचर्य में ही परिपक्व हुआ। जीवन की अस्थिरता और विद्रूपता का अध्ययन करने के बाद प्रकृति का उग्र रूप "परिवर्तन" कविता में दिखाया है। कवि का कथन है - "साधारणतर प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है, पर उसका उग्र रूप भी मैने "परिवर्तन" में चित्रित किया है। मानव स्वभाव का भी मैने सुन्दर ही पक्ष ग्रहण किया है, इसी से मेरा मन वर्तमान समाज की कुरूपताओं से कट कर भावी समाज की कल्पना की ओर प्रभावित हुआ है। यह सत्य है कि प्रकृति का उग्र रूप मुझे कम रचता है यदि मै संघर्ष प्रिय अथवा निराशावादी होता तो नेचर रेड इन टूथ एण्ड क्ला वाला कठोर रूप जो जीव विज्ञान का सत्य है, मुझे अपनी ओर अधिक खींचता।"[62]

कवि के कथन से कई बातें स्पष्ट हो जाती है। सर्वप्रथम कवि के लिए प्रकृति का साहचर्य परम आवश्यक सा हो गया था। बाहयांतर दोनों प्रकार की परिस्थितियों के कारण कवि जीवन में ऐसा संयोग आया कि वह प्रकृति के ही गोद में अपना मनोवांछित विकास कर सका। दूसरी बात यह है कि कवि आरम्भ से ही आशावादी है। प्रकृति के उल्लास भरे जीवन ने कवि के अर्न्तमन को आह्लादित कर दिया। तीसरे जीवन के विश्रृंखल और विघटनकारी तत्त्वों ने कवि को प्रकृति का उग्र रूप चित्रित करने की प्रेरणा दी। चौथे प्रकृति के माध्यम से कवि का मानवतावादी स्वर मुखरित हुआ। हमारी दृष्टि से कवि की मनोभूमि का विकास प्रकृति के अन्तराल से होता हुआ जीवन की समतल भूमि से उतरा है।

पंत को यदि हम प्रकृति का कवि कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। प्रकृति के अभाव में शायद उसका कवि जीवन गौण रह जाता। वे स्वयं लिखते हैं - "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिला है, जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्माञ्चल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा,

प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"[63] कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन किया और कही प्रकृति को अपने ही भावों की तूलिका के रंग से रंग दिया है -

उमड़ उर के सुरभित उच्छवास!
सजल जलधर से बन जलधार
दिव्य स्वर पा आँसू का तार,
बहादे हृदयोंद्गार।[64]

वीणा काल की रचनाओं में प्रकृति का मोहक व स्वतन्त्र रूप है। कवि ने मानव और प्रकृति के मध्य तारतम्य साथ-साथ स्थापित किया है -

मां! तेरे वो श्रवण पुटों में
निज क्रीड़ा कलरव भर दूं -
उमर अधखिली बाली में।[65]

पन्त प्रकृति का वैविध्य पूर्ण चित्रण करते समय प्रकृति के माध्यम से ही अपने विचारों, आशा और अभिव्यंजनाओं और भविष्य के सुखद स्वप्नों की अभिव्यंजना करते हैं। प्रकृति में चेतना का आरोप करके कवि ने उसके साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया है। इसी कारण प्रकृति उसे अपने दुख में दुःखी और सुख में उल्लासित नजर आती है। सहानुभूति और प्रेरणा का बल कवि को प्रकृति से ही मिला।

5. राष्ट्रीय और मानवतावादी दृष्टिकोण

राष्ट्र प्रेम के अन्तर्गत कवि ने विशेष रूप से भारत माता का गौरवपूर्ण चित्रण किया है और उसके गौरवपूर्ण भविष्य की ओर संकेत किया है। उनकी प्रारम्भिक रचनाएं राष्ट्रीयता के गुणों से युक्त नहीं है, परन्तु युगपथ में उनका राष्ट्र प्रेम परिपक्व होने लगता है। राष्ट्र प्रेम को उन्होंने विश्व प्रेम में परिणित किया है। पन्त चूंकि मानवतावाद की ओर अधिक झुके है।- अतः राष्ट्र प्रेम को भी उन्होंने विशद रूप से देखा है। पंत इसके विषय में रश्मि बंध में विचार करते हुए दिखाई देते हैं - "छायावादी काव्य वास्तव में राष्ट्रीय जागरण की चेतना का काव्य रहा है। उसकी एक धारा राष्ट्रीय जागरण से संबद्ध रही है.... दूसरी धारा का सम्बन्ध उस मानसिक, दार्शनिक जागरण की प्रक्रिया से

रहा है, जिसका समारंभ औपनिषदिक विचारों तथा पाश्चात्य साहित्य और संस्कृति के प्रभावों के कारण हुआ।"[66]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि कवि एक ऐसा भारत चाहता है, जहां जर्जर रूढ़िया और अभिशाप तुल्य अन्ध विश्वास नष्ट हो और नव मानवता का स्वर मुखरित हो जाय -

गा, कोकिल, बरसा पावक कण
नष्ट भष्ट हो जीर्ण पुरातन,
××× ××× ××× ×××
रच मानव के हित नूतन मन।[67]

पन्त ने राष्ट्र-प्रेम सम्बन्धी भावना को स्फुट चित्रों में व्यक्त किया है। भारत माता के गौरव पूर्ण चित्र व राष्ट्र प्रेम के प्रत्यक्ष चित्रण को लीजिए -

हिम किरीटिनी मौन आज तुम शीष झुकाये
सौ बसंत हों कोमल अंगो पर कुम्हलाए।[68]

सत्य और अहिंसा, जिनका जन्म भारत में सर्वप्रथम हुआ अब अन्तर राष्ट्रीय जागरण के मुख्य उपादान बन रहे हैं। गांधी जी के आदर्शो से व्यक्ति आज आलोकित है और उनके जीवन में भारत के भविष्य का स्वप्न पल रहा है। भारत गीत में कवि की भारत माता के प्रति श्रद्धाजंलि है -

प्रथम सभ्यता संस्कृति ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता।[69]

पंत की कविता में राष्ट्रीयता का उत्कृष्ट रूप निखरा है। विश्व की सन्तप्त मानव जाति को यदि कोई जीवन दान दे सकता है तो वह भारतीय संस्कृति है। अतः कवि ने भारतीय संस्कृति के उन तत्वों को विशेष रूप से लिया जो विश्व कल्याणार्थ अत्यन्त उपादेय हो सकते थे।

इस प्रकार पंत ने राष्ट्र प्रेम सम्बन्धी भावना को स्फुट चित्रों में व्यक्त किया है। उनमें भी वे राष्ट्रगत भाव को विश्व-प्रेम के भाव तक विस्तृत करने में प्रयत्नशील हैं।

प्रकृति के कार्य कलापों का निरंतर अवलोकनकरनेपर कवि की चेतना का विशिष्टीकरण हुआ। एक ही चेतना का विश्व व्याप्त रूप उन्हें दिखाई दिया। यही बात है कि प्रारम्भ से ही कवि मानव मात्र के उत्थान की कामना करता हुआ दिखाई देता है। पंत मानवतावाद के सदैव पोषक रहे। मानवतावाद के गन्तव्य की ओर संकेत करते हुए पंत लिखते है - "छायावादी कवियों के सामने आत्म मुक्ति की धारणा तुच्छ होकर भाव मुक्ति, मानव मुक्ति, विश्व मुक्ति तथा लोक मुक्ति की सम्भावना अनेक मूल्यों, विचारों तथा भावनाओं में रूप धर कर उनकी वाणी द्वारा स्वप्न मूर्त होने का प्रयत्न कर रही थी।"[70] प्रणय के ग्रन्थि बन्धन में विश्व की मंगलमयी चाह छिपी मालूम पड़ती है -

ग्रन्थि बन्धन । इस सुनहली ग्रन्थि में,
स्वर्ग की और विश्व की मंगलमयी,
जो अनोखी चाह, जो उन्मत्त धन
है छिपा वह एक है, अनमोल है।[71]

यहां एक बात और प्रकट होती है कि कवि का व्यक्तिगत प्रेम विश्व प्रेम में बदल गया है। उसे अपनी प्रणय लीला की असफलता का इतना मलाल नहीं है वह तो दो दिलों के गठबन्धन से प्रसन्न प्रेम की दुहाई देता है। प्रेम का विश्व व्याप्त रूप कवि इस प्रकार प्रकट करता है -

शैवालिनी । जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल । आलिंगन करो, तुम, गगन को,
चन्द्रिके । चूमों, तरंगो के अधर,
उडुगणों । गाओं, पवन वीणा बजा।[72]

वास्तव में कवि के मन की विचित्र दशा हो रही है। वह द्वैत स्थिति में है। कवि इस पृथ्वी को स्वर्ग समझता है और इस पर रहने वाले मनुष्यों को देवता तुल्य। वास्तव में हमारी दृष्टि का बदलाव ही हमें मानव को राक्षस समझने को बाध्य करता है। हम एक दूसरेकोसही समझे तो बुराइयाँ और पापाचार हमसे कोसों दूर रहेंगे, यह एक ध्रुव सत्य है। पंत का विचार है - "छायावादी कविता ने सोई हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में रागात्मकता की माधुर्य ज्वाला, नवीन जीवन दृष्टि का सौन्दर्य बोध तथा नवीन विश्व मानवता के स्वप्नों का आलोक उड़ेला।"[73] इस प्रकार कवि अपने मानवतावादी दृष्टिकोण को यथार्थ रूप से प्रस्तुत करते हुए नव मानव का अभिनन्दन करता है -

लोक क्रान्ति का अग्रदूत, वर वीर जनादृत

नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक शासित।[74]

पन्त के मानवतावादी दृष्टि कोण पर गांधी जी के मानववाद का प्रचुर प्रभाव रहा है। अपने "बापू के प्रति" रचना में वे देशवासियों एवं समस्त मानवता के लिए स्वतन्त्रता का पथ ढूंढ़ते से प्रतीत होते हैं। नवीन मानवतावादी संस्कृति के निर्माण के लिए गांधी जी के विचार ग्रहणीय है। "युगान्त" तक आते-आते कवि मानव को यथार्थ धरातल पर ले आता है, जबकि गुंजन का मानव इस सत्ता से नहीं सम्पन्न है। जहां "गुंजन" और "युगान्त" में कवि मानव को भाववादी दृष्टि से देखा है, वहीं युगवाणी में जीवन की दरिद्रता, कुरूपता, अपमान, अंधकार, दुःख आदि का यथार्थ चित्रण करता है। "युगवाणी" में मानवतावाद का सक्रियता से दर्शन होता है। कवि पृथ्वी पर नव मानव-संस्कृति से आलोकित मानव-निर्मित्त स्वर्ग की कल्पना करता है -

मुक्त जहां मन की गति जीवन में रति

भव मानवता में जग-जीवन परिणति

संस्कृत वाणी, भाव, कर्म, संस्कृत मन,

सुन्दर हो जनवास, वसन, सुन्दर तन।[75]

कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण समानता पर प्रमुख रूप से आधारित है। किन्तु समानता संघर्ष से प्राप्त होने वाली नहीं, उसके लिए हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है। इस विषय में दीनानाथ शरण लिखते है - "विभिन्न वादों के आन्दोलन में कवि मानवता के नूतन विकास का आभास देखता है। वह जन समुदाय के बीच आ गया है। समय की बहुल समस्यायें उसकी लेखनी का स्पर्श पाकर मुखर हो उठी हैं। कहीं कवि ने पूँजीवाद का विरोध किया है, कहीं साम्यवाद का नारा लगाया है, कहीं नारी स्वातन्त्र्य की आवाज उठाई। कवि ने गांधीवाद से भी कई बातें ली है।"[76] मानवता के नव-जीवन पथ को आलोकित करने वाले मार्क्सवादी विचारों की पंत ने प्रशंसा की है। मार्क्सवाद के अनेक सिद्धान्तों का कथन पंत ने अपनी कविताओं में किया है -

विकसित हो, बदले जब-जब जीवनोपाय के साधन

युग बदले, शासन बदले, करगत सभ्यता समापन।[77]

"ग्राम्या" में भी पंत का काव्य नायक मानवतावादी मनुष्य का प्रतीक है। इसकी प्रायः

सभी कविताओं में नव जीवन एवं उज्जवल भविष्य के विश्वास का स्वर झकृत हुआ है। यह तभी सम्भव है जब जन-जन में प्रेम के भाव जागृत होंगे। उनके अनुसार प्रेम एक ऐसी उच्चतम भावना है जो समस्त विश्व को शासित करती हैं। आज के युग की समस्या इस विश्व-प्रेम के भाव से सुलझ सकती है -

आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थिति,
खण्ड मनुजता को युग-युग की होना है नव निर्मित।[78]

इस प्रकार मानवतावाद का पोषण करते हुए पंत जी ने अपने काव्य में संसार के परिवर्तन के लिए जो आह्वान किया है वह सबसे पहले जनता के हृदय और चेतना में क्रान्ति लाने के लिए प्रयत्नों के रूप में आया है। पन्त पूर्णतः आस्थावादी हैं। वे मानव जीवन के भविष्य के बारे में किंचित भी सशंकित नहीं है। युद्ध की विभीषिकाओं और विनाशकारी अस्त्रों के आविष्कार के बावजूद उनकी आस्था की ज्योति मन्द नहीं पड़ती। पन्त जी एक स्थान पर व्यक्त करते हैं - "मानव समाज का भविष्य मुझे जितना उज्जवल और प्रकाश मय जान पड़ता है उसे वर्तमान के अंधकार से प्रकट करना उतना ही कठिन भी लगता है। भविष्य के साहित्यिक को इस युग के बाद-विवादों, अर्थ शास्त्रों और राजनीति के मतांतरो द्वारा इस संदिग्ध काल के घृणा, द्वेष कलह के वातावरण के भीतर से अपने को वाणी नहीं देनी पड़ेगी। उसके सामने आज के तर्क, संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, स्वप्न, कल्पना सब घुल मिलकर एक सजीव सामाजिकता और सांस्कृति चेतना के रूप में वास्तविक व साकार हो जायेंगे। वर्तमान युद्ध और रक्तपात के उस पार वह नवीन प्रबुद्ध विकसित और हंसती बोलती हुई, विश्व निर्माण में निरत मानवता से अपनी सृजन सामग्री ग्रहण कर सकेगा।[79]

इस प्रकार इन्होंने मानव को विश्व मानव का रूप दिया है, उनकी दृष्टि में मानव समाज समस्याओं से रहित तभी हो सकता है जब भेद-बुद्धि नष्ट हो जाय व नूतन जीवन दर्शन की स्थापना हो।

विश्व ऐक्य की भावना

विश्व ऐक्य की भावना को कवि कई रूपों में प्रकट करता है। दार्शनिक दृष्टि से सर्व चेतनवाद और सर्वात्मवाद से प्रभावित है। इनकी दृष्टि से प्रकृति में चेतना का आरोपण करने से सम्पूर्ण जगत में एक विराट की स्थापना स्वतः हो जाती है। विश्व

मानवों का यह विशाल संगम एक ही शक्ति से प्रचलित है। जीवन शाश्वत और सत्य होने से सारा विश्व एक है -

इस धारा ही सा जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम
शाश्वत है गति, शाश्वत सगम।[80]

जब सारा विश्व एक ही परम सत्ता के आधीन है तो मानव के बीच भेद की दीवारों का निर्माण अकारण ही है। विश्व जीवन में इस कमी की पूर्ति पंत ने अपने संस्कृति परक काव्य के माध्यम से की है।

कवि द्वारा कल्पित संस्कृति को यदि ठोस रूप दिया जाय तो विश्व की बड़ी-बड़ी समस्याएं स्वत. सुलझ जायेगी और विश्व ऐक्य की भावना साकार हो सकेगी। कहीं-काव्य के तो कहीं गद्य के माध्यम से कवि विश्व ऐक्य की भावना कोई ठोस रूप देने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहा है। एक स्थल पर वे व्यक्त करते हैं - "छायावादी कवियों का व्यापक संघर्ष विश्वात्मा तथा नयी मानव आत्मा की अभिव्यक्ति का संघर्ष था। वे उसके लिए नये परिवेश तथा वातावरण का जन्म देने में संलग्न था, जिसकी पीठिका पर नया विश्व जीवन प्रतिष्ठित हो सके।"[81]

छायावाद के स्तम्भ कवि पंत को कल्पना और कोमलता का कवि माना जाता है। परन्तु उनके काव्य में एक ऐसी अर्न्तधारा भी है जिसके पवित्र जल का निर्माण सौन्दर्य वेदना और विश्व कल्याण की त्रिधारा से हुआ है। अन्दर ही अन्दर एक टीस कवि के काव्य में दिखायी देती है जो कहीं समाज व मानव के प्रति आक्रोश के रूप में, कहीं विरहोद्‌गारों के रूप में और कहीं दार्शनिक रूप में अभिव्यक्ति हुई है। क्योंकि कवि सौन्दर्य का पुजारी व परिष्कृत रुचि का धनी है। इसी कारण उसके मन की आग ज्वाला का रूप नहीं धारण कर सकी। पंत सम्पूर्ण विश्व के लिए एक ऐसी संस्कृति की चिन्तना में लीन हैं जो आत्मवाद का दृढ़ संबल लेकर हर युग की हर स्थिति में निभ सके। फलतः नव निर्माण के इस उद्देश्य में कवि को कल्पना का सबसे अधिक सहारा लेना पड़ा। क्योंकि यदि उद्देश्य महान हो तो रास्ता भी नया होना चाहिए। लेकिन परिणाम में उसे पलायनवादी की उपाधि मिली। उत्तर के लिए उनको कहना पड़ा - "छायावादी पलायन वर्तमान की संकीर्ण विघटित होती हुई ह्रासोन्मुखी वास्तविकता से एक नवीन उच्च वास्तविकता की खोज के लिए पलायन था। यदि उसे पलायन कहना आवश्यक ही है तो छायावादी

विद्रोह या क्रान्ति को हम आह्वान कह सकते हैं। वह विश्व मंगल का घोष था। कवि पूरे संसार में मगलमय जीवन के अरूणोदय की प्रतीक्षा में है -

गाता खग प्रात· उठकर, सुन्दर सुखमय जग-जीवन
गाता खग संध्या तट पर मंगल, मधुमय जग जीवन।[82]

सुन्दरं व शिवम् को वह जीवन में एक साथ प्रवेश कराना चाहता है। इस बात को वह स्वयं स्वीकार करतेहैं कि गुंजन में वह पूर्ण रूप से शिवम् का कवि है। गुजन में उसकी विश्व मंगल की कामना कई रूपों में व्यक्त हुई है। और सम्पूर्ण जगत को एक ही सत्ता में देखना चाहता है। उन्हें सँपूर्ण विश्व, चर-अचर सभी प्रिय हैं -

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर
तृण तरू पशु पक्षी नर सुर वर
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर।[83]

इस विषय में डॉ0 भटनागर लिखते हैं - "आज संसार को केवल राजनीतिक आंदोलनों की ही जरूरत नहीं है। उसे एक पृथ्वी व्यापी विराट सांस्कृतिक आन्दोलन की भी जरूरत है। जिस प्रकार हमारे मध्ययुग के दार्शनिकों ने अर्न्तजीवन के सत्य पर ही एक मात्र जोर देकर बर्हिजीवन के सत्य की उपेक्षा की और उसे माया मिथ्या कहकर उड़ा दिया। इस प्रकार से एकांगी दृष्टिकोण का फल चाहे और जो कुछभीहो वह मानव समाज और उसकी सभ्यता के विकास के लिए हितकर नहीं हो सकता।[84]

आध्यात्मिक दृष्टिकोण

पंत का आध्यात्मिक दृष्टिकोण उस युग के परिस्थितियोंकी ही देन थी। उसका विचार था कि मानव जीवनको आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय का प्रतिरूप होना चाहिए। व्यक्ति की समस्याओं को यदि समूचे समाज की समस्या समझा जाय तो कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा। मनोकल्पित समाज केसे ठोस रूप धारण करे इसके लिए उन्होंने उपाय भी बताया है। जिसमें से एक यह भी है कि जीवन का आध्यात्मिक पक्ष मजबूत हो। इस विषय में पंत जी लिखते हैं - "मेरी दृष्टि में भू-जीवन को भावगत जीवन बनाने के लिए हमें कहीं ऊपर नहीं खो जाना है, प्रत्युत जीवन आकाक्षाओं का पुनर्मूल्यांकन कर विगत मूल्यों को अधिक व्यापक बनाना है। निश्चय ही जो आध्यात्मिकता मानव-जीवन के रक्त मांस के उपादानों का बहिष्कार या अवहेलना कर

किसी उच्च जीवन की कल्पना करती है वह जीवन-मगल की द्योतक नही हो सकती। मैने युगवाणी में रूप माग अर्थात संस्कृति शुद्ध जीवन ही को भावगत प्रकाश का उपादान बनाया है।"[85]

इस प्रकार आत्मा परमात्मा के सम्बन्धों को स्थापित करने में रहस्यवादियों ने जो ऊहा पोह किया इसको इन्होंने व्यर्थ समझा। क्योंकि उसकी दृष्टि व्यावहारिक थी, वह इस कठोर धरती पर साँस ले रहा था। जीवन में आध्यात्मिकता लाने के लिए उसने इस सूत्र को अवश्य पकड़ा पर ज्योंही जीवन से विरक्ति की गुजाइश देखी वह फिर धरती की ओर लौट पड़ा। इसलिए इस संघर्ष प्रधान जीवन में कवि अपने दायित्व से कैसे मुंह मोड़ सकता था। पंत जी कहते हैं - "मै छायावादी काव्य को रहस्यवाद की लपटनों से मुक्त कर उसे नये मूल्य के आलोक में उसकी प्रारम्भिक अभिव्यक्ति के रूप में देखने के पक्ष में हूँ।"[86] आध्यात्मिकता को जीवन के साथ समन्वय करने में पत छायावादोत्तर काल में तो बड़े सक्रिय दिखाई देते है, परन्तु सजग पहले से ही थे। ताज कविता में वे लिखते हैं -

भूल गये हम जीवन का सन्देश अनश्वर
मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर।[87]

और इसका आभास तो उन्हें प्रारम्भ में ही हो गया था -

वह मखमल तो भक्ति भाव ये, फैले जनता के मन के
स्वामी जी तो प्रभावान है, वे प्रदीप थे पूजने के।[88]

आज विज्ञान ने हमारे जीवन को शुष्क व नीरस बना दिया है। जीवन के नैतिक मूल्य गिर चुके हैं। मानव, धन संचय की चिन्ता में लगा है, त्याग का महत्त्व वह भूल चुका है। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों की चर्चा युगों से हो रही थी। इसलिए व्यक्तिगत रूप से कवि ने उस पर लेखनी नहीं उठायी। इसलिए कवि ने अपने काव्य में ससीम-असीम का समन्वय किया है। वह ससीम को मानव मानता है तो असीम को महामानव। इसीलिए पंत ने किसी भी वस्तु या प्राणी को उपेक्षा के योग्य नहीं समझा। कवि ने हर क्षेत्र में विशाल दृष्टिकोण अपनाने को कहा है। तथा निर्गुणियों के रहस्यवाद को इन्होंने जीवन में कोई जरूरत नहीं समझी। पंत का विचार है कि जगत में जो कुछ है उसका त्याग पूर्वक उपभोग करना चाहिए। क्योंकि कण-कण में ईश्वर है। दूसरे के धन की

इच्छा नहीं करना चाहिए। वे लिखते हैं -

वह भगवत सत्ता है, जग की निखिल वस्तुएँ
ईश्वर मय है, वही सत्य है सार रूप में।[89]

इस प्रकार पंत जगत् को सत्य मानते हैं और उसे पर ब्रह्म की लीला का विकास मानते हैं। जिस विराट शक्ति की सर्वव्यापकता वैदिक व उपनिषद् काल में थी उसी का अस्तित्व पंत भी स्वीकारते है, परन्तु लोक मंगल के रूप में। इनके आध्यात्मिक चिंतन पर प्रकाश डालते हुए दीनानाथ शरण लिखते हैं - "पल्लव काल के आते-आते कवि अध्यात्म की ओर आकृष्ट हो चला है। कहना चाहिए प्रकृति में कवि को रहस्यमय सत्ता का आभास होने लगा है।[90]

इस प्रकार पंत ने अनेक स्रोतों से प्रेरणा ग्रहण की है। वे दर्शन के क्षेत्र में कई आधुनिक पाश्चात्य भारतीय विचार धाराओं से प्रभावित है। पर इन सब प्रभावों के बावजूद इनकी स्थिति अलग ही थी। ये "बचपन से प्रकृति प्रेमी ही रहे। प्रकृति के ही रूप में उन्होंने अपनी विराट मां का दर्शन किया है। प्रकृति में सर्वत्र सौन्दर्य का साम्राज्य है। इन्होंने ऐसी मानव लोक की भी कल्पना की है जो उच्च सांस्कृतिक धरातल पर प्रतिष्ठित होगा और जहां तमाम भेदभाव नष्ट हो जायेंगे और मानव स्वभाव आदर्श बन जायेगा। इनका मानवतावादी दृष्टिकोण भी काफी उदार है। इसको ही उन्होंने संस्कृति व अध्यात्म के उच्च धरातल पर अधिष्ठित करना चाहा। पंत मूल में सौन्दर्यवादी कवि है। पूर्व और पश्चिम के मेल से उन्होंने नूतन सौन्दर्य दृष्टि खोज निकाली। अध्यात्म की स्थिति वे जीवन के लिए अनिवार्य समझते है। छायावाद को पंत मूल्य निष्ठ काव्य मानते है - "छायावाद व्यक्तिनिष्ठ न होकर मूल्य निष्ठ रहा है। उसका आदर्श विगत युगों की एक दैशिक उदात्तता का अतिक्रम कर विश्वमुखी औदात्य से अनुप्राणित रहा है।"[91] पंत के चिंतन पर अध्ययन करने पर नामवर की यह उक्ति अनायास ही याद आती है - "छायावाद का स्थायित्व उसके व्यक्तिवाद में नहीं, उसकी आत्मीयता में है, काल्पनिक उड़ान में नहीं आत्म प्रसार में है, समाज भीरुता में नही, प्रकृति प्रेम में है, प्रकृति पलायन में नहीं नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा में है..... उक्ति वैचित्र्य में नही, अभिव्यंजना के प्रसार में है।"[92]

इस प्रकार पंत की आध्यात्मिकता अपने उच्च भाव को लेकर प्रकट हुई। और इनकी विचारधारा एक अलग महत्त्व रखती है।

पंत का काव्य और उनका शिल्प-विधान

पत को छायावादी काव्य के स्वरूप का निर्माणकर्ता व रूप निर्णायिक कह सकते है। छायावादी काव्य के अतर्गत पत उसके कला पक्ष के स्वरूप निर्माण की विवेचना में जितने सफल रहे उतना उसके भाव लोक की विवेचना में नहीं। छायावादी विवेचना के रूप में उनका मुख्य प्रदेय काव्य कला की नवीन अभिव्यक्ति ही है। डॉ0 नगेन्द्र लिखते है - "छायावाद में कला की यत्नज और अयत्नज दोनों प्रकार की शोभा का उत्कर्ष मिलता है। इस उत्कर्ष में सबसे अधिक योगदान पंत का है। उनमें छायावाद की मणि कृत्रिम कला का अपूर्व वैभव है। वामन की वैदर्भी रीति और उनके समग्र गुणों की सम्पदा पंत जी के काव्य से अधिक और कहाँ मिलेगी। पद-रचना सौन्दर्य पत की कला की विशेषता है।"[93] इसलिए हम कह सकते है कि पंत का काव्य शिल्प प्रगति और प्रबन्ध की मिश्र चेतना से अग्रसारित हुआ है। छायावाद कला का स्वर्ण युग है - इसमें पंत की प्रगीत साधना का गुण और परिणाम दोनों परिलक्षित है। भाषा काव्य-शिल्प का महत्त्वपूर्ण अंग है क्योंकि यही साहित्यिक अभिव्यक्ति का एक मात्र साधन है। इसके अन्तर्गत शब्द-समूह महत्त्वपूर्ण है और शब्द-समूह की रूप रचना पर काव्य भाषा का स्वरूप निर्भर है।

भाषा

पंत ने अपने काव्य-भाषा में खड़ी बोली की जो नवीन रेखाएं या छवियां अंकित की हैं वे ही खड़ी बोली की अनूठी सम्पदा है। पंत ने खड़ी बोली को इतना संवार दिया है कि वह चमक उठी। इन्होंने द्विवेदी युगीन व्याकरणिक भाषा को परिमार्जित किया। पंत अपने काव्य में इसका ध्यान रखते हैं - भाषा का और मुख्यतः कविता की भाषा का प्राणशय्या है। राग के पंखों की अबाध उन्मुक्त उड़ान में लयमान होकर कविता शान्त को अनन्त से मिलाती है।"[94] इस प्रकार पंत ने राग के आकाश में शब्दों के पंख खोलकर मुक्त उड़ान भरी और भावों के अनुरूप शब्दों का सावधानी से चयन किया। "पल्लव" का प्रवेश एक युग-प्रवर्तक भूमिका है। इसमें कवि ने आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा खड़ी-बोली का पक्ष लेते हुए कविता की भाषा के स्वरूप, पर्याय, लिंग, शब्द, छन्द, अलंकार आदि का मार्मिक चित्रण किया है। इन्होंने शब्द सिद्धि प्राप्त करते हुए शब्द शक्तियों

को विकसित तो किया साथ ही भाषा के शब्द भण्डार को भी बढ़ाया। छायायुग ब्रजभाषा और खड़ी बोली के मध्य टकराव और संघर्ष का युग था। ब्रज भाषा को आधुनिक हिन्दी कविता की भाषा के रूप में कवि ने इसलिए नहीं स्वीकारा क्योंकि उसकी साहित्यिक परम्परा रुग्ण और संकीर्ण हो चली थी। उसमें सौन्दर्य तथा माधुर्य तो है परन्तु व्यापकता नहीं। इस विषय में वे लिखते हैं - "ब्रज भाषा की उपत्यका में उसकी स्निग्ध अंचल छाया में सौन्दर्य का कश्मीर भले ही बसाया जा सके..... पर उसका वक्ष स्थल इतना विशाल नहीं जिसके पृष्ठों पर मानव सभ्यता का उत्थान-पतन, वृद्धि,- विनाश, अवर्तन-विवर्तन, नूतन-पुरातन, सब कुछ चित्रित हो सके, जिसकी आलमारियों में दर्शन-विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाज नीति कला कौशल, कथा-कहानी, काव्य नाटक सब कुछ संजोया जा सके।"[95] ब्रज भाषा के सामने खड़ी बोली का काव्य में क्या स्थान है और खड़ी बोली काव्य की कितनी महत्त्वपूर्ण सामग्री है। इस विषय में वे लिखते हैं - "हमें भाषा नहीं, राष्ट्र भाषा की आवश्यकता है, पुस्तकों की नही, मनुष्यों की भाषा, जिसमें हम हंसते-रोते, खेलते-कूदते, लड़ते, गले मिलते, सांस लेते और रहते है, जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके।"[96] खड़ी बोली के विषय में वे तर्क देते है कि जब गद्य-साहित्य और लोक व्यवहार की भाषा खड़ी बोली है तो काव्य भाषा भी खड़ी बोली होनी चाहिए न कि ब्रज भाषा। खड़ी बोली के प्रति उनका पक्ष पात भाषा के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, आलोचनात्मक परीक्षण के बाद देश की मानसिक अवस्था उस समय के काव्य के माँगो के अनुकूल रहा।

काव्य भाषा के स्वरूप पर चिन्तन करते हुए पंत ने भाव भाषा के सामंजस्य पर बल दिया है। वे कहते हैं - "जहां भाव और भाषा में मैत्री अथवा ऐक्य नहीं रहता, वहां स्वरों के पावस में केवल शब्दों के बटु समुदाय के ही दादुरों की तरह, इधर-उधर कूदते फुदकते तथा साम ध्वनि करते सुनायी देते है।"[97] सामंजस्य के अतिरिक्त 'राग और चित्रात्मकता'[98] को भी पंत जी काव्य भाषा के लिए महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस प्रकार पंत शब्द को वस्तुओं की तरह उलटते-पलटतें और फिर चुनते हैं। उसका उपयोग बाद में करते हैं। इसलिए अन्य छायावादी कवियों की तुलना में उनका शब्द भण्डार सबसे अधिक नया है और इन्होंने सबसे अधिक नये शब्दों का निर्माण किया है। पंत के शब्दों में चमत्कार बहुत कुछ बाहरी है, आन्तरिक नहीं। उनको शब्द प्रदर्शन प्रिय हैं। इस

प्रवृत्ति का दूसरा परिणाम यह हुआ कि लक्षणा के सबसे अधिक चमत्कार पूर्ण प्रयोग पन्त जी में मिलता है, जो अनेक स्थानों पर अंग्रेजी के लाक्षणिक प्रयोगों से प्रभावित है। एक प्रयोग में दो-दो लक्षणाओं के चमत्कार की सिद्धि के लिए जितना प्रयोग पन्त ने किया है उतना किसी दूसरे कवि ने नहीं। जैसे - "मर्म पीड़ा के हास"[99] में पहले "हास" का अर्थ लक्षण लक्षणा द्वारा वृद्धि या विकास लेना पड़ता है। फिर यह जानकर सारा सम्बोधन कवि अपने मन के लिए करता है। चमत्कार के प्रति अतिशय अनुरक्ति के कारण पंत जी की छाया, नक्षत्र एवं स्याही के बूंद के अधिकांश लाक्षणिक प्रयोग कोरी कलाबाजी बन गये है। चित्र भाषा की आवश्यकता पर वे बल देते हुए कहते हैं - "चित्र भी गाता हुआ हो। जिस प्रकार निझरिणी में गति और रव मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार भाषा और भावों में सामंजस्य होना चाहिए।[100] भाषा और भाव के सामंजस्य और उनके स्वरैक्य को उन्होंने चित्रराग कहा है।

पंत ने भाषा का अन्तर्देशीय, मनोवैज्ञानिक तथा मार्मिक विश्लेषण करते हुए शब्दों के पर्याय सौन्दर्य पर विचार प्रस्तुत किया है जो काव्य शास्त्र की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में सर्वथा नवीन था। हिन्दी काव्य को पंत की यह महत्त्वपूर्ण देन है। भाषा के मनोविज्ञान के अनुसार दो शब्द हमेशा एक अर्थ नहीं प्रकट कर सकते। इस विषय में पंत ने अंग्रेजी की पर्याय कल्पना को संस्कृत की पर्याय कल्पना से अधिक सार्थक और वैज्ञानिक माना है। उनका विचार है - "संस्कृत के पर्यायों की तो प्रचुरता है, पर भावों के छोटे-बड़े चढ़ाव-उतार उनकी श्रुति तथा मूर्च्छनाओं, लघु-गुरु भेदों को प्रकट करने के लिए पर्याप्त शब्दों का प्रादुर्भाव नहीं हो सका।"[101] इनके इस विचार का खण्डन करते हुए डॉ0 नगेन्द्र कहते हैं - "यह धारणा अशुद्ध है, वास्तव में किशोर कवि के मन में उन दिनों विदेश का जादू चढ़कर बोल रहा था, अतः वह भारतीय उपकरणों का उचित मूल्यांकन नहीं कर सका। संस्कृत जैसी निर्माण क्षमता और अभिव्यंजकता किसी भी अन्य भाषा में नहीं है, अंग्रेजी में तो फ्रेंच आदि से भी कम है।"[102] शब्द-निर्माण के विषय में भी पंत अंग्रेजी कविता से प्रभावित है तथा नवीन शब्दों को गढ़कर अपने शब्द-शिल्पी होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करते है। उनके शब्दों की अर्थ छाया ग्रहण करते हुए उसका हिन्दी रूपान्तरण किया है - "अजान नयन[103], मनोरम मित्र[104] सुवर्ण काल[105] आदि।

छायावादी कवियों में पंत जी में यह प्रवृत्ति सर्वाधिक थी। इसके अलावा कुछ विशेष शब्दों के प्रति मोह भी ज्यादा था। गुंजन के विज्ञापन में इस शब्द मोह को स्पष्ट स्वीकारा है। वे कहते हैं - पल्लव की कविताओं में मुझे 'सा' के बाहुल्य ने लुभाया था -

अर्द्ध निद्रित सा, विस्मृत सा

न जागृत सा, न विमूर्च्छित सा।

गुंजन मे 'रे' की पुनरावृत्ति का मोह मैं नही छोड़ सका यथा -

तप रे मधुर-मधुर मन[106]

पंत ने खड़ी बोली के विकास के लिए उसकी अर्थ-व्यंजना की शक्तियों तथा शब्द भण्डार को विकास एवं विस्तार प्रदान कर उसके निर्माण में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। संस्कृत साहित्य से नवीन शब्दों का चयन किया है। लोक भाषा से भी शब्दों को ग्रहण किया है तथा विदेशी भाषाओं के शब्द व मुहावरों का भी प्रयोग किया है। पर्यायवाची शब्दों में ध्वनि के आधार पर इन्होंने सूक्ष्म अन्तर किया है। भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्राय: संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करतें हैं। 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता, भौहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है। ऐसे ही "हिलोर" में उठान लहर में सलिल के वक्ष स्थल की कोमल कंपन, तरंग में लहरों के समूह का एक दूसरे को धकेलना, उठकर गिर पड़ना 'बढ़ो-बढ़ो' कहने का शब्द मिलता है, बीचि से जैसे किरणों में चकमती, हवा के पलने में होले-होले झूलती हुई हंसमुख लहरियों का "ऊर्मि से मधुर मुखरित हिलोरों का हिल्लोल कल्लोल से ऊँची ऊँची बाँहे उठाती हुई उत्पात पूर्ण तरगों का आभास मिलता है।[107] वैसे तो सभी छायावादी कवियों में व्याकरणगत स्खलन मिलता है परन्तु यह जान-बूझ कर प्रयोग में नहीं लाया गया है, बल्कि इसे हम कवि का अज्ञान या असावधानी ही कह सकते हैं। पंत ने अपने काव्य भाषा में स्थानीय बोलियों, अंग्रेजी व उर्दू से भी शब्द लिये है। इन्होंने अंग्रेजी मुहावरे को भी छायानूदित किया है। अन्य कवियों की तुलना में यह प्रवृत्ति पंत में बहुत ज्यादा है। यथा - "बदले विपुल चटुल लहरों ने तारों से फेनिल चुम्बन[108] में "टु एक्सचेंज किशिज की सजनि। अलस से मायावी शिशु खेल रहे कैसा अभिनय"[109] में "टू प्ले द रोल की" की छाया को देखा जा सकता है। इसलिए डॉ० नगेन्द्र का यह निष्कर्ष ठीक है कि "अंग्रेजी की लाक्षणिक पद योजना की छाया तो पंत में कहीं अधिक मिल जायेगी।"[110] इन्होंने नवीन शब्दों की भी रचना की है जैसे - कल हासि नि,

से यह पता चलता है कि छायावादी कविता अपने प्रारम्भ समय में तो सजीव थी परन्तु ह्रास काल में निर्जीव पड़ने लगती है। और जो इन्हें दुरूहता की संज्ञा मिली है वह भाषा की नहीं बल्कि कविता की है।

आगे पंत जी शब्द को वस्तुओं की तरह देखते-परखते और चुनते है, फिर उनका उपयोग करते हैं। इन्होंने नवीन शब्दों की सबसे ज्यादा रचना की है इसीलिए इनका शब्द भण्डार भी सबसे अधिक नया है। छायावादी कवि पंत अंत में जन-भाषा के निकट आते है। पंत युगवाणी की नव दृष्टि शीर्षक कविता में घोषणा करते हैं -

खुल गये छन्द के बन्ध
प्रास के रजत पाश
अब गीत मुक्त,
औ युग वाणी बहती अयास[111]

फलतः पन्त की युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की कविताओं की भाषा में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है। ई0 चेलिशेव ने पल्लव की 'बालापन' युगवाणी की 'दो लड़के' तथा ग्राम्या की 'गांव के लड़के' शीर्षक कविताओं के शब्द स्रोतों का तुलनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि "पल्लव से लेकर ग्राम्या तक की कविताओं में तत्सम शब्दों का प्रतिशत क्रमशः कम होता गया।[112] युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की बहुत सी कविताओं की भाषा गद्यात्मक है जो उन कविताओं को पद्य बना देती है। यथा -

संस्कृति का वह दास, विविध विश्वास विधायक
निखिल ज्ञान, विज्ञान, नीतियों का उन्नायक[113]

यह वस्तुतः गद्य है जिसकी सहायक क्रिया (है) को निकालकर शब्दों को छन्द के अनुसार पद्य बद्ध कर दिया गया है।

पंत जैसे कल्पनाशील कवि की दृष्टि व्याकरण नियमों से आबद्ध नहीं रहीं। इन्होंने शब्दों का व्याकरण निष्ठ प्रयोग वहीं किया है जहां व्याकरणीय नियमों तथा राग तत्व का सहज सामंजस्य हो, और जहां सामंजस्य भंग हो वहां स्वेच्छापूर्वक कार्य किया है। संधि, समास में भी अनेक स्थलों पर ऐसे प्रयोग दृष्टिगोचर होते है। जैसे - मरुदा काश की जगह मरुता काश[114] आदि प्रयोग व्याकरणिक नियमों के विरुद्ध ही है। इन्होंने

खड़ी बोली का परिष्कार करते हुए संयुक्त क्रियाओं के प्रयोग पर बल दिया है। पल्लव में अनेक स्थानों पर "है"[115] का प्रयोग है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि पंत ने संस्कृत के तत्सम, तद्भव, लोक भाषा एवं विदेशी शब्द रूपों का प्रयोग कर काव्य भाषा को व्यापकता एवं समृद्धि प्रदान की है, भाषा में अर्थ व्यंजकता की सृष्टि स्वय में की गयी है। जिससे व्याकरणिक नियमों का उल्लंघन कवि को प्राप्त विशेषाधिकार के कारण अपेक्षा युक्त है। अत: भाषा में श्रुति माधुर्य एवं लालित्य चित्रात्मकता, शब्द समूह की व्यापकता, शब्द और अर्थ का पूर्ण सामंजस्य तथा भाव-व्यंजना की शक्ति का समावेश कर कवि ने काव्य-भाषा को समृद्ध किया है।

अलंकार-योजना

पंत अलंकारों को वाणी की सजावट न मानकर उन्हें भावों का द्वार मानते है। भावनाओं की प्रेषणीयता बढ़ाने एवं अनुभूतियों को मूर्त्त रूप देने के लिए ही उन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया है। उनकी दृष्टि में अलंकार - "भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार व्यवहार रीति नीति है, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र है।"[116] भारतीय और पाश्चात्य दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग इनके काव्य में हुआ है।

शब्दालंकारों में अनुप्रास कवि को विशेष प्रिय रहा। क्योंकि उससे शब्द, संगीत और नाद सौन्दर्य की वृद्धि होती है -

पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर-झर,
झींगुरो की झीनी झनकार
घनों की गुरु गम्भीर घहर
बिन्दुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर।[117]

इसमें अनुप्रास मिश्रित पदावृत्तियां भाषा में संगीतमय झंकार उत्पन्न करती हुई एक प्रकार की गति पैदा कर रही है। लेकिन पंत की ध्वन्यर्थव्यंजना अधिकांशतः ऊपरी ध्वनि के अनुकरण तक सीमित है। यही कारण है कि कभी-कभी ध्वनियों का अनुकरण स्थूल हो जाता है -

हैं चहक रहीं चिड़िया

टी-वी-टी-टुट-टुट (स्मृति के आधार पर)

शब्दालंकारों में यमक व श्लेष का प्रयोग मनोहर ढंग से होता है इसलिए पंत ने इसमें विशेष रुचि नहीं ली है। इनका प्रयोग इन्होंने स्वाभाविक ढंग से किया है -

तरणि के ही संग तरल तरंग से

तरणि डूबी थी हमारी तल में।[118]

इसमें तरणि का प्रयोग सूर्य और नाव दो भिन्न अर्थो में किया गया है।

अर्थालंकार का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत लगभग सभी अलंकारों का प्रयोग पंत के काव्यों में हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा मूलक अलंकारों की प्रधानता है। साम्य मूलक अलंकारों के परम्परागत ढाँचे में कुछ परिवर्तन करके नया बना देना छायावादी कवियों की नवीन दृष्टि के कारण संभव हुआ।

तरुवर की छायानुवाद सी

उपमा सी भावुकता सी,

अविदित भावाकुल भाषा सी

कटी छँटी नव कविता सी[119]

इन पंक्तियों में उपमा अलंकार का प्रयोग है। छाया को साकार रूप देने में सर्वथा नवीन उपमाओं की योजना हुई है। इस विषय पर अपना विचार प्रकट करते हुए पंत पल्लव की भूमिका में लिखते हैं - "यह नयी दृष्टि उस पुरानी दृष्टि का विरोध करती है जो अलंकारों को साध्य मानकर भावों की हत्या करती है और कविता को अनावश्यक और अस्वाभाविक अलंकारों से लादकर उसे भद्दा बना देती है।"[120] यह दृष्टि द्विवेदी युग तक थी। परन्तु छाया युग आते ही कवि ने संसार को नये ढंग से देखना प्रारम्भ किया।

'ग्रन्थि' में रम्य और भावपूर्ण उपमाओं की प्रचुरता है। और ये उपमाएं एक संपूर्ण चित्र उपस्थित करती है -

शिश रख मेरा सुकोमल जांघ पर
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख, मेरा, अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित-दृष्टि से।[121]

यहाँ उपमा की सार्थकता इसमें है कि शशि कला के उदय होते ही म्लानता मिट जायेगी। पंत में प्रारम्भ से ही रूढ़ उपमानों के प्रति उपेक्षा भाव था। इस विषय में पंत अपना विचार प्रकट करते हैं - "और बेचारे औपकायन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया है। आँख की उपमा खंजन, मृग, कंज, मीन इत्यादि। होठों की ? किसलय, प्रवाल, लाल, लाग इत्यादि।"[122] रूपक का भी सफल प्रयोग पंत के काव्य में हुआ है। अन्य अलंकारों में अन्योक्ति, विरोधाभास, उल्लेख, स्मरण, दृष्टान्त, समासोक्ति असंगति आदि के सुन्दर प्रयोग इनके काव्य में मिलते हैं। जिन अलंकारों द्वारा इनके कला-शिल्प गत सौन्दर्य में विशेष वृद्धि हुई है। वे है मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना। यह पश्चिमी अलंकार है। इसके द्वारा भावों के अनुसार मार्मिक योजना अपने काव्य में की है। मानवीकरण के अन्तर्गत मानवीय भावों और प्रकृति को मानवीकृत कर प्रस्तुत किया है। प्राकृतिक उपकरण का मानवीकरण देखिये -

लहरों के घूँघट से झुक-झुक दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता मुग्धा सा रुक-रुक।[123]

इसमें दशमी के चन्द्रमा को मुग्धा के रूप में मानवीकृत किया है। विशेषण-विपर्यय यत्र-तत्र इनके काव्य में मिलते है। लेकिन ध्वन्यर्थव्यंजना मूलक विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है। व्यंजनों के प्रयोग से वातावरण के वास्तविक रूप को उत्पन्न करना इस अलंकार की विशेषता है। इस कला में अंग्रेजी के स्वच्छन्दता वादी कवियों के संस्कार उभरते हैं। पंत जी इस विषय में कहते हैं - "ज्वाय से जिस प्रकार मुँह भर जाता है, हर्ष से उसी प्रकार आनन्द का विद्युत स्फुरण होता है।"[124]

वैसे पन्त के काव्य में उपमा और विदेशी अलकारों की प्रचुरता है, लेकिन इन्होंने इतने नवीन उपमान का प्रयोग किया है कि परम्परा गत उपमान अपदस्थ हो गये। शब्दालंकारों में विशेषत. अनुप्रास को ही प्रधानता देते हैं। छायावादोत्तर काव्य में पंत ने अधिकांश रूप से निरलंकार वाणी की साधना की। उनका विचार यह लगता है कि नवीन आदर्श और विचार अपनी ही उपयोगिता के कारण संगीतमय एवं अलंकृत होते है। कला-शिल्प सम्बन्धी उक्त उपादान के विषय में कवि की भविष्यवाणी है कि "आने वाले

काव्य की भाषा अपने नवीन आदर्शों के प्राण तत्त्व से रसमयी होगी, नवीन विचारों के ऐश्वर्य से सालंकार और जीवन के प्रति नवीन अनुराग की दृष्टि से सौन्दर्यमयी होगी। इस प्रकार काव्य के अलंकार विकसित और सांकेतित हो जायेंगे।"[125]

छन्द-योजना

गद्य की अपेक्षा छन्द अधिक समय तक समाज में प्रचलित रहता है अतः इसके रचयिता को अधिक समय तक यश मिलता है। निर्मित छन्द अपरिवर्तनशील होता है। डॉ० शुक्ल कहते हैं - "मानव संस्कृति के विकास का इतिहास छन्द की ही सहायता से प्राप्त हो सका है।"[126] अतः जिस प्रकार सौन्दर्य सृष्टि कला का मूल तत्त्व है उसी प्रकार छन्द काव्य का वह मूल तत्त्व है जो गद्य में उसका व्यावर्त्तन करता है। काव्य और छन्द का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, मुक्त छन्द में रचित कविता छन्द विहीन नहीं होती। छन्द मुक्त और मुक्त छन्द में स्पष्ट भेद है। मुक्त छन्द का मतलब है, छन्द शास्त्रीय नियमों से मुक्ति जबकि छन्द मुक्त का अर्थ होता है छन्द से ही मुक्त।

छायावादी कवि छन्द के शास्त्रीय नियमों का तिरस्कार तो करते है, परन्तु इन लोगों ने काव्य और छन्द के घनिष्ठ सम्बन्ध को भी स्वीकार किया है। इसकी घनिष्ठता पर जोर देते हुए पंत लिखते है - "कविता तथा छन्द के बीच बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कम्पन कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होता है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं - जिनके बिना वह अपनी ही बन्धन हीनता में अपना प्रवाह खो बैठती उसी प्रकार छन्द भी नियन्त्रण से राग को स्पन्दन कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के करोड़ो में एक कोमल, सजल कलरव भर उन्हें सजीव बना देते हैं।[127] पन्त ने स्वरों को काव्य संगीत के मूल तन्तु मानते हुए व्यंजन मैत्री पर आधारित वर्णिक छन्दों को हिन्दी साहित्य के प्रतिकूल बताया तथा खड़ी बोली को मात्रिक छन्दों के अनुकूल सिद्ध किया। "हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उनके सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।"[128]

पंत के काव्य का भाव, छन्द का अनुवर्ती नहीं है, बल्कि छन्द ही भाव का अनुसरण करता है। वे काव्य में स्वेच्छा से लय के आधार पर नूतन छन्दों का निर्माण

करते हैं। पन्त ने सोच समझकर स्वर और व्यंजन पर दृष्टि डालते हुए लिखा है - "व्यंजनों की अपेक्षा स्वर ही काव्य संगीत के मूल तन्तु है। कवित्त और सवैया छन्द खड़ी बोली हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है, इनमें उसके संगीत की स्वाभाविकता की पूर्णत रक्षा नहीं हो पाती, साथ ही उसके सहज प्रवाह की स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता भी बाधित होती है।"[129] इसलिए पंत के काव्य की छन्द योजना अधिकांश मात्रिक छन्द के आधार पर निर्मित हुई है। ये छन्द कभी सम होते थे कभी विषम, तथा इनकी तुक योजना भी शास्त्रीय नियमों से थोड़ा हटकर भावों के अनुरूप चलती है। मात्रिक छन्द गीति काव्य के अनिवार्य अंग है। पंत ने मात्रिक छन्द का अधिक से अधिक प्रयोग भी किया है तथा गम्भीर व व्यापक भी बनाया। इतना ही नहीं इन्होंने यति, गति, गुरु, लघु क्रम, लय आदि को विषय और भाव के अनुरूप रचते हुए उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया। पंत जी के काव्य में पीयूष वर्ष रोला सारस, सरसी, रास, योग, लीला, श्रृंगार मनोरमा, गोपी, चौपाई, पादाकुलक, सार, रूपमाला, सखी, पद्धति का अतुकान्त आदि का प्रयोग हुआ है।

इसके अतिरिक्त पन्त शास्त्रीय संगीत से भी अच्छी तरह परिचित रहे हैं। शास्त्रीय संगीत के प्रति मोह उनके निम्न कथन से स्पष्ट होता है - "स्वर-ताल का ज्ञान मुझे छुटपन से ही था और भैरवी, काफी, भूपाली, खमाच आदि रागों को भी मैं पहचान लेता था।"[130] गीतों के लय विधान में उन्होंने अपनी इस संगीत-चेतना का उपयोग किया है। पन्त के छन्द विधान के कुछ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है।

<u>रोला</u>

पंत जी की "उच्छवास" और "परिवर्तन" रचनाएँ इसी छन्द में हैं। इनके इस छन्द के प्रति विशेष मोह को देखकर डॉ0 नामवर सिंह कहते हैं कि - "पंत जी को रोला इतना प्रिय रहा है कि "उच्छवास" में एक रोला फूटा तो परिवर्तन में उसकी झड़ी लग गयी है।"[131] लेकिन पंत ने इसको शास्त्रानुकूल न करके उसमें अपेक्षित गति-यति सम्बन्धी परिवर्तन कर उसे भावानुरूप रूपान्तरित किया है। यथा -

विपुल वासना विकच। विश्व का मानस शतदल,
छान रहे तुम कुटिल, काल कृमि से घुस पल-पल।[132]

शास्त्रीय दृष्टि से रोला चार चरणों से युक्त मात्रिक छन्द है, जिसमें यति का विधान 11 और 13 मात्राओं पर होता है। लेकिन पंत ने इसे पंचपदी का रूप दिया जो कहीं-कहीं षट् पदी है। इसमें यति का विधान द्वितीय पंक्ति के 8 मात्राओं के बाद है। यति शेष चरणों में अनियमित है।

रूप माला

रूपमाला और रोला दोनो 24 मात्राओं के मात्रिक समछन्द है। रूपमाला में 14 मात्राओं पर यति रहती है। दोनों की लय एव गति विषयक भिन्नता को स्पष्ट करते हुए पंत जी कहते हैं - "रोला जहां बरसाती नाले की तरह अपने पथ की रूकावटों को लांघता तथा कलनाद करता हुआ आगे बढ़ता है, वहां रूपमाला दिन भर के काम धन्धे के बाद अपनी ही थकावट के बोझ से लदे हुए किसान की तरह चिन्ता में डूबा हुआ नीची दृष्टि किये, ढीले पाँवों से जैसे घर की ओर आता है।"[133] वस्तुत: दोनों में लय वैभिन्नय है। इसका प्रयोग इन्होंने श्रृंगार व कारूणिक रचनाओं में की है।

राधिका

इसमें 22 मात्रायें होती है। 13 मात्राओं के बाद यति होता है। चरण के अंत में SS होता है। इसकी लय-गत विशेषता के सम्बन्ध में पंत पल्लव में लिखते हैं - "राधिका छन्द ऐसा जान पड़ता है, जैसे इसकी क्रीड़ा-प्रियता अपने ही परदों में "गत" बजा रही हो। जैसे परियों की टोली परस्पर हाथ पकड़ चंचल नूपुर नृत्य करती हुई, लहरों की तरह अंग भंगियों से उठती झुकती कोमल कण्ठ स्वरों से गा रही हों। इस छन्द में जितनी ही अधिक लघु मात्राएं रहेगी, इसके चरण में उतनी ही मधुरता का नृत्य रहेगा।"[134] यथा -

हे स्वर्ण नीड़ मेरा भी जन उपवन में
मै खग सा फिरता नीरव भाव गगन में।[135]

पीयूष वर्ष

यह 19 मात्राओं का द्वितीय सप्तक छन्द है। जिसमें सप्तक की आवृत्ति के बाद रगण जोड़ने से पूरा होता है। इसकी तीसरी दसवीं और सत्रहवीं मात्रा लघु होती है। इसके विषय में पंत जी लिखते हैं - "पीयूष वर्ष की ध्वनि से कैसी उदासीनता टपकती है ? मरूभूमि में बहने वाली तटिनीकी तरह, उसके किनारे पत्र-पुष्पों के श्रृंगार से विहीन, जिसकी धारा लहरों के चंचल कलख तथा हास-हास परिहास से वंचित

रहती. वह छन्द भी वैधव्य वेश में अकेलेपन में सिसकता हुआ, श्रान्त गति से अपने ही अश्रु जल से सिक्त धीरे-धीरे वहता है।"[136]

> कल्पना में। है कसकती वेदना,
> अश्रु में जी।ता सिसकता गान है।
> शून्य आहों में।सुरीखे छन्द है,
> मधुर लय का।क्या कहीं अवसान है।

<u>अरिल्ल</u>

इसमें 16 मात्राएं होती है। चरण के अन्त में यगण होता है। इसकी लय की चंचलता को लक्ष्य में रखकर पंत कहते हैं - "सोलह मात्रा का अरिल्ल छन्द भी निर्झरिणी की तरह कल-कल-छल-छल करता हुआ बहता है।"[137] इनकी बाल रचनाओं में इसका प्रयोग हुआ है।

<u>सखी- छन्द</u>

इसमें 14 मात्राए होती है। पंत ने प्राय. करूण रस की अभिव्यक्ति के लिए इसे उपयुक्त माना है। चरणान्त में इन्होंने इस नियम का पालन नहीं किया है। इस विषय में पंत लिखते हैं - "सखी छन्द के प्रत्येक चरण में अन्त्यानुप्रास अच्छा नही लगता। दूर-दूर तक तुक रखने से यह अधिक करूण हो जाता है, अन्त में मगण के बदले भगण अथवा नगण संचार करने में सहायता देता है।"[138]

उपर्युक्त संगीत पूर्ण छन्दों के अतिरिक्त पन्त ने अपने काव्य में अतुकान्त {ब्लेकवर्स} और मुक्त छन्द {फी वर्स} में कविताएं रची है। हिन्दी में दोनों छन्दों को काफी समय तक अभिन्न माना गया जो कि भ्रान्त है। अतुकान्त छन्द अन्त्यानुप्रास मुक्त होता है, परन्तु इसमें मात्रा क्रम, चरण आदि की व्यवस्था नियमानुरूप होती है। इन्होंने ग्रन्थि में 19 मात्राओं के पीयूष वर्ष छंद की योजना अतुकान्त रूप में की है -

> लाज की मादक सुरा सी लालिमा
> फैल गालों में नवीन गुलाब से[139]

इस प्रकार अतुकान्त छन्द के प्रयोग को स्पष्ट करते हुए पंत ने काव्य विषय को महत्त्वपूर्ण माना है। पल्लव की भूमिका में पंत ने इसे स्पष्ट किया है - "हमें अपनी दिनचर्या में भी

प्रायः एक प्रकार का तुक मिलता है, जो उसे संयमित और सीमाबद्ध रखता है। परन्तु जब हमारे काव्य प्रवाह में तीव्र गति रहती, हमारा जीवन एक अश्रान्त दौड़ सा कुछ समय के लिए बन जाता है। यही ब्लैंक वर्स अथवा अतुकान्त कविता है।"[140]

निराला घनाक्षरी और कवित्त को हिन्दी का जातीय छन्द मानते हैं। लेकिन पंत जी का विचार है - "कवित्त छन्द हिन्दी का औरस जात नहीं पोष्य पुत्र है।" [141] इनके अनुसार हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों में ही अपने स्वाभाविक विकास व सम्पूर्णता को प्राप्त कर सकता है। इसलिए "मुक्त काव्य भी हिन्दी में ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत की लय पर ही सफल हो सकता है।"[142] अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने मात्रिक छन्दों के लयाधार पर मुक्त छन्द की रचना की, जिसे "स्वच्छन्द छन्द" की संज्ञा दी गयी। इस छन्द में लया धार मात्रिक छन्दों का रहता है किन्तु छन्द में मात्राओं की दृष्टि से नियमितता नहीं रहती। उसमें छन्द के चरण भावानुकूल ह्रस्व-दीर्घ हो सकता है - "जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर नाद में चढ़ाव में मन्द गति उतार में क्षिप्र वेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता-छांटता अपने लिए सजु कुंचित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है उसी प्रकार यह छन्द भी कल्पना तथा भावना के उत्थान-पतन , आवर्तन -विर्वतन के अनुरूप संकुचित- प्रसारित होता, सरल-तरल, ह्रस्व-दीर्घ गति बदलता रहता है।"[143] पंत का स्वच्छन्द छन्द अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों से प्रभावित है। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविताओं में इसके तमाम उदाहरण मिलते है।[144] कीट्स ने इसका ज्यादा प्रयोग किया है - पंत इसका प्रयोग करते हैं -

वातहत लतिका यह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार।[145]

इन्होंने मात्रिक छन्द के लया धार पर जो रचना की है उसमें लयाधार छोटे-छोटे भी हैं कहीं बड़े-बड़े भी। और इनकी कुछ पंक्तिया पूर्ववर्ती नियमित छन्द पर भी आधारित है। इन्होंने ग्राम्या युगवाणी आदि में मुक्त छन्द का प्रयोग किया है।

कल्पना

कल्पना काव्य की रमणीयता अथवा कलात्मक सौन्दर्य का प्रमुख आधार है। पंत के काव्य की मूल शक्ति कल्पना ही रही है। अपने काव्य कला के अन्तर्गत कल्पना के महत्त्व को स्वीकारते हुए वे कहते हैं - "कल्पना को मैंने विधायिनी शक्ति के रूप में ग्रहण किया

है। इस शक्ति का साहित्य के अतिरिक्त मेरे जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान रहा। मेरे जीवन में न मां रही , न पत्नी न बच्चे। इन सब के अभाव की पूर्ति मैं कल्पना से ही करता हूं। प्रकृति और युग चेतना मेरी कल्पना के मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं। स्याही की बूंद, नक्षत्र छाया शीर्षक कविताएं चमत्कार प्रदर्शन हेतु लिखी गयी हैं। इनके रूप और विशेषताओं को देखकर जो कल्पनाएं मेरे मन में जागी है, मैने उन्हीं को व्यक्त किया है। आलोचक इसकी व्याख्या दार्शनिक अर्थ में करे या अन्य किसी अर्थ में।[146] कल्पना ने पन्त के काव्य में भाव पक्ष को तो संवारा है साथ ही चित्त-विधान, अप्रस्तुत विधान, छन्द-विधान, शब्द योजना आदि के पीछे प्रखर कल्पना शक्ति ने कार्य किया है। छन्द योजना के क्षेत्र में प्राचीन छन्दों में परिवर्तन उनकी कल्पना का ही परिचायक है।

इस प्रकार पंत का छंद विषयक दृष्टिकोण अभूत है तथा मुक्त छन्द के स्वरूप का मर्मोद्‌घाटन भी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। मुक्त छन्द के आदर्श प्रयोक्ता के रूप में पंत का नाम उल्लेखनीय है - "खुल गये छन्द के बन्ध प्रास के रजत पाश" की प्रसन्नता से मुक्त छन्द का स्वागत किया है। चौपाई, गोपी, सखी आदि के शब्दों के प्रयोग में भी नूतनता लाये हैं।

बिम्ब-विधान

छायावादी कवियों ने बिम्ब निर्माण की परम्परागत प्रक्रिया कम और नयी प्रक्रिया अधिक अपनायी है। इसका प्रभाव पन्त पर कुछ विशेष ही दिखायी देता है। इसलिए इनकी कविता में सरल, स्थूल और एकधामी बिम्ब बहुत कम हैं। लेकिन इसमें इन्होंने अप्रस्तुत विधान का उपयोग बहुत अधिक किया लेकिन उसका उपयोग अन्य कवियों से अलग ही है। "अलंकारों को उसने वाणी की सजावट के साधन न मानकर अभिव्यक्ति के विशेष द्वार, भाषा की पुष्टि एवं राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान, वाणी के आचार-व्यवहार रीति-नीति, पृथक स्थितियों के पृथक स्वरूप, भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र . माना गया है।[147] इसीलिए उसने अप्रस्तुतों के रूढ़ कल्पनाओं को तोडा है। ये वर्ण-बोध अवस्था से आगे बढ़कर सयोजक तथा संवेदक दोनों रूपों तक पहुँचा है। इनके काव्य-बिम्बों में वर्ण-वैभव का कुछ उदाहरण नीचे द्रष्टव्य है -

विद्रुप और मरकत की छाया, सोने चादी का सूर्यातप
हिम परिमल की रेशमी वायु, शत रत्न छाम, खग चित्रित नभ।[148]

इनके इस उदाहरण से स्पष्ट है कि इनके काव्य में मिश्रित वर्णों का प्रयोग ज्यादातर हुआ है। इसके साथ-साथ घ्राण का भी प्रयोग इन्होंने अपने काव्य में ज्यादा किया है। गन्ध का बोध अकेला कम ही रह पाता है। वह प्रायः दूसरे इन्द्रियबोधों के साथ मिश्रित या रूपान्तरित हो जाता है। इनके निम्न पंक्तियों में ध्वनि, गन्ध और दृश्य का मिश्रण हो गया है -

कनक छाया में जबकि सकात,
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल,
तड़प उठते हैं बन गुंजार।[149]

पंत ने पहली बार मानव जीवन व प्रकृति में व्याप्त ध्वनियों को शब्द बद्ध किया है। इन्होंने ध्वनियों में संवेगात्मकता भी प्रदान की है। "झुकता सिड़ी शिशिर का स्वान।"[150] में शिशिर ऋतुका ही प्रभंजन साकार दिखलायी पड़ता है। स्पर्श बिम्ब का भी प्रयोग इनके काव्य में है। लेकिन यह वायवीय ही ज्यादा दिखायी देता है। इनका यह कहना कि तुम्हारे छूने में था प्राण[151] स्पर्श की रहस्यात्मक अनुभूति तो जगाता है लेकिन कोई ठोस भाव नही जगाता। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इनके लिए मांसल स्पर्श था तो पूर्णतया अपरिचित था या इनकी स्वच्छन्दता वादी मनोवृत्ति ने उसे रहस्यात्मक या अपरिचित बना दिया है। इन्होंने अपने काव्य के बिम्बों में सामाजिक, आर्थिक, वैषम्य, पूँजीवादी-सामन्तवादी युग के अन्त, जनशक्ति, क्रान्ति भावी वर्ग हीन समाज की अवधारणओं के बौद्धिक चित्र खड़े किये है। इस प्रकार के बिम्बों में क्रान्ति की भावना सम्बन्धी बिम्ब सर्वाधिक है। "चित्र खड़ा करने के लिए काफी क्रान्ति का मानवीकरण किया गया है।"[152] तो कभी ध्वन्यर्थ व्यंजना द्वारा उसे व्यंजित किया गया है -

ठड्-ठड्-ठड् /
लोहनाद से ठोंक पीट घन,[153]

इन बिम्बों की प्रमुख विशेषता प्रतीकात्मकता है। युगान्त के 'द्रुतझरों' के जीर्ण पत्रों के चित्र वस्तुतः प्रतीकात्मक है। इन्होंने अपने काव्य में स्वच्छन्द कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। "भाषा की चित्रात्मकता पर प्रारम्भ से बल दिया है।"[154] इसको देखने से यह

पता चलता है कि इन्होंने स्वच्छन्द कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। फलतः छायावादी कविता बिम्ब विधान की दृष्टि से समृद्धिशाली है। बिम्ब-विधान काव्य का सहज धर्म भी है। किंतु हिन्दी साहित्यपरम्परा में छायावादी काव्य पहला काव्य है जिसने बिम्बों को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों स्तरों पर इतना महत्त्व दिया, क्योंकि उसने कल्पना को आत्यन्तिक महत्ता प्रदान की।"[155] इस प्रकार पंत ने आँखों की कमल, खंजन आदि के साथ सपाट तुलना करके उसके आकार को ही नहीं व्यक्त करते बल्कि उनके वर्ण, विस्तार, गहराई, प्रभाव आदि विशेषता को भी व्यक्त करते हैं -

तुम्हारी आंखों का आकाश,
सरल आंखों का नीलाकाश,
खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणी। मेरा खग अनजान।[156]

अतः पंत का बिम्ब विधान सर्वथा नया और मौलिक है। इन्होंने जीर्ण बिम्बों को नयी भंगिमा प्रदान की है। इसलिए इनके काव्य शिल्प का विशिष्ट सौन्दर्य उनके बिम्ब संयोजन में निहित है। कल्पना के प्रति विशेष मोह ने ही बिम्ब सृजन प्रवृत्ति को और बढावा दिया है। अनेक रंगीन बिम्ब इस सृजनात्मकता को समृद्ध बनाते हैं। यथा - नौका विहार में तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल का बिम्ब गंगा के सौन्दर्य पर सुन्दर नायिका की परछायी है। और अनेक संश्लिष्ट बिम्ब एक साथ सक्रिय हो उठते हैं -

"मृदु मंद-मंद मंथर-मथर लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर

तथा श्रवण और घ्राण बिम्ब मानव इन्द्रियों को सीधे छूते हैं -

उड़ती भीनी तैलाक्त गंध
फूली सरसों पीली-पीली।[157]

इस प्रकार पंत ने बिम्बों का इतना ज्यादा प्रयोग किया है कि उनकी अभिव्यंजना का रूप ही बिम्ब मूलक हो उठता है। ये सूक्ष्म गहन सौन्दर्य के बिम्ब हृदय में नवीन छवि अंकित करते हैं। अतः पंत की अभिव्यंजना की सफलता संश्लिष्ट बिम्बों में है। यदि निराला का मन मधुर और विराट बिम्बों में रमता है तो पंत मधुर कोमल बिम्बों की सृष्टि से आगे नहीं जाते।

प्रतीक-योजना

प्रतीक कम से कम शब्दों द्वारा अधिक अर्थ व्यंजित कर शिल्प को प्रभावोत्पादकता प्रदान करते हैं। प्रतीक का उद्‌गम-स्थल कवि की चेतना सस्कार और अवचेतन है। प्रतीक द्वारा कवि अदृश्य सत्यों, इन्द्रिय ग्राहय रूपों में सांकेतिक अभिव्यक्ति कर अपने अभिव्यजना पक्ष को सबल प्रभावोत्पादक व सफल बनाने का प्रयत्न करता है। साहित्य में अनेक प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त होते हैं और इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है - "कवि प्रतीकों के द्वारा भावनाओं की सशक्त व्यंजना करने में सफल होता है। जब शब्द कवि के भावों को वहन करने में असमर्थ हो जाते हैं, उस समय रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से ऐसे चित्र निर्मित्त करता है, जो उसकी भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम होते है।"[158] प्रतीक का सीधा सम्बन्ध लक्षणा और व्यंजना से है। काव्य में प्रतीक योजना अत्यन्त प्राचीन है। पंत के काव्य में रूढ़ प्रतीक का प्रयोग अत्यल्प हुआ है। चिर मनोहर प्रकृति के प्रतीकात्मक चित्रों के स्थान पर वास्तविक जगत् का चित्रण होने के कारण प्रतीकों का चयन भी कवि ने पार्थिव जगत से किया है। इनके काव्य में प्रतीक भाव की अभिव्यक्ति के सूक्ष्म प्रेरक है, जो प्रस्तुत से अप्रस्तुत तक फैले मिलते हैं। पंत अतिमा, स्वर्ण किरण, सौन्दर्य रजत शिखर शिल्पी, लोकायतन, कला और बूढ़ा चाँद, सत्य काम में वैचारिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। इस पर अरविन्द दर्शन व अन्य भारतीय दर्शन का इतना प्रभाव पड़ा है कि इनका अलग व्यक्तित्व दिखायी देता है।

पन्त ने अपने प्रतीक विभिन्न स्रोतों से चुने हैं। इनमें सबसे प्रधान स्रोत प्रकृति ही है। इनकी कविता में प्रायः हर परिस्थितियों में प्रकृति ही प्रतीक बन गयी है -

उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चांदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों की सांस।[159]

इसमें उषा, उल्लास को, मुकुल का मृदुल विकास रमणीयता को, चांदनी स्निग्धता एवं सुखदता को तथा बच्चों की सांस भोले पन को व्यंजित करती है। पौराणिक व धार्मिक प्रतीक भी इनकी कविता में प्रचुर रूप से मिलते है यथा -

अहे वासुकि सहस्र फन!

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर,

छोड़ रहे हैं, जग के विक्षत वक्षस्थल पर[160]

इसको देखने से पता चलता है कि पंत ने अपनी नव अध्यात्मकाल की कविताओं में पौराणिक पात्रों का नये प्रतीकार्थो में प्रयोग किया है। इनकी छायावाद काल की कविताओं में धार्मिक-पौराणिक प्रतीक विरल है। प्रस्तुत उद्धरण में वासुकि के रूपकात्मक प्रतीक परिवर्तन की विविध क्रियाओं को व्यंजित करता है। इन्होंने अपने काव्य में कल्पना-प्रसून प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। क्योंकि अपने काव्य में इन्होंने "कोयल के स्वर को" क्रान्ति के प्रतीक रूप में, प्रकाश को ज्ञान और चेतना के प्रतीक रूप में, जीर्ण-शीर्ण पत्र को विगत जर्जर रूढ़ियों के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है।

इन सब प्रतीकों के अलावा पंत के काव्य में प्रेयसी रूप में कल्पित नारी प्रतीकों का प्रयोग बहुल रूप में मिलता है। इन प्रतीकों द्वारा कवि के नवीन राग-दृष्टि की अभिव्यंजना हुई है। यथा -

तुम फूलों की फूल हो

माखन-सी कोमल ।

तुम्हारे शुभ्र वक्ष में

मुँह छिपाकर मैं

ध्यान की

तन्मय अतलताओं में

डूब जाता हूँ।[161]

इसमें नारी सौन्दर्य एवं उसकी पावनता, ध्यान की एकाग्रता के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है। इनके काव्य में मानव-जीवन में अवरोहण के व्यापार से सम्बन्धित प्रतीक मिलते है। इनके काव्य-शिल्प में प्रतीक एक महत्त्व पूर्ण उपकरण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। लगभग सभी रचनाओं के शिल्प-सौन्दर्य में प्रतीकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन प्रतीक योजना के सन्दर्भ में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति "कला और बूढा चाद" है। क्योंकि इसमें कवि ने स्वयं साफ शब्दों में कहा है -

में शब्दों की

इकाइयों को रौंदकर

संकेतों में

प्रतीकों में बोलूँगा[162]

क्योंकि

बोध के

सर्वोच्च शिखर से बोल रहा हूँ।[163]

इसमें अनुभूति का वह स्तर है जहाँ कवि भाषा के माध्यम से भावों की वाणी नहीं पा रहा है। इसलिए इन्होंने प्रतीकों की भाषा का प्रयोग किया है।

अतः हम कह सकते है इनके काव्य में अनेक प्रकार के प्रतीक प्रयुक्त हैं। इनका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। व्यक्तिक एव स्वप्न प्रतीक से लेकर शुद्ध बौद्धिक प्रतीक इस क्षेत्र में सम्मिलित है। प्रतीकों का उद्गम-स्थल कवि की चेतना, संस्कार और अवचेतन है। प्रतीक के द्वारा इन्होंने अदृश्य सत्यों, इन्द्रिय ग्राहय रूपों में सांकेतिक अभिव्यक्ति कर अपने अभिव्यंजना पक्ष को सबल सफल एवं प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न किया है। शिल्प के अन्तर्गत प्रतीक का यही महत्त्व भी है।

रस की दृष्टि से पंत जी इस पर तो कहीं स्वतन्त्र विचार या चिन्तन नहीं किया हैं। पर इन्होंने रस को ही काव्य की आत्मा माना है। इन्होंने काव्य की शुरूआत करूण रस से ही माना है -

वियोगी होगा पहला कवि,

आह से उपजा होगा गान,

उमड़ कर आँखो से चुपचाप,

बही होगी कविता अनजान।[164]

इनके काव्य में करूण रस की प्रधानता तो है ही, साथ-साथ श्रृंगार, हास्य, अद्भुत, भयानक आदि रसों का भी प्रयोग दिखायी पड़ता है। उपरोक्त उदाहरण में काव्य को वियोग व्यथित आत्मा की प्रेरणा मानकर रस के महत्त्व की स्थापना की गयी है।

अतः इनके कलापक्ष पर अध्ययन करने के बाद सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते है - "पंत जी की द्वितीय विशेषता है काव्य के वाह्य रूप की गम्भीर मनोवैज्ञानिक विवेचना। उन्होंने भाषा, अलंकार और छन्द को सामान्य वस्तु-रूप में न देखकर आत्मा के दर्शन किये हैं। फलतः वे काव्य शिल्प पर कवि की भाव-भूमियों के प्रभाव का अपूर्व विश्लेषण कर सके हैं।"[165] इस प्रकार पंत का काव्य और उनका काव्य चिंतन,काव्य के क्षेत्र में अभूत पूर्व परिवर्तन उत्पन्न करता है।

---000---

सन्दर्भ-ग्रन्थ

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	आधुनिक कवि ﴾पर्यालोचन﴿	पंत	6
2.	शिल्प और दर्शन	"	185
3.	साठ वर्ष : एक रेखाकन	"	185
4.	सुमित्रानन्दन पंत : जीवन और साहित्य	शान्ति जोशी	45
5.	शिल्पी	पत	105
6.	छायावाद पुर्नमूल्यांकन	पंत	79
7.	आधुनिक कवि	"	76-77
8.	पल्लव	"	162
9.	पल्लविनी	"	232
10.	युगवाणी	"	109
11	यथा सुदीप्तान् पावकाद् विस्फुलिंगा ﴾मु0उ0﴿ 2/1/1		
12.	पल्लव	पन्त	92
13.	ऋक0 10/114/5		
14.	आधुनिक कवि	पन्त	41
15.	चिदम्बरा की भूमिका	पन्त	
16.	गीता अध्याय 4 श्लोक 13		
17.	युगवाणी	पन्त	54
18.	आधुनिक कवि	पन्त	58
19.	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	"	79
20.	युगवाणी	"	44
21.	युगवाणी	"	47
22.	युगवाणी	"	26
23.	छायावाद : पुनर्मूल्यांकन	"	77
24.	आधुनिक कवि ﴾मानव﴿	"	70
25.	गुजन	"	26

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
26.	रश्मिबंध	पंत	16
27.	उत्तरा (भूमिका)	"	23
28.	युगवाणी	"	24
29.	ज्योत्सना	"	29
30.	गुंजन	"	20
31.	गुंजन	"	11
32.	ज्योत्सना	"	36
33.	गुंजन	"	86
34.	चिदम्बरा की भूमिका	"	9
35.	ग्राम्या	"	निवेदन से
36.	रश्मिबंध	"	भूमिका से
37.	चिदम्बरा (भूमिका)	"	29
38.	चिदम्बरा (भूमिका)	"	30
39.	"	"	19
40.	साठ वर्ष : एक रेखांकन	"	53
41.	युगान्त	"	26
42.	युगवाणी	"	17
43.	शिल्प और दर्शन	पंत	55-56
44.	सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परा और नवीनता	ई0 चेलिशेव	149
45.	ग्राम्या	पंत	24
46.	ग्राम्या	"	24
47.	ग्राम्या	"	24
48.	स्वर्ण किरण	"	121
49.	युगवाणी	"	89
50.	ग्राम्या	"	61
51.	चिदम्बरा	"	95
52.	युगवाणी	"	58

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
53.	ग्राम्या	पन्त	21
54.	चिदम्बरा ﴾भूमिका﴿	"	33
55.	गद्य पथ	"	47
56.	पल्लव	"	89
57.	साठ वर्ष : एक रेखांकन	"	14
58.	वाणी ﴾आत्मिका﴿	"	111
59.	सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य	शांति जोशी	30
60.	साठ वर्ष : एक रेखांकन	पंत	12
61.	आधुनिक कवि ﴾पर्यालोचन﴿	"	8
62.	आधुनिक कवि ﴾पर्यालोचन﴿	"	9
63.	शिल्प और दर्शन	"	36
64.	पल्लव	"	64
65.	पल्लव	"	65
66.	रश्मिबंध	"	14
67.	युग पथ	"	12-13
68.	युग पथ	"	75
69.	युग पथ	"	88
70.	छायावाद : पुनर्मूल्यांकन	"	19
71.	ग्रन्थि	"	125
72.	ग्रन्थि	"	125
73.	रश्मिबंध	"	16
74.	युगवाणी	"	52
75.	युगवाणी	"	24
76.	छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	196
77.	युगवाणी	पंत	40
78.	ग्राम्या	"	89
79.	आधुनिक कवि	"	41-42

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सख्या
80·	गुंजन	पंत	104
81·	छायावाद : पुनर्मूल्याकन	"	16
82·	गुंजन	"	30
83·	गुंजन	"	26
84·	सुमित्रानन्दन पंत	डॉ0 रामरतन भटनागर	12
85·	शिल्प और दर्शन	पंत	113
86·	छायावाद : पुनर्मूल्यांकन	"	26
87·	आधुनिक कवि	"	71
88·	आधुनिक कवि	"	2
89·	शिल्पी	"	15
90·	छायावाद का विश्लेषण और मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	190
91	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	106
92	छायावाद	नामवर सिह	144-45
93·	भारतीय काव्यशास्त्री की भूमिका	नगेन्द्र	116
94	पल्लव	पंत	भूमिका से
95·	शिल्प और दर्शन	"	80
96·	शिल्प और दर्शन	"	8
97·	शिल्प और दर्शन	"	15
98·	कविता के लिए चित्र भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए। जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े।		
	शिल्प और दर्शन	पन्त	14
99·	पल्लव	"	61
100·	पल्लव ﴾भूमिका﴿	"	31
101·	छायावाद का कला पक्ष	"	18
102·	आस्था के चरण	नगेन्द्र	46
103·	पल्लव	पत	3
104·	पल्लव	"	6

क्र0स0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सख्या
105	पल्लव	पत	76
106	गुंजन	"	विज्ञापन से
107	पल्लव	"	29-30
108	पल्लव	"	85
109	पल्लव	"	96
110	सुमित्रानदन पत	डॉ0 नगेन्द्र	61
111	चिदम्बरा	पत	36
112	सुमित्रानन्दन पत	ई0 चेलिशेव	173
113	चिदम्बरा	पत	51
114	सुरभि से अस्थिर मरुता काश {पल्लव}	पत	6
115	चमक छिप जाती है तत्काल {पल्लव}	"	168
116	पल्लव {प्रवेश}	"	32
117	पल्लव	"	69
118	ग्रन्थि	"	7
119	पल्लव	"	108
120	पल्लव {भूमिका}		31
121	ग्रन्थि	"	29
122	पल्लव {प्रवेश}	"	10
123	गुजन	"	96
124	पल्लव	"	प्रवेश
125	शिल्प और दर्शन	"	43
126	आधुनिक हिन्दी काव्य में छद-योजना	डॉ0 पुत्तू लाल शुक्ल	34
127	पल्लव {भूमिका}	"	30-31
128	पल्लव	"	32
129	पल्लव	"	32
130	साठ वर्ष . एक रेखाकन	"	13
131	छायावाद	नामवर सिह	120

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सं
132·	पल्लव	पत	121
133·	पल्लव	"	46
134·	पल्लव	"	46
135·	वीणा	"	69
136·	पल्लव	"	46
137·	पल्लव	"	43
138·	पल्लव	"	47
139	ग्रन्थि	"	10
140·	पल्लव	"	44-45
141	पल्लव	"	38
142·	पल्लव	"	45
143	पल्लव	"	35
144·	The rain low comes and goes And Sovely is the Rose. उद्वृत आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प	डॉ0 मोहन अवस्थी	206
145·	पल्लव	पंत	54
146·	पल्लव {भूमिका}	"	32
147·	पल्लव	"	22
148·	युगान्त	"	22
149·	पल्लव	"	91
150·	पल्लव	"	155
151·	पल्लव	"	72
152·	युगवाणी	"	96
153·	युगवाणी	"	47
154·	पल्लव	"	30
155·	छायावान का पुनर्मूल्यांकन	राम दरश मिश्र	94
156·	गुंजन	पंत	48
157·	ग्राम्य	"	35

क्र0सं0	ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ सख्या
158·	निराला : व्यक्तित्व और कृतित्व	धनंजय वर्मा	104
159·	पल्लव	पत	72
160·	पल्लव	"	150
161	कला और बूढ़ा चाँद	"	97
162·	कला और बूढ़ा चाँद	"	62
163·	अतिमा	"	64
164·	पल्लव	"	13
165·	आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत	सुरेश चन्द्र गुप्त	407

---000---

अध्याय - 6

महादेवी का काव्य और उनका काव्य-चिंतन

महादेवी का काव्य और उनकी विचारधारा :

महादेवी के काव्य में त्याग, तपस्या व साधना विशेष रूप से विद्यमान है। इन काव्य का प्रत्येक शब्द विश्व वेदना की धारा में घुल-मिल गया है। इनके संपूर्ण काव्य में भूत हित की कामना है। उनके गीतों में हमें विश्व मगल के एक महान उद्‌गाता दर्शन होता है। वे संसार के सभी दु:खी प्राणियों के दु:ख को अपने में आत्मसात् कर चाहती हैं। विश्व दुख की इस ज्वाला से उनका बाहयाभ्यतर निखर उठा है। हिमालय पवित्र और शुभ्र स्वरूप, उसकी विराट गरिमा, उनके व्यक्तितत्व में समा गये हैं। साहित्यिक उ वेयक्तिक इनका द्विपक्षीय व्यक्तितत्व नही है। बल्कि दोनों एक दूसरे के पूरक है। युग धर्म अभिव्यक्ति उनके काव्य में अपने ढंग से हुई है। दु:खवाद उनके काव्य का मुख्य उ है। बौद्ध दर्शन ने भी उनकी इस दिशा में सहायता की है। इनके दु:ख वाद के पीछे निरा: नहीं है, अपितु आशा की किरण छिटकती है।

महादेवी जीवन को साधना मय आधार देती हैं। इसीलिए उनका काव्य वेदना मूल है। उनका विचार है कि आत्म साधना से मानव व्यक्तितत्व निखर उठता है। करूणा उच्चाशयता, परदु:ख, कातरता, धीरता, गम्भीरता, सरलता, अकृत्रिमता, निश्छलता, हार्दिकता, पावनता और आत्मोत्सर्ग विशेष तौर से इनके काव्य में समाहित हैं। दूसरे के दु:ख वे बहुत द्रवित होती थी। व्यावहारिक जीवन में भी दूसरे के दुख में समभागी होते समय अपने आपको भूल जाती थी। कवयित्री मनुष्य को ही कविता मानती है, इस विषय में उनका विचार है - "मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द चित्र मात्र है जिससे उनका व्यक्तितत्व और ससार के साथ उसकी एकत जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक सुन्दर अधिक सुकुमार संसार बसा रखा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिगन में आबद्ध रहते हैं।"[1] जीवन-क्रम के अनुशीलन से स्पष्ट है कि स्थूल स्तर पर महादेवी को विरोधों का सामना उतना नही करना पड़ा जितना कि आन्तरिक स्तर पर। व्यक्तितत्व का विरोध ही इनके कृतित्व में दिखायी पड़ता है। गद्य में जहाँ वे मनस्वी व तर्क सगत है तथा सामाजिक वेषम्यों के प्रति आक्रोशी हैं, वहीं पद्य में उनकी संवेदनशीलता, उन्हें रहस्यवादी बना देती है।

इनकी कला चेतना जहाँ चित्रों के रूप में अभिव्यक्ति हुई हैं, वहीं खड़ी बोली के गीति काव्य की शिल्पकर्ती के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित कर गयी। ललित कला विषयक उनकी

मान्यताए उनके गम्भीर चिंतन को व्यक्त करती हैं। व्यक्तित्व-विकास में उनकी स्वयं की भूमिक रही। अपूरित आकाक्षाओं, द्वन्दो व वैषम्यों के दमन-शमन के स्थान पर काव्य एव कला उन्नयन को ठीक समझा। अपने काव्य के तत्त्वों को ये स्वयं प्रकट करती हुई कहती है "छाया युग का काव्य स्वानुभूति मयी रचनाओं पर आश्रित है, अतः व्यापकीकरण भाव औ व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है।"[2] अब आगे हम उनके चिंत विषयकधारणा पर अध्ययन करेंगे।

दार्शनिक पृष्ठाधार :

महादेवी के काव्य में बौद्ध दर्शन का प्रभाव ज्यादातर है। बौद्ध दर्शन के दुखवाद क इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। बौद्ध धर्म में चार आर्य सत्य हैं - §1§ संसार दुखमय है, §2§ दुःखों का कारण है, §3§ दुःख का नाश होता है और §4§ दुःखों के नाश के लिए उपाय भी हैं। बौद्ध दर्शन जीवन को अनित्य और दुखमय मानकर चला और अन्त में मध्यम मार्ग पर उसकी दृष्टि जा टिकी। दो प्रकार के अतिवाद - तपस्या और विलास के मध्य का ही मार्ग श्रेयस्कर है। इन्होंने स्वीकार भी किया है - "अपने दुखवाद के विषय में भी दो शब्द कह देना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दुःख के धूप छाही डोरों से बने हुए जीवन में मुझे केवल दुख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है। यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या के सुलझा डालने से कम नहीं है। ससार साधारणत जिसे दु ख और अभाव के नाम से जानता है कम नहीं हैं। ससार साधारणतः जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नही है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला हैं, उस पर पार्थिव दुख की छाया नही पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है। इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके ससार को दुखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।"[3]

महादेवी वर्मा दुख से छुटकारा पाना ही नही चाहती। वे दुख में ही सत्य का दर्शन करना चाहती हैं। कवयित्री अपने गीले नेत्रों से ही आरती करना चाहती है और आरती के अन्य उपकरण भी वेदना से ही निर्मित हैं -

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती ।

बौद्ध दर्शन ने इनके लिए उच्चकोटि की भाव भूमि को तैयार करने में बड़ी सहायता पहुँचाई है। बौद्ध दर्शन के साथ उसके पहले वे वैदिक दर्शन से भी प्रभावित रहीं। "कौन तुम मेरे हृदय में"[5] इसमें महादेवी का जिज्ञासा भाव ही प्रखर है और ये जानना चाहती थी कि वह कौन शक्ति जो सभी जीवधारियों मे विद्यमान है। संसार सार हीन है तथा श्रेय प्राप्ति और कर्त्तव्य बोध आदि का समुचित बोध इन्हें उपनिषदों से प्राप्त होता है। महादेवी जी जीवन की असारता को यों प्रकट करती हैं -

> निश्वासों का नीड़, निशा का
> बन जाता जब शयनागार।
> तब बुझते तारों के नीख नयनों का यह हाहाकार
> आंसू से लिख लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।[6]

जिस प्रकार नदिया नाम रूप त्याग कर समुद्र में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार ज्ञानी विमुक्त दशा में उस दिव्य पुरूष से मिल जाता है। इसमे कवयित्री को विशाल दृष्टि प्रदान की है और वे संकीर्णता को छोड़कर विश्व-ऐक्य की ओर अग्रसर होती गयी। महादेवी ने मुण्डकोपनिषद की उक्त धारण को कुछ भिन्न रूप में व्यक्त किया है -

> हारूँ तो खोऊँ अपना पन
> पाऊँ प्रियतम में निर्वासन।[7]

इसलिए महादेवी उपनिषदों से प्रभावित लगती हैं। महादेवी के काव्य में अद्वैत भाव भी दिखायी देता है। क्योंकि सांसारिक जीवन में सुन्दर समन्वय, सुगमता व्यावहारिकता तथा एकता लाने के लिए उर्ध्व और गहन का एकीकरण चाहती है। इन्हें अद्वैत का समाज सापेक्ष रूप प्रिय है। इसीलिए वह इस पृथ्वी की गोद में अपने आवास को स्थायी बनाकर करूणा सन्देशों की वाहिका बनना चाहती है -

> मै गति विह्वल
> पाथेय रहे तेरा दृग-जल
> आवास मिले भू का अचल
> मै करूणा की वाहक अभिनव।[8]

इसके अलावा महादेवी जी पर प्रत्यभिज्ञा-दर्शन, नव्य-दर्शन (मार्क्सवाद) गांधी, अरविन्द, टैगोर आदि का प्रभाव पड़ा है। दूसरी प्रेरणा जिससे ये पूरी तरह प्रभावित है वह है रहस्यवाद। ये रहस्यवाद के शुष्क दार्शनिक पक्ष को त्यागकर समाज सापेक्ष रूप ही ग्रहण करती है। प्रेरणा के जिन स्रोतो से वे प्रेरित हुई उनके हर पक्ष से वे परिचित हैं। बौद्ध दर्शन के निराशावाद से यदि वे परिचित है तो निराशा और संसार के दुःखों से छुटकारा पाने के उपायों को भी उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। इनका संपूर्ण काव्य आत्मदाह व आत्मदान की ज्वलत मशाल है। इनका कथन इस संबंध में माननीय है -"आज गीत में हम जिसे नये

सबसे भिन्न है। उसने पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छाया मात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और हम सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्य-भाव सूत्र में बांध कर एक निराले स्नेह सम्बन्ध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सका, पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदय मय और हृदय को मस्तिष्क बना सका।"[9] यह नया रहस्यवाद ही छायावाद है जिसे प्रारम्भ के आलोचक रहस्यवाद समझ बैठे। संसार के प्रत्येक कण से उन्हें अनुराग है, कुत्सित दलित के प्रति उनके मन में असीम प्यार है और इसीलिए इन्होंने कठिन मार्ग को अपनाया -

जिसको पथ शूलों का भय हो
वह खोजे नित निर्जन गह्वर
प्रिय के संदेशों के वाहक
मै सुख दुख भेटूंगी भुज भर।[10]

जीवन के सुख-दुख इन्हें इतने प्रिय लगने लगे कि उनका वियोग इन्हें सह्य नहीं है। इनका सम्पूर्ण काव्य संवेदनशील है। इस विषय में आचार्य शुक्ल का विचार है - "वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलन सुख को वे कुछ नहीं समझती। वे कहती है कि-मिलन मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ। इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी-ऐसी अनुभूतियां रखी हैं जो लोकोत्तर हैं।"[11] वैसे तो दर्शन हमें एक दृष्टिकोण प्रदान करता है और हमें जीवन की समस्याओं पर सोचने के लिए विवश करता है। लेकिन यदि हमें मनोवांछित वस्तु बिना संघर्षों के प्राप्त हो गई तो हम दूसरों के दुःखों को बिल्कुल नहीं समझ पाते। इसीलिए दुःख इनका गलहार बन बैठा - "निश्चय ही अपनी समस्त करूणा, वेदना, संवेदना, आत्म-विसर्जन अथवा मर मिटने की भावना को लेकर भी महादेवी की काव्य दृष्टि इसी महान विश्व चेतना से स्पन्दित, लोक मंगलोन्मुखी तथा समाजोन्मुखी है। उसमें एक प्रच्छन्न आशा का संदेश तथा नये जीवन प्रभात की अरूणिमा का भी सौन्दर्य है।[12] पंत का यह विचार उनके लिए सटीक बैठता है। इनके दार्शनिक विचार आत्मा-परमात्मा को भिन्न नहीं मानते। वैदिक ग्रन्थों व बौद्धवाद को ही इनके दर्शन का मुख्य श्रोत मान सकते हैं। ये सुख को क्षणिक व वेदना को स्थायी मानती है। इनमें रवीन्द्र के गीतों की भाव-तीव्रता विद्यमान हैं। इनके दार्शनिक विचार पर अध्ययन करने पर दीनानाथ शरण जी लिखते है - "महादेवी की दार्शनिक विचारधारा पर मुख्यतः वैदिक ग्रन्थों, उपनिषद एवं बौद्ध दर्शन का प्रभाव पड़ा है। वैदिक साहित्य का महादेवी पर प्रभाव

उनके द्वारा अनुदित वेद की ऋचाओं मे प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। उपनिषद के अद्वैतवाद के साथ हीवेबौद्ध दर्शन के दु.खवाद से भी प्रभावित हैं। महादेवी ने माना है कि आत्मा-परमात्म एक है।"[13]

आध्यात्मिक विचार .

साकार-निराकार मूर्त-अमूर्त और रूप-अरूप का समन्वय महादेवी के काव्य में दिखायी पड़ता है। अध्यात्म एक ओर राष्ट्र की नीवं को सुदृढ रखता है दूसरी ओर समाज को नैतिक बल भी प्रदान करता है। इन्होंने अध्यात्मवाद और रहस्यवाद को एक नये परिवेश में देखा। और आधुनिक युग के लिए यही सबसे बड़ी उपलब्धि है। महादेवी की मानसिक सरचना संस्कारदत्त है, जो अध्ययन मनन से पुष्ट हुई। मा की साधना-रत सहज विश्वासी पूजा पाठ सँबँधी धार्मिक वृत्ति महादेवी के व्यक्तित्त्व में सत्यान्वेषी व्यष्टि से समष्टि की स्वीकृति के रूप में प्रबुद्ध रूप रेखाओं के साथ प्रतिफलित हुई। यह आस्था ही पूर्ण आत्मदान की ओर प्रवृत्त करती है चाहे यह कला के प्रति हो, चितन के प्रति, सत्य के प्रति या किसी अलौकिक सत्ता के प्रति।"[14] इसलिए महादेवी का यह कथन ही यह सिद्ध करता है कि वे अध्यात्म की ओर विशेष उन्मुख थी, क्योंकि उनके बचपन का यही संस्कार ही था जो उनके काव्य रचना में परिलक्षित हुआ।

अज्ञात प्रियतम के प्रति आत्म-निवेदन के क्षणों में कवयित्री ने भारतीय नारी के शील, त्याग, तपस्या, सौन्दर्य और स्वाभिमान को उच्चासन दिया है। उनके आत्म-निवेदन में गिड़गिड़ाने का भाव नही है। वे अपने निश्छल मन को प्रकाशित करना चाहती है और ये चाहती है कि भारतीय नारी के अन्दर दिव्य शक्ति जागृत हो। वे उत्सर्ग प्रधान जीवन का अभिनन्दन करना चाहती हैं -

जिसको जीवन की हारें
हों जय के अभिनन्दन सी
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो।[15]

अध्यात्म को जीवन के निकट लाना बहुत बड़ी बात है। इस क्षेत्र में छायावाद भक्ति काल से भी आगे दिखाई देता है। महादेवी के काव्य का अध्यात्म उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार

उनका दुखवाद। सही ढग से देखा जाय तो दुखवाद ही अध्यात्म को व्यक्त करने का प
माध्यम है। इस विषय में स्वय वर्मा जी स्वीकार करती हैं - "छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध
या वर्गगत सिद्धान्तों का संचय न देकर हमें, केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य सत्त
और जागरूक कर दिया था।"[16]

अभी ससार की शुष्क धारा करूणा जल से सिक्त नहीं हुई थी कि कवयित्री स
ससार के दुःख को आत्मसात् करके अपने अस्तित्त्व की सार्थकता समझती है। ये अध्यात्म
माध्यम से जीवन में अखंडता स्थापित करना चाहतीं है। केवल बौद्धिक शक्ति ही इ
दिशा में उपयुक्त नही हो सकती। हृदय की शक्तियों के पुनरोदय से जीवन की अखंडत
संभव है। और जब चारों तरफ अध्यात्मवाद की धूम मचेगी तभी हृदय की शक्तियां पुन
जागृत हो सकती है। इनका यह विचार है कि समस्त जड़-चेतन प्राणी एक ही विराट
शक्ति से उत्पन्न है। इनका अध्यात्मवाद के विषय में क्या विचार है तथा अध्यात्म
किस सीमा तक साहित्य और समाज का कल्याण किया इसे अपने काव्य रचना के समय
स्वयं अनुभूत किया है और उसका उचित मूल्याकन करती हुई ये लिखती हैं - "उस
पराविद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम
तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकेतिक दाम्पत्य-भाव सूत्र में बांध कर एक
निराले स्नेह सबध की सृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलंबन दे सका, पार्थिव
प्रेम को ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदय मय और हृदय को मस्तिष्क मय बना
सका।"[17] ये अज्ञात प्रियतम की शक्तियों से अपरिचित नहीं है जो चुपचाप आकर सारे
संसार को एक सूत्र में बांध जाता है, एक चेतना से प्रकम्पित कर जाता है -

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह आता,
इस निदाघ से मानस में करूणा के स्रोत बहा जाता।[18]

वे ऐसें करूणाकर प्रियतम से एकाकार नही होना चाहती जिसमें मानव अपना विकास न
करके बल्कि कुंठित हो जाय। निगूढ़ दार्शनिकता से युक्त अध्यात्म सामान्य जीवन को प्रभावित
नही कर सकता और न सामान्य जीवन की धारा प्रत्यक्ष रूप में उसे प्रभावित कर सकती
है। ऐसी स्थिति में काव्य अपनी मूल प्रवृत्ति से हटकर जीवनोपयोगी नहीं रह जाता।
इस विषय में इनका स्वय का विचार है - "इस बुद्धिवाद के युग में भी मुझे जिस
अध्यात्म की आवश्यकता है वह किसी रूढ़ि धर्म या सम्प्रदाय गत न होकर उस
सत्ता की परिभाषा है। व्यष्टि सप्राणता मे समष्टिगत एक प्राणता का आभास देती हैं।
इस प्रकार वे मेरे सपूर्ण जीवन का ऐसा सक्रिय पूरक है जो जीवन के सब रूपों के प्रति
मेरी ममता समान रूप से जगा सकता है।[19] वैसे तो महादेवी के काव्य की आध्यात्मिकता

कहीं-कही अवश्य क्लिष्ट हो गयी है। लेकिन वह क्लिष्टता यथोचित साध्य रूप में ।
आयी। इन्होंने शाश्वत सत्य तथा जीवन की अखण्ड व अविच्छिन्न धारा को जिस प्रभा
शाली ढग से समझाया है उससे यह अनुमान तो हो ही सकता है कि वे जीवन व
कितने निकट से देखती है। इन्होंने काव्य को सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का बाना पहन
कर उसे जीवन के लिए अत्यन्त उपादेय बनाया है। इस विषय में शीला व्यास का
उचित ही मालूम पड़ता है - "महादेवी के काव्य में जीवन की व्यापकता और विविधत
दिखाई देती है। वे अध्यात्म तत्त्व का लोक जीवन से संबंध स्थापित करना चाहती ।
और अध्यात्म की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने लौकिक रूपकों का माध्यम ग्रहण किया है।"[20]

प्रकृति और गीतों का स्थान :

महादेवी ने भावों की निश्छल अभिव्यक्ति के लिए गीतों का आश्रय लिया। उनका गीति काव्य मार्मिकता से परिपूर्ण है जो प्रकृति के अमिट और दिव्य रंगों से ओत-प्रोत है। गीत तो तन्मयता उत्पन्न करता है लेकिन यदि प्रकृति को उसमें स्थान दिया जायेगा तो वह सजीव रूप में दिखने लगती है। सही बात तो यह है कि कवयित्री की जैसी अपनी मानसिक स्थिति है उसी तरह प्रकृति को चित्रित किया है और उसके साथ तादातमय भी स्थापित करती हैं। वे हसते-हसते चिर व्यथा का भार ढोने चली तो -

उभर आये सिन्धु उर में
बीचियों के लेख
गिरि कपोलों पर न सूखी
आसुओं की रेख।[21]

गेयता ही गीत की सबसे बड़ी शक्ति है। एक ओर तो यह हमें तन्मय और आत्म विभोर कर देता है लेकिन दूसरी तरफ हमें दृष्टि की विशालता और विचारों की परिपक्वता प्रदान करता है। लेकिन उसका भाव विचार उच्च कोटि का हो। गीत की गेयता में जो शक्ति है उसका परिचय कवयित्री स्वयं कराती है - "गेयता में ज्ञान का क्या स्थान है, यह भी प्रश्न है? बुद्धि के तर्क क्रम से जिस ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है, उसका भार गीत नहीं सभाल सकता। पर तर्कसे परे इन्द्रियों की सहायता के बिना भी हमारी आत्मा अनायास ही जिस सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लेती है, उसकी अभिव्यक्ति में गेय स्वर सामंजस्य का विशेष महत्व रहा है।"[22]

गेयता के कारण ही वे प्रभावोत्पादक बन गयी है। ये दीपक राग जलाना चाहती है लेकिन प्रकृति उनसे स्वर मिलाना चाहती है -

क्षितिज कारा तोड़ कर अब
गा उठी उन्मत्त आंधी
अब घटाओं में न रुकती,
लास-तन्मय तड़ित बांधी
धूलि की इस वीण पर मै तार हर तृण का मिला लूं।[23]

इसमें प्रकृति का क्रियाशील रूप बड़ा मनमोहक है तथा गेय तत्त्व का सुन्दर समन्वय हुआ है। प्रकृति छाया वादियों की चिर संगिनी थी। मानव के कल्याणार्थ इन्होंने प्रकृति के अनेक संश्लिष्ट और विशिष्ट चित्र खींचे हैं। वे लिखती है - "जिस प्रकृति की अनेक रूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयत्न किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा छोर उसके समीप हृदय में समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्त्व लेकर जाग उठा।"[24]

महादेवी के काव्य की प्रकृति, शिक्षिका का भी काम करती है। वह प्रेरणा की श्रोत और शक्ति का अक्षय भंडार है। कवयित्री अपनी आत्मा को साधना-पथ पर लगाना चाहती है। वह यह जानती हैं कि प्रकृति उसका उत्साहवर्धन करेगी और उसके स्वागत के लिए मगल गान करती है -

स्वर प्रकम्पित कर दिशा में,
मीड़ सब भू की शिरायें,
गा रहे आंधी-प्रलय
तेरे लिए ही आज मंगल।[25]

यहां प्रकृति के दोनों रूप एक साथ आये हैं - प्रेरक और साधन रूप। प्रकृति विराट और सर्वव्याप्त है। महादेवी इसके साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपने शाश्वतवाद का प्रमाण देती है। प्रकृति में इन्होंने सौन्दर्य का दर्शन किया है। प्रकृति का निश्चल और विशुद्ध व्यवहार उसके मन को मोह लिया है। प्रकृति अखण्ड सत्य से युक्त है, वह दिव्य और पवित्र है। इस विषय में उसका विचार है - "प्रत्येक सौन्दर्य खण्ड - अखण्ड सौन्दर्य से जुड़ा है और इस तरह हमारे हृदय गत सौन्दर्य बोध से भी जुड़ा है। पर व्यापक सामंजस्य

हमारा वह परिचय है, जो अनन्त जल राशि में एक लहर का दूसरी लहर से होता पर विरूपता से हमारा वैसा ही मिलन है, जैसा पानी में फेंके हुए पत्थर और उससे उ लहर में सहज है।"[26] इसलिए अखण्ड सौन्दर्य का दर्शन कवयित्री ने प्रकृति में ही कि और जिसको वे जीवन में लाना चाहती थी। इसीलिए साधना का मार्ग उन्हें प्रिय लगा

विश्व व्याप्त सौन्दर्य को समाज-सापेक्ष बनाने के लिए वे सूक्ष्मान्वेषिणी क और अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए गीति काव्य को माध्यम बनाया और गीत में सूक्ष्म की अभिव्यक्ति हृदय स्पर्शी होती है। सूक्ष्म शक्ति का परिचय देते हुए कवयित्री क विचार है - "परन्तु हम हृदय से जानते हैं कि अध्यात्म के सूक्ष्म और विज्ञान के स्थूल क समन्वय जीवन को स्वस्थ और सुन्दर बनाने में भी प्रयुक्त हो सकता है। वह सूक्ष्म जिसक आधार पर एक कुत्सित से कुत्सित, कुरूप से कुरूप और दुर्बल से दुर्बल मानव वानर या वनमानुस की पक्ति में खड़ा न होकर सृष्टि में सुन्दरतम् ही नहीं शक्ति और बुद्धि में श्रेष्ठतम मानव के भी कन्धे से कन्धा मिलाकर उससे प्रेम और सहयोग की साधिकार याचना कर सकता।"[27] सूक्ष्म का परिचय भी उन्हें प्रकृति के प्रांगण में मिला और सूक्ष्म उनके गीतों में ही प्रभावी बन पड़ा। जीवन सत्य को उन्होंने काव्य का परिधान पहनाया और संगीत का माधुर्य प्रदान किया। प्रकृति के उन्मुक्त स्वरूप ने उनकी भाव भूमि को और भी विस्तृत किया। इनके महान कार्य में प्रकृति अपना सहयोग दे रही है। जीवन क्षणभंगुर है और प्रकृति भी यह सन्देश देती है, जो अन्यत्र इतने स्पष्ट रूप से नहीं मिलता है -

वह बताया झर सुमन ने, वह सुनाया मूक तृण ने
वह कहा बेसुध पिकी ने, चिर पिपासित चातकी ने[28]

प्रकृति के प्रति उनका अनुराग बाल्यावस्था से ही रहा। पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों से लेकर परिस्थिति जर्जर, दीन मनुष्यों तक से उनके अनुराग-बिम्ब उनके रेखाचित्रों में बिखरे पड़े हैं। वे लिखती है - "प्रकृति का शात रूप जैसे मेरे हृदय को एक चंचल लय से भर देता है, उसका रौद्र रूप वैसे ही आत्मा को प्रशान्त स्थिरता देता है। मेरे निकट आधी, तूफान, बादल, समुद्र आदि कुछ ऐसे विषय है जिन पर चित्र बनाना अनायास और बना लेने पर आनद स्थायी होता है।"[29] प्रकृति के प्रति यह अनुराग जन्मजात है और अपने भाव-बोध में व्याप्त करूणा के कारण, प्रकृति के कारण प्रकृति की अतश्चेतना के प्रति वे करूणा रखती हैं। उन्होंने प्राय. हर गीत में प्रकृति को स्थान दिया है। प्रकृति का प्रेरक व

साधना रत रूप ही उन्हें अधिक प्रिय लगा। उन्होंनेअपने जीवन दर्शन को स्पष्ट करने लिए भी प्रकृति का ही सहारा लिया है। प्रकृति ही उनकी प्रेरणा का स्रोत रहा।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक दृष्टिकोण :

"हमारी सामयिक समस्याओं के रूप भी छायायुग की छाया में निखरें है। राष्ट्रीय भावना को लेकर लिखे गये जय-पराजय के गान स्थूल के धरातल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियां में जो मार्मिकता ला सके हैं वह किसी और युग के राष्ट्र गीत दे सकेंगे यानही इसमें सन्देह है। सामाजिक आधार पर वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी तपः पूत वैधव्य का जो चित्र है वह अपनी दिव्य लौकिकता में अकेला है।"[30] छायावादी कवियों में राष्ट्रीयता का सर्वोत्कृष्ट रूप निखरा है। जितना इस काल की रचनाओं में राष्ट्रीयता का स्पष्ट वर्णन है, वह अब तक के हिन्दी साहित्य में दुर्लभ है। महादेवी का सारा जीवन भारतीयता से ओत-प्रोत है। इनके उपरोक्त विचार से यह स्पष्ट होता है कि ये अपने काल की रचनाओं को सर्वश्रेष्ठ मानती है, और कहती हैं कि दूसरे युग में राष्ट्रीय भावना इतनी जागरूक होगी इसमें सन्देह लगता है। इससे ये स्पष्ट होता है कि महादेवी जी राष्ट्र को विशेष महत्व देती थी। उन्हें यहा के कण-कण से प्यार है. तथा भारतीय सभ्यता के अवशेष अत्यन्त प्रिय हैंजैसे-अक्षत, चन्दन, अगरू, धूप, रक्त, शंख, घंट, घड़ि मन्दिर, प्रतिमा, पुजारी आदि। यदि प्रतीकात्मक रूप से देखा जाय तो ये हमारे जीवन को सादगी और पवित्रता से भर देते हैं। इनका और ही रूप महादेवी के काव्य जीवन में आया है -

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन।

या

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी

××× ××× ××× ××× ×××

उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।[31]

इन कविताओं से कई उद्देश्यों की पूर्ति होती है। भारतीय संस्कृति का गौरवान्वित रूप हमारे सामने आता है, पूजा-अर्चन के लिए साधना की आवश्यकता होती है। ईश्वर का निवास श्रम में है, मन्दिर में नहीं, हृदय में है, मस्जिद में नहीं। राष्ट्र की संकट मय स्थिति

में व्यक्ति को साधना मय जीवन बिताना चाहिए। कवयित्री दुखमय जीवन बिताने
ही राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य समझती है। काव्य के माध्यम से पवित्र वातावरण का निर्माण
एक मनोहर घटना है ऐसा करने से राष्ट्र गत सकीर्णता का बोध नही होता, केव
विशुद्धता और पावनता का दर्शन होता है। इन लोगों में कैसे राष्ट्रीय भावना उत्पन्न
हुई इस विषय में नगेन्द्र जी लिखते है - "छायावादी कवियों ने अपने जीवन में बहुत
से युद्ध और क्रान्तियाँ देखी है। क्रान्ति की विफलता ने ही उनके मानस को करुणा की
भावना से अभिसिक्त किया।"[32] इस प्रकार इन कवियों में तत्कालीन परिस्थितियाँ ही
राष्ट्रीय भावना को उत्पन्न करती है और वे राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हो जाते हैं। अपनी
मातृ भूमि की दशा पर वे क्रन्दन करती हुई कहती है -

कहता है जिनका व्यथित मौन
हमसा है निष्फल आज कौन ?
निर्धन के धन सी हास रेख
जिनकी जग में पाई न देख
उन सूखे ओठों के विवाद
में मिल जाने दो हे उदार
फिर एक बार बस एक बार।[33]

इनके काव्य के अध्ययन के फलस्वरूप यह पता चलता है कि भारतीय सांस्कृतिक शब्द (पूजा, अर्चना, चरण, धूलि, अक्षत, चन्दन, रोली, दीपक, मन्दिर, घड़ियाल) कविताओं में कई बार आये हैं। इनसे एक प्रकार की मन मोहकता पैदा होती है, आस्था शक्ति का सहज आभास होता है। इन उपकरणों का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व हो सकता है। मनुष्य एक है इसलिए आत्म तोषण की ऊर्जा भी एक ही होगी। पवित्र वातावरण का निर्माण किन्हीं भी साधनों से हो जाय उसके लिए राष्ट्र की सीमाएं बाधक नहीं बनेगी और इससे संसार का हर व्यक्ति प्रभावित होगा। कवयित्री का सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही मानवता वाद या विश्व ऐक्य को उत्पन्न करने वाला है।

समष्टि में जिस कवि की जितनी आस्था होगी उसका काव्य उसी मात्रा में संस्कृति प्रधान होगा। समय के परिवेश के साथ-साथ संस्कृति भी बदलती रहती है। आज हमें विश्व सस्कृति की आवश्यकता है। छायावादी कवियों ने इस आवश्यकता को

पूरा किया। आज के वैज्ञानिक युग में आस्था का अभाव कवयित्री को खलता है। इस सम्बन्ध में वे लिखती हैं - "मनुष्यता का सर्वांगीण विकास, मनुष्य के जीवन की दुः दैन्य-रहित गरिमा, शिवता और सौन्दर्य हमारा लक्ष्य है। और इस विराट शाश्वत का सृजन उस क्षण आरम्भ हुआ होगा जब आदिम युग के दो अहेरियों ने एक दूसरे के आघातों को देखकर अस्त्र फेंक दिये होंगे और एक दूसरे को गले लगा लिया होगा। ··तब आज के मंगल ग्रह खोजी वैज्ञानिक-युग की आस्था का अभाव क्यों हो।"[34] पुनः वे लिखती हैं - "माता जिस प्रकार आस्था के बिना अपने रक्त से सतान का सृजन नहीं कर सकती, धरती जिस प्रकार ऋतु के बिना अंकुर का विकास नहीं दे सकती, साहित्यकार भी उसी प्रकार गम्भीर विश्वास के बिना अपने जीवन को अपने सृजन में अवतार नहीं दे पाता।"[35] कवयित्री के उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्यकार भी जब सृजन करता है उस समय उसे समकालीन परिस्थितियों का ज्ञान और उससे आस्था होना चाहिए। महादेवी ने इसी विश्वास की लौ को प्रज्जवलित किया है -

दीप मेरे चल अकम्पित
धुल अचंचल।[36]

विश्व कल्याण के लिए साधना पथ में रत प्रकृति के साथ कवयित्री अपना पूरा-पूरा सहयोग देना चाहती हैं -

जलमय सागर का उर जलता
विद्युत ले घिरता है बादल।
बिखर-बिखर मेरे दीपक जल।[37]

अपने आत्मा के प्रकाश को महादेवी सारे संसार में बिखेर देना चाहती है। यह परम्परा भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। छायावाद के कवियों ने भारतीय संस्कृति को समस्त विश्व के लिए उपादेय बनाया है। इसके लिए इन्होंने वेदना को आवश्यक माना है, क्योंकि यह मानव जीवन में अद्भुत सतुलन पैदा करती है और मानव हृदय को जोड़ने के लिए अनन्त सूत्र का रूप धारण कर लेती हैं। वेदना के प्रति वे लिखती है -

तेरे बिना ससार में -
मानव हृदय श्मशान है,
तेरे बिना हे संगिनी।
अनुराग का क्या मान है।[38]

औरों की तरह वे कल्याण मार्ग की कठिनाइयों से घबड़ाने वाली नहीं है, इनका विच है कि त्याग तपस्या से ही संस्कृति का निर्माण सभव हो सकता है। आज का युग ए सामाजिक संस्कृति के लिए तड़प रहा है। आज का युग एक सामाजिक संस्कृति के लि तड़प रहा है। भौतिक उन्नति के साथ सांस्कृतिक उत्थान भी परमावश्यक है। क्योंि जिन समस्याओं को विज्ञान नहीं सुलझा सकता उन्हें सस्कृति आसानी से सुलझा सकत है। भारतीय संस्कृति कितनी उन्नत है और वर्मा जी कैसे उसे काव्य में स्थान दी है इस विषय में शीला व्यास लिखती है - "भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर वे संपूर्ण मानव जाति का उत्तराधिकार मानती है। हिमालय और भारतीय संस्कृति का अटूट सम्बन्ध मानते हुए वैदिक युग से अधुनातन युग तक उसके गहरे सम्बन्धों को बताती है।"[39] इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति पहले से ही विशाल है तथा इनकी राष्ट्रीय भावना का पता चलता है। राष्ट्र की सीमाओं के सजग प्रहरी हिमालय और उसके रक्षक वीर पुत्रों के नाम श्रद्धांजलि बंगाल के दुर्भिक्ष पर, बंग भूमि का प्रकाशन, स्वतंत्रत संग्राम में विदेशी शासन की कोप दृष्टि से सघर्षरत परिवारों का संरक्षण साक्षरता आन्दोलन की निजी स्तर पर चेष्टा आदि साधना पथ पर अविचलित व्यक्तित्त्व इनकी राष्ट्रीय सीमाओं को व्यक्त करता है। इस प्रकार इनका यही राष्ट्रीय व सांस्कृतिक दृष्टिकोण विश्व बन्धुत्व का भी संदेश देता है।

विश्व वेदना व सामाजिक चिन्तन :

महादेवी जीवन को साधनामय आधार देती हैं। इसीलिए उनका काव्य वेदना मूलक है। आत्म-साधना से मानव का व्यक्तित्व निखर उठता है लेकिन कवयित्री ने अपने दुःखवाद का दूसरा ही कारण दिया है - "जीवन में मुझें बहुत दुलार बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, उस पर पार्थिव दुःख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे उतनी मधुर लगने लगी।"[40] इनका व्यक्तिगत जीवन तो सुखी था यह सत्य है लेकिन इससे एक प्रकार की संकीर्णता का बोध होता है। जहा तक यह मन्तव्य है कि उच्च शिक्षा और ऊँचे संस्कार से युक्त व्यक्ति को व्यक्तिगत सुख-दुःख तुच्छ लगने लगते है, क्योंकि वह जीवन को सत्य समझकर अपनी भावनाओं का विश्व व्याप्त प्रसार कर लेता है। एक उदार हृदय व्यक्ति को अपने ही दुःख को अधिक समझना अच्छा नहीं लगता। इनके भी जीवन दर्शन के सम्बन्ध में

यही बात सत्य होती है। इनके दु:खवाद के पीछे निराशा की झलक नही सुखद भविष्य की कल्पना है। दुख उनको इसलिए प्रिय है कि वह उन्हें संवेदनशील बनाकर दु:खी प्राणियों के दुख में समभागी होने के लिए सक्षम बनाता है और इसी को उन्होंने कवि का मोक्ष भी कहा है। वे लिखती है - "दुख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूंद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुख सबको बाँटकर। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"[41] इनके गीतों में न तो रहस्यवाद मूल स्वर के रूप में आया है और न पारलौकिक पीड़ा ही। एक निश्चित और महान उद्देश्य की पूर्ति जो तत्त्व सहायक हो सकते है, इसको इन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है। कुछ लोग इन्हें प्रकृति की चतुर चितेरी कहते हैं तो कुछ रहस्यवाद की साधिका। लेकिन ये धारणाएं इनके काव्य में निहित सामाजिक-चेतना और विश्व-वेदना कासही मूल्यांकन करने में बाधक सिद्ध होती हैं। इन्होंने दु:ख के अखंड स्वरूप को लिया है। इस विषय में पत जी कहते हैं - "उनके काव्य का सर्व प्रमुख तत्व वेदना है। वेदना का आनन्द, वेदना का सौन्दर्य वेदना के लिए ही आत्म समर्पण है। वह तो वेदना के साम्राज्य की एक छत्र साम्राज्ञी हैं और कोई सुख उन्हें आत्म विस्मृत या आत्म-तन्मय होने को नहीं चाहिए।[42]

इस प्रकार विश्व में चारों ओर हाहाकार, चारित्रिक पतन, अनाचार, कुत्सित स्वार्थों के पीछे अन्धी दौड़ और निर्धनता के दयनीय चित्रों को देख कवयित्री के कोमल अर्न्तमन को गहरी चोट पहुँची और उसका हृदय रो पड़ा। इसीलिए इन्होंने विश्व वेदना को अपना पर्याय चुना। इन्होंने देखा कि पीड़ा में ही सफलता के बीज निहित हैं। जो विश्व संघर्षो से भाग कर एकान्त का आश्रय लेते हैं, ये उन्हें दुत्कारती हैं -

जिसको पथ शूलों का भय हो,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर[43]

विश्व वेदना और समष्टि सुख को ये इसलिए महत्व देती है कि इसी में अमरत्व है। मनुष्य जाति हमेशा रहेगी इसलिए एक मनुष्य का सुख तुच्छ है। समष्टि के अस्तित्व और कल्याण में अपनी आस्था प्रकट करती हुई लिखती है - "आज का मनुष्य अपने यथार्थ को आगामी मनुष्य के कल्पित सुखों को निश्चित करने के लिए छोड़ सकता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि जिसके लिए कल्याण खोजने में वह मिटा जा रहा है, वह मनुष्य कल भी रहेगा, परसों भी रहेगा और भविष्य में भी रहेगा। अंग्रेजी के 'दि किंग इज डेड लांग लिव दि किंग (अर्थात राजा मर गया, राजा चिरायु हो) कहावत की तरह अपनी इकाई में मनुष्य मरता है पर समष्टि की इकाई में वह अमर है।"[44] इस प्रकार महादेवी अपने आपको जलाकर विश्व के लिए उत्सर्ग करना चाहती हैं। वेदना उच्च-मानवीय भाव है। कवयित्री की वेदना विश्व वेदना बन गयी। इस विषय में पन्त जी लिखते हैं - "महादेवी का युग लोक-मुक्ति का दारिद्रय दैन्य, दुःख, अशिक्षा, अन्धकार तथा साशंकित स्त्री-पुरुषों की परस्पर सहानुभूति से पीड़ित असंख्यों की संख्या में विदीर्ण, लोक जीवन की मुक्ति एव पुनर्निर्माण का युग है।"[45]

उस समय युग चारों तरफ से घोर अन्धकार में डूबा हुआ था, इसलिए समाज के उपेक्षित वर्ग के कल्याण की उन्हें बड़ी चिन्ता थी और जिस सूनेपन का उन्होंने जिक्र किया है उसमें व्यापक पीड़ा तथा समाज-संवेदना निहित है। वह किसी एक व्यक्ति में केन्द्रित नहीं है। समाज के विस्तार में उसका विकास हुआ है। इसलिए जीवन यथार्थ के विरूप महादेवी जी जन सामान्य से विशेष रूप से जुड़ती है। आखिर यह जन सामान्य कौन है ? वही नाम रूप से परिचित, विशिष्टता से हीन जिसका कोई निश्चित उद्देश्य इच्छा नहीं है वही जन सामान्य हैं। इस वर्ग की यातना को महादेवी जी पहचानती हैं। वे लिखती है - "इस वर्ग का जीवन खुली पुस्तक जैसा रहता है। अतः महान ही नहीं तुच्छतम् आवश्यकता के अवसर पर भी उनकी कथा आदि से अन्त तक सुना देना सहज हो जाता है।"[46] इसलिए इनकी कथा के आदि और अन्त का कहीं अन्त नही होता। जन सामान्य में सबकी कहानी एक है, और उसका मूल भाव है पीड़ा। जीवन के शिकंजे में छटपटाते, आजीवन कारावास की-सी यन्त्रणा भोगते मनुष्यों की पीड़ा को इनकी करूण दृष्टि सस्मरणकेरूप में सुरक्षित रख लेना चाहती हैं। अभाव, निरक्षरता

व अज्ञान के पाटों में पिसतें इनकी एक-एक विशेषता को जिस कुशलता से ये अंकित करती हैं वह देखते ही बनता है। स्मृति की रेखाएँ, श्रृंखला की कड़ियाँ, अतीत के चलचित्र में इन्होंने चाहे जिसकी कथा को लिखा हे उन सबका कथ्य प्रायः एक है। इनके स्मृति चित्रों में समाज के सुविधा भोगी, सुधार का झण्डा उठाये घूमने वाले नेता वर्ग पर तीव्र व्यग्य है। अर्थ पिशाच बना समाज का शिक्षित, सुसंस्कृत वर्ग और कला की साधना में अपना जीवन होम करते सच्चे सरल ग्रामीणों का अर्न्तविरोध हो या समाज के अन्धे-न्याय पर बलि होती नारियों की करुण गाथा पर संवेदना हो। सर्वत्र कवयित्री की संवेदना चेतना रूप में प्रतिबिम्बित हुई है। इस आत्म प्रकाशन को वे सहज स्वीकार लेती है और कहती हैं - "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। .. मेरे जीवन की परिधि के भीतर खड़े होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते है, वह बाहर रूपान्तरित हो जायेगा।"[47] जन सामान्य के प्रति चेतना महादेवी ने अपने व्यावहारिक जीवन में उतारा है। हजारों दीन-दुखियों का साथ देना, गरीबों के बच्चों को मुफ्त पढ़ाना और जंगिया जैसे साधारण कुली का नाम अमर कर देना इन्हीं के वश की बात तो थी। पता नहीं ऐसे कितने गोण - व्यक्तित्त्व वाले स्त्री-पुरुषों का उन्होंने उदार किया होगा। वे कामना करती हैं कि प्राणि मात्र के हित में रत उनका जीवन दीप निरन्तर जलता रहे। समाज के गोण पात्र, ससार के दीन दुःखी मनुष्यों के दु.ख दर्द मिटाने के लिए आगे बढ़े, यही उनका विचार है -

दीप मेरे जल अकंपित
घुल अचचल,[48]
××× ××× ×××

इनके सामाजिक चिन्तन पर पन्त जी लिखते हैं - "महादेवी का युग लोकमुक्ति का दारिद्रय दैन्य दुःख, अशिक्षा, अन्धकार तथा साशंकित स्त्री-पुरूषों की परस्पर सहानुभूति से पीड़ित, असख्यों की सख्या में विदीर्ण, लोक जीवन की मुक्ति एवं पुर्ननिर्माण का युग है।"[49] क्योंकि महादेवी जीवन को साधनामय आधार देती हैं। इसीलिए इनका काव्य वेदना मूलक है, पर दुःख कातरता की भावना इन्हें सबसे प्रिय लगी दूसरे के दुःख को बटाते समय ये अपने आप को भूल जाती थी।

महादेवी सामाजिक चिन्तन में दूसरी जिस पहलू पर जोर दी हैं वह है भारतीय

नारी। भारतीय नारी चिर उपेक्षिता रही है। नारी हृदय होने के कारण ये नारी के दयनीय स्थिति को भली-भाँति समझती हैं। उनकी धारणा थी कि बिना नारी उत्थान के भारत, का सांस्कृतिक विकास अधूरा रहेगा। नारी के सम्बन्ध में की गई चर्चा का एक-एक शब्द अमूल्य है - "भारतीय पुरूष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नहीं हो सका। अन्य क्षेत्रों के समान साहित्य में भी उसकी स्वभाव गत संकीर्णता का परिचय मिलता रहा है।"[50] इनके उपरोक्त विचार से यह स्पष्ट होता है कि ये पुरूष वर्ग पर जमकर प्रहार करती हैं, क्योंकि पुरूषों ने हमेशा स्त्रियों का शोषण किया है। नारी की सामाजिक स्थिति को लेकर महादेवी बहुत व्यस्त, चिन्तित और व्यग्र हैं। नारी विषयक संवेदनात्मक दृष्टिकोण और उसकी मुक्ति का आह्वान तो इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। बर्बरता, अत्याचार व सत्ता के मद में भूलें पुरूष ने समाज की खाल ही उधेड़ दी है। "मोहन नारि-नारि के रूपा" के समान नारी की सबसे बड़ी शत्रु नारी है। इस तथ्य का भी व्यंग्यपूर्ण निदर्शन है। सबिया को अपने घर में नौकरी पर रख लेने पर एक परिचित वकील की पत्नी को अच्छा न लगने पर वे कहती है - "यदि दूसरे के धन को किसी न किसी प्रकार अपना लेना चोरी है तो मैं जानना चाहती हूँ कि हममें से कौन सम्पन्न महिला चोर पत्नी नहीं कही जा सकती। एक पुरूष के प्रति अन्याय की कल्पना से ही सारा समाज उस स्त्री से प्रतिशोध लेने को उतारू हो जाता है और एक स्त्री के साथ क्रूरतम अन्याय का प्रमाण पाकर भी सब स्त्रियाँ उसके अकारण दण्ड को अधिक भारी बनाये बिना नहीं रहती।"[51] वे लिखती है -

> यही है वह विस्मृत संगीत, खो गई है जिसकी झंकार,
> यही सोते हैं वे उच्छवास, जहां रोता बीता संसार।"[52]

इस प्रकार भारतीय नारी के करूणापूर्ण चित्रों को आंकने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। वेश्यात्व के अभिशाप से दग्ध नारियों के आहट मातृत्व को जब धोखा दिया गया तब ये कह उठती हैं - "यदि ये स्त्रियाँ अपने शिशु को गोंद में लेकर साहस से कह सके कि बर्बरों? तुमने हमारा नारीत्व, पत्नीत्व सब ले लिया पर हम अपना मातृत्व किसी प्रकार न देंगी तो समस्याए सुलझ जायें।"[53] इस प्रकार इनके रेखाचित्र में विद्रोही वाणी भी हैं, सामाजिक चेतना भी। अपने रेखा चित्र में इन्होंने नारीत्व के विविध रूपों का चित्रण किया हैं।

सक्षेप में इन्होंने अपने व्यतीत जीवन की झांकियों में अभाव ग्रस्त, भर्त्सनाओं के शिकार कुम्हार, कुजड़े, भृत्य वर्ग आदि तथा पुरुष की कामुकता की शिकार और सामाजिक बन्धनों में जकड़ी नारी की आशा-निराशा एवं उसके अन्तर-बाह्य के ऊहापोह का भाव पूर्ण चित्रण किया है। इनकी नारी विषयक दृष्टि सम्पूर्ण मानवता से युक्त है। पन्त जी इस विषय में लिखते हैं - "उन्होंने नारी को उसका प्रतीक बनाकर, उसे मध्ययुगीन देह बोध तथा राग-द्वेष की संकीर्ण कामान्ध नैतिक कारा से मुक्त कर, नवीन राग चेतना की सौन्दर्य शिखा के रूप में अपने मुक्त, उन्नत भाव स्वप्नों से उसकी नवीन मूर्ति निर्मित कर, व्यक्ति मोह के धरातल से उठाकर, विस्तृत सामाजिक धरातल पर लोक जीवन-मगल कर्म में सलग्न मानवी के रूप में प्रतिष्ठित किया है।"[54] यामा में लिखती हैं -

तेरे बिना संसार में मानव हृदय श्मशान है,
तेरे बिना हे संगिनी! अनुराग का क्या मान है ?[55]

एक तरह से महादेवी जी का सामाजिक चिन्तन इनके व्यवहारिक जीवन पर भी लागू होता है। क्योंकि इन्होंने समाज की सेवा निस्पृह भाव से की है। इनके काव्य, तत्व-चिन्तन और साहित्य समीक्षण में विरोध नहीं है। विषम परिस्थितियों से आघात खाकर ही महादेवी ने अपने काव्य में उत्सर्ग मयी प्रवृत्ति को जन्म दिया है। इस स्थिति का वर्णन विश्वम्भर मानव ने यों किया है - "यदि उन्होंने अपने जीवन की विषम परिस्थिति से आघात खाकर अपने हृदय राग को सारे विश्व के लिए अर्पित कर दिया तो यह साधारण उपलब्धि नही है।"[56]

महादेवी का काव्य और उनका शिल्प-विधान :

किसी काव्य के कलात्मक होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका रचनाकार सुकवि हो। लेकिन सुकवि कौन है यह तो विवाद का ही विषय है। हम किसी को प्रतिभा के बल पर, किसी को विद्वता के नाते, किसी को भावुकता की वजह से सुकवि कह सकते हैं, लेकिन इन तीनों का संयोग किसी तुलसी, किसी रवीन्द्र, किसी प्रसाद, और किसी महादेवी में ही मिल पाता है। कला पक्ष अभिव्यक्ति पक्ष है लेकिन इसे जानने के लिए उसके विषय वस्तु को समझना आवश्यक हैं। जिसके वे क्षेत्र हैं। महादेवी के हृदय से निकले गीतों का आलम्बन ब्रह्म हैं जो निर्विकार रहने पर भी सभी परिवर्तनों की आश्रय-भूमि हैं। इनकी कला का जन्म अक्षय सौंदर्य मूल से और पावन उज्जवल आंसुओं के अंतर से हुआ है। इस विषय में रामचन्द्र शुक्ल लिखते है-"छा जिस आकांक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यंजना की रोचक प्रणाली का विकास था।"[57] अभिव्यंजना शिल्प की रोचक प्रणाली के विकास से ही हम कवि की शिल्प साधना की पहचान नहीं कर सकते हैं बल्कि कविताओं को विश्लेषित करके कविता के ताने-बाने की पहचान करके ही उसकी प्रकृति को जान सकते हैं। इसलिए हमें यह भी दिखाई देता है कि कथ्य और अभिव्यंजना शिल्प के पारस्परिक सम्बन्ध के आधार पर कविताएं दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की कविताए वे होती हैं जो कवि में अन्तरावेग से स्फुरित होती हैं। ऐसी कविताओं में कथ्य और अभिव्यंजना शिल्प अत्यन्त संश्लिष्ट होते हैं। दूसरे प्रकार की कविताएं वे होती हैं, जिन्हें कवि प्रयत्नपूर्वक बनाता है। इसमें सश्लिष्टता कुछ कम होती है। पहले प्रकार की ही कविताए छायावादी काव्य में दिखायी देती है। अभिव्यक्ति के स्तर पर थोड़ी बहुत बनावट तो सर्वत्र होती है परन्तु केशवदास व रीति काल के कुछ अन्य चमत्कारी कवियों जैसी शिल्पगत बनावट एव चमत्कार सर्वत्र नहीं मिलती।

महादेवी के काव्य का कलापक्ष उतना ही सम्पन्न है जितना उनका भाव पक्ष। इनके काव्य की सम्पन्नता स्वाभाविकता में है। उनकी दृष्टि में कविता हृदय की अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसलिए जो लिखती हैं वह एक ही बार लिखती है। इसीलिए इनके काव्य में कृत्रिमता का आभास कम मिलता है। इनके काव्य के कलापक्ष में शब्द-चयन, प्रतीक, बिम्ब, अलंकार आदि के अतिरिक्त छन्द विधान का विश्लेषण भी अपेक्षित है। इन्होंने स्थूल-सूक्ष्म सभी विषयों को अपना उपकरण बनाया है। इनके काव्य में कला का उत्कर्ष ऐसा है जहाँ से वह ज्ञान को सहायता दिया है। आगे हम इन पहलुओं पर अध्ययन करेंगे।

काव्य-भाषा

छायावाद काल की कविता ने हिन्दी काव्य को एक अभिनव कलात्मक परिष्कार दिया, जो हिन्दी साहित्य में अकेला है। शब्द-विन्यास की सुन्दर, कल्पना-प्राचुर्य, अनुभूति परक काव्य और प्रौढ़ता उसकी देन है। हिन्दी के प्राय. सभी बड़े साहित्यकारों ने खड़ी बोली को काव्योपयोगी बनाने में बड़ा श्रम किया है। लेकिन प्रसाद में वचन की गड़बड़ी, पन्त में स्त्रीलिंग व पुल्लिग का विचित्र सम्मिश्रण, निराला में मनोकूल समास और शब्द निर्माण पाया जाता है, लेकिन महादेवी में प्रारम्भ में कुछ असावधानियाँ हुई है, पर वे नाम मात्र की हैं। इनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, मधुर और कोमल हैं। उसमें कहीं भी कर्कशता नहीं है। भाषा जैसे माधुर्य गुण के खराद पर उतार दी गयी है। इतना होते हुए भी मात्राओं की पूर्ति और तुक के आग्रह के लिए कुछ शब्दों का अंग-भंग तथा रूप परिवर्तन हो गया है। यथा- बतास, अधार, अभिलाषा, ज्योति, कर्णधार आदि। केवल कविता में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का कहीं-कही प्रयोग है। जैसे - बैन (बचन) नैन (नयन) बयार (वायु) हौले (धीरे)। कहीं जोड़ के लिए "जोर" लिख दिया है कई स्थानों पर "यह" शब्द का प्रयोग बहुवचन के लिए करती हैं।

साहित्य जगत का एक सत्य यह भी है कि जब कोई प्राणी पहले लेखनी उठाता है, तब उसकी रचनाओं में भाव कम, शब्दों का बाहुल्य अधिक रहता है। फिर भाव और भाषा में सन्तुलन हो जाता है। सधिनी में कवयित्री लिखती है - "सारांश यह है कि यदि कविता के लिए विशेष शब्द-चयन आवश्यक है, व्यजित अर्थ-बोध की भाव परिणति अनिवार्य है तो शब्द एक विशेष क्रम में छदोचित रहेंगे ही।"[58] इनकी भाषा तत्सम बहुला तो है ही किन्तु उर्दू, बंगला, अग्रेजी स्थानीय बोली और ब्रज भाषा से शब्द लिए गये हैं। ब्रज भाषा व स्थानीय बोली के निपट, निठुराई, हेर, धोरे ठौर, निठुर, काजर, कजरारे, मरम सपने मिसरी हठीला[59] उर्दू के नशा, दीवानी, टाग, प्याले, अरमान राह साकी[60] बंगला के सकाल, भेला तथा अग्रेजी के रूम आदि शब्द मिलते है। इन्होंने भी अपने काव्य में अपने ढंग के नये शब्दों को गढ़ा है। तिन-रंगे, ढरकीले, निधियोमय, रंगोमय, घड़ियोमय (महादेवी वर्मा)[61] आदि। इस प्रकार छायावादी कवियों की कविता में महत्व शब्दों का नही, शब्द प्रयोग का है। महादेवी वर्मा में छायावादी काव्य-भाषा की सभी उपलब्धियां दिखायी पड़ती है। यही कारण है कि अमूर्त शब्दों का प्रयोग इन्होंने ज्यादा किया है।

"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी" की उपचार वक्रता मूर्त कम, अनुभूतिपूर्ण और अधिक अलकृत हैं। इनके अपने विशिष्ट शब्द बहुत कम हैं। और बाकी शब्द अन्य छायावादी कवियों से लिए गये हैं। साहित्यकार की आस्था में इसे व्यक्त करती हुई दिखायी देती है - "छायावाद ने नये छन्द-बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नहीं रह सकती थी। अत कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तौल, कांट-छांट कर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं कों कोमलतर कलेवर दिया है।"[62] यही कारण है कि "बातास" का "बतास" "आधार" का "अधार" ज्योति का ज्योती, कर्णधार का कर्णाधार लिखने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। लेकिन ये शब्द काव्य की गति में मंदता के बजाय स्वाभाविकता ला देते हैं। इस संदर्भ में सुरेश चन्द्र गुप्त लिखते हैं - "उन्होंने छायावादी कविता की सूक्ष्मता और कोमलता के अनुरूप उसकी भाषा में संकेतात्मकता के समावेश को स्वाभाविक माना है।" इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भावरूप चाहता है, अत. शैली का कुछ संकेतमयी हो जाना सहज संभव है।"[63] इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि इनकी कविता में शब्द और अर्थ के सामंजस्य पर ध्यान रखा गया है और रूढ़ शब्दों को नवीन रूप दिया गया है। शंभूनाथ सिंह इस विषय में लिखते है - "छायावादी कवियों ने अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दों को ग्रहण किया अत॰ वर्ण संगीत हिन्दी भाषा की विकसित प्रकृति के अनुरूप नहीं था। फिर भी उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल वर्ण संगीत लाने के लिए तत्सम रूपों में बहुत कुछ हेर-फेर किया।"[64] इन प्रभावों के अतिरिक्त महादेवी वर्मा में भाषा की भावात्मकता ज्यादा दिखायी देती है। इन्होंने आत्म प्रकाशन पर ही ध्यान रखा। यदि इस बीच नवीन शब्दों का प्रयोग हुआ तो वह सयोगवश ही हुआ। अतः इनकी भाषा कहीं शुष्क व शिथिल नहीं है प्रसाद व माधुर्य गुण इनकी भाषा की अपनी विशेषताएं हैं। पुनरुक्ति व अश्लीलत्व आदि दोषों से सर्वथा मुक्त है। इस विषय में दीनानाथ शरण लिखते हैं - "महादेवी ने खड़ी बोली में कविताएं लिखी हैं। उनकी भाषा में कोमलता संगीत लय और प्रवाह है।"[65]

<u>छन्द-योजना</u>

महादेवी का कला पक्ष छन्द योजना से अनुप्राणित है। महादेवी का काव्य प्रगीत शैली के माध्यम से पाठकों के समक्ष आया है। लेकिन केवल यही आवश्यक नहीं है कि वे छन्द की चर्चा विस्तारपूर्वक करें। लेकिन "छायावादी कवियों द्वारा छन्द प्रयोग की प्राचीन परिपाटी के त्याग, मुक्त छन्द के प्रयोग, मात्रिक छन्दों के नियमों के शिथलीकरण

और नवीन छन्दों की सृष्टि के प्रयास को देखकर उन्होंने भी प्रसंगवश छन्द विवेचन किया है।"[66] उनका विचार है कि भाषा विशेष के छन्दों को अन्य भाषा ग्रहण करके सफल नहीं हो सकती। इन्होंने छायावादी कविता में {खड़ी बोली} ब्रज भाषा काव्य में प्रयुक्त छन्द को अनुपयुक्त माना है। वे छायावाद नामक अपने लेख में लिखती हैं - "छन्द तो भाषा के सौन्दर्य की सीमाएं हैं, अत· भाषा-विशेष से भिन्न करके उनका मूल्यांकन असम्भव हो जाता है। वे प्रायः दूसरी भाषा की सुडौलता को सब ओर से स्पर्श नहीं कर पाते, इसी से या तो उसे अपने बन्धनों के अनुरूप काट-छाँट कर बेडोल कर देते हैं या अपनी निश्चित सीमा रेखाओ को कहीं दूर तक फैलाकर और कही संकीर्ण कर अपने नाद-सौन्दर्य सम्बन्धी लक्ष्यसे ही बहुत दूर पहुँच जाते हैं।"[67]

इनका विचार यह है कि उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओं के छन्दों को उसी तरह तो ग्रहण नही किया जा सकता। कही-कही छन्द भाषा के अनुसार रूढ़ हो जाते हैं लेकिन क्या सभी छन्दों के साथ यह लागू हो सकता है। मेरे विचार से यह अनुपयुक्त ही है, यह तो कवि की क्षमता पर निर्भर है। छायावादी अन्य कवियों की तरह महादेवी का भी सगीत शुद्ध भारतीय है। महादेवी की स्वाभाविक रुझान और क्षमता, पंक्ति सौन्दर्य को तराशने की है। और इनमें शिल्प निखरने की सूचना भी है। महादेवी के लय का पैमाना भी काफी छोटा है। बड़ी लय की आवेगात्मकता उनमें नहीं है। 'नीरजा' की सृष्टि के साथ गीति-काव्य की परम्परा अपने पूर्णता पर दिखायी देती है, लय या गीतों की परम्परा यों तो सीधे वेदों से स्थापित की जा सकती है। लेकिन हमारे भाषा जगत में सबसे पहला स्वर-सन्धान विद्यापति ने किया। इसके बाद कबीर ने ही इसको सभाला, तुलसी, सूर भी इसमें पीछे नहीं थे। अर्वाचीन गीति-काव्य पदावली साहित्य से भिन्न कोटि की है। वहाँ लय से सब पूरा हो जाता है। आज का गीति काव्य अंग्रेजी और बगला गीति काव्य की प्रतिस्पर्धा में खड़ा किया गया। इसमें पिंगल का अनुकरण है, अपनी भाव भंगिमा है, अपना स्वर-संशोधन हैं। इनकी रचनाओं में संक्षिप्तता, स्वर माधुर्य, भाव विभूति और आत्माभिव्यंजन के सभी अनिवार्य गुण एकत्र है। महादेवी को शास्त्रीय संगीत का भी विशद ज्ञान था। उनके इस कथन से संगीत के ज्ञान का पता चलता है - "छायावाद ने नये छन्द-बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति का जो रूप देना चाहा, वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता सह नहीं सकती थी। अतः कवि

ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाट कर तथा कुछ नये शब्द गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया।"[68] यह कथन इनके संगीत ज्ञान के साथ उसके प्रति सजगता का परिचय देता है। और गीतों के लय विधान में इन्होंने इसी का उपयोग किया है।

महादेवी ने अपने काव्य में वर्णिक व मात्रिक दोनों छन्दों का प्रयोग किया है, और यही मात्रिक छन्द गीतों में परिणत होकर नाना रूप धारण किये हैं। और मात्रिक छन्दों में ही प्राचीन लयों में नवीनता लाकर नये छन्दों का निर्माण किया है। डॉ0 पुत्तु लाल ने इसे नव विकर्षाधार कहा है।"[69] इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

मधु बेला है आज	11	मात्राए
अरे तू जीवन पाटल फूल	16	मात्राएं
आई दुख की रात मोतियों की देने जयमाल	16-11	मात्राएं
सुख की मन्द बतास खोलती पलकें दे दे ताल	16-11	मात्राए
डर मत रे सुकुमार	11	मात्राएं
तुझे दुलराने आये शूल	16	मात्राएं
अरे तू जीवन पाटल फूल।"[70]	16	मात्राएं

डॉ0 पुत्तु लाल ने सिद्ध किया है कि "11 और 16 मात्राओं का लय निपात एक है। 16 मात्राओं का अन्तिम लय निपात §11 मात्राएं§ सरसी §26 मात्राओं§ के अन्तिम लय निपात §11 मात्राओं§ से मिलता है। अत. उपर्युक्त मात्रा क्रम में लय मैत्री सम्भव हुई।"[71] इसके अलावा मात्रिक छन्दों में सम मात्रिक, अर्ध सम मात्रिक, विषम मात्रिक, रूपमाला, श्रृगार, चौपाई, गीतिका, विष्णु पद, सरसी, मनोरम, दिगपाल आदि तथा वर्णि छन्द में सवैया, सारक, पियूष आदि तथा मुक्त छन्द का भी प्रयोग किया है। मुक्त छन्द वैसे तो छायावादी कवियों की देन ही कही जा सकती है। इसको महादेवी ने अपने काव्य में स्थान दिया है -

मुख जोह रहे हैं मेरा
पथ में कब से चिर सहचर
मन रोया ही करता क्यों
अपने एकाकी पन पर।[72]

इसके अलावा महादेवी ने चौपाई व ताटक को मिलाकर एक निराले छन्द की रचन कर डाली है। और उसे मिश्रित या अभिनव छन्द की संज्ञा दी है -

मृग मरीचिका के चिर पथ पर	16
सुख आता प्यासों के पग पर	14
रुद्ध हृदय के पढ लेता कर	14
गर्वित कहता मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता[73]	22

इसके अलावा इनके छन्दों में कही-कही नियम का उल्लघन भी हुआ है। यथा मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त अनेक लोकगीतों में महादेवी जी ने नवीन प्राण प्रतिष्ठा की हैं। गीतों में टेक की विविधता से एक प्रकार की नूतनता, मौलिकता और मुग्धता भरी हुई है। इनमें जो कोमलता है वह अवर्णनीय है। केवल स्वर-साधन से उनके प्रभाव का ज्ञान हो जाता है। 'नीरजा' से ज्यादा 'सान्ध्यगीत' और उससे ज्यादा 'दीपशिखा' में इनकी स्वर लहरी कोमल हुई हैं। इस विषय मे ये 'सधिनी' मे लिखती है - "सारांश यह है कि यदि कविता के लिए विशेष शब्द चयन आवश्यक है, व्यंजित अर्थ-बोध की भाव परिणति अनिवार्य है तो शब्द एक विशेष क्रम में छंदोचित रहेंगे ही।"[74] इस प्रकार महादेवी अपने काव्य में छद की सार्थकता को स्वीकार करती हैं।

महादेवी का गीत अन्य छायावादी कवियों की लीक पर नहीं चलता। प्रसाद व निराला ने भी गीत लिखा लेकिन वे कविता पहले थे गीत बाद में। लेकिन महादेवी का गीत - गीत होकर ही रह जाता है, जो कविता की शर्तो को छोड़कर लिखा हुआ है। छायावाद यहा रूढ़ होने लगा। महादेवी के आते-आते छायावाद का नशा चढ़ चुका था। इसलिए ऐसा लगता है कि आँसू छन्द की वश बेलियाँ इनके काव्य मे दिखायी देती हैं। महादेवी वस्तुतः भाव को काटकर उसे उपयुक्त साहित्यिक उपकरणों में ढाल देती है। इसी कारण वह सघन कविता प्रतीत होती है। इस प्रकार इनकी कविता में चरणों तथा पदों का विन्यास भाव-लय के अनुरूप हुआ है। इन्होंने अनेक उर्दू छन्दों का हिन्दीकरण भी किया है। भक्ति काल में सभी पंक्तिया सम मात्रिक तथा सम तुकान्त होती थी, लेकिन महादेवी ने शास्त्रीय आधार का परित्याग करके छन्द विधान में अपनी स्वच्छन्दतावादी दृष्टि का परिचय दिया है। इस विषय में शीला व्यास लिखती है कि

- "महादेवी के काव्य के अन्तर्गत छद और लय का शिल्प के संदर्भ में विस्तार से विचार किया है। वे भाषा की प्रकृति को लयवती मानती हैं। उच्चारण, शब्द और अर्थ में समन्वय स्थापित करता है। . . वह छद या छद हीनता दोनों स्थितियों के प्रति प्रवाहात्मकता आवश्यक नहीं मानती, उनका काव्य बधनमुक्त और निर्बन्ध दोनों प्रकार का हो सकता है।"[75] इस प्रकार महादेवी का छन्दों को नवीन रूप भी देना समयानुकूल था। तथा महादेवी की छन्द योजना विशिष्ट स्थान रखती है।

अलंकार-योजना ·

महादेवी के अभिव्यजना की सफलता हम उनके अलंकार-विधान में भी देख सकते हैं। उनके काव्य में अलकारों का शुष्क प्रयोग नही हुआ है, इन्होंने अलंकारों का प्रयोग रूप-साम्य की दृष्टि से न करके प्रायः प्रभाव साम्य की दृष्टि से किया है। नवीन सौन्दर्य-बोध को अभिव्यक्ति देने के लिए महादेवी ने पुराने अलकारों की नवीन रूप से उद्भावना की है और नवीन अलकारों की सृष्टि भी की हैं। उनके प्रिय अलंकारों में उपमा, रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, मानवीकरण तथा विशेषण-विपर्यय हैं। दीनाना शरण इनके अलंकार योजना के विषय में लिखते है - "अलंकार भी महादेवी की कविताओं में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, विरोधाभास, ध्वन्यार्थ व्यजना मानवीकरण आदि अनेक अलकारों से इनकी कविता कामिनी सज उठी है।"[76] इनकी कविता में जो पुराने भी उपमान हैं वे उपयोग की नवीनता के कारण नवीन हो गये हैं। उनका पुराना रूप छट गया है। यथा -

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ।[77]

इसमें उपमान, प्रतीकों में रूपान्तरित होकर कवयित्री के सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हैं। इसमें प्रेमी प्रेम-पात्र के लिए चातक-घन, शलभ-दीपक और बुलबुल-फूल के उपमानों का उपयोग हुआ है। इसमें स्थूल या एकांगी तुलना नही है बल्कि पूरा कार्य व्यापार है। महादेवी जी इस विषय मे स्वय लिखती हैं - "सौन्दर्य चिर-परिचय में भी नवीन है। पर विरूपता अति परीचय मे नितान्त साधारण बन जाती है। इसी से सौन्दर्य की रहस्यानुभूति ही अन्तहीन काव्य-पक्ष मे नये परिच्छेद जोड़ती रहती है।"[78] इसलिए अर्न्तमुखी काव्य हो जाने से अमूर्त प्रस्तुत बहुत आयें हैं, और उसे समक्ष दिखाने के लिए

इन्होंने मूर्त प्रस्तुत का प्रयोग किया है। यथा -

वे निर्धन के दीपक-सी
बुझती-सी मूक व्यथाए।[79]

इससे यह बात समझ मे आती है कि इन्होंने प्रस्तुत विधान का ढाँचा बनाकर काव्य में अप्रस्तुत विधान का समावेश किया है। महादेवी के काव्य में रूपकों का समृद्ध भण्डार भरा है। विरह-साधिका होने के कारण विरह-सम्बन्धी रूपकों की संख्या ज्यादा ही मिलती है। इस सन्दर्भ में "विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात"[80]। प्रिय सान्ध्य गगन मेरा जीवन[81] "शलभ मैं शापमय वर हूँ।"[82] इनके रूपकों में स्थिति साम्य, धर्म साम्य, रूप साम्य का अभाव है, कहीं-कही शरीरी रूप साम्य का अभाव है। इनके काव्य और व्यावहारिक जीवन में उपमा का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ये लिखती है -

मोम-सा मन धुल चुका अब
दीप-सा तन जल चुका है।[83]

उपमा, रूपक, अनुप्रास, समासोक्ति के साथ-साथ वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, प्रतीप निश्चय, श्लेष, वीप्सा, पुनुरूक्त भास के साथ इन पर भी मानवीकरण की विशेष छाप है। मानवीकरण का एक उदाहरण देखिये -

कम्पित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्य स्नात,
भीगी अलकों के छोरों से,
चूती बूँदे कर विविध साथ
रूपसि तेरे घन-केश-पास।[84]

उपरोक्त अलकारों में से इनके काव्य में विभावना व विरोधा भास भी दिखायी देते हैं। इनके विभावना में कल्पना शीलता इतनी ज्यादा दिखायी देती है कि अनुभूति प्रायः गायब हो जाती है। वह छायावाद के रूढ़ होकर कल्पनाशील पच्चिकारी बन जाने के अनुकूल ही है -

वृन्त बिन नभ में खिले जो
अश्रु बरसाते हँसे जो
तारको के वे सुमन
मत चयन कर अनमोल रीं।[85]

विरोधमूलक अलकारो के अतिरिक्त इनके काव्य में उल्लेख, प्रौढ़ोक्ति, मुद्रा, विषम, क लिग, तद्गुण, उत्तर आदि अलकार भी मिल जायेंगे। इनकी अलकार प्रियता के विष में इन्द्रनाथ मदान लिखते है - "अलंकारों के क्षेत्र में महादेवी ने बड़ी सुरुचि का परिचय दिया है। काव्य में अलंकारों का विधान भावों को रमणीयता प्रदान करने के लिए होता है, या फिर उन्हें तीव्र या स्पष्ट करने के लिए।"[86]

प्रतीक-विधान :

प्रतीक पद्धति महादेवी के काव्य में अनूठे ढंग से समावेशित है। रश्मि, नीहार, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा आदि रचनाएं प्रतीकात्मक है। उनके काव्य कुछ प्रतीक परिचित होने के कारण बुद्धि गम्य है तो कुछ अपरिचित होने के कारण बाधा डालते हैं। लेकिन कुछ अनेक अर्थों में प्रयुक्त होकर अर्थ में व्याघात उत्पन्न करते हैं। प्रतीक के माध्यम से कवि कम शब्दों के दारा अधिक वक्तव्य वस्तु को अभिव्यक्त करता है। द्विवेदी युग के बाद जब हम छायावादी कविता की ओर अग्रसर होते है तो वह प्रतीकों की दृष्टि से सम्पन्न दिखायी देता है। सह सम्पन्नता मुकुटधर पाण्डेय से ही शुरू होती है। वे लिखते है - "यदि यह कहा जाय कि ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर साकेतिक चिन्ह मात्र रहा करते हैं तो कोई अत्युक्ति नही होगी।"[87] इससे यह स्पष्ट है कि छायावादी कविता अभिधात्मक प्रयोग के आगे बढ़ी है। इस काल के कवियों में व्यक्तिकता बहुत है इसीलिए वे उसकी विशिष्टता को अक्षुण्ण रखकर अभिव्यक्ति करते हैं। महादेवी के काव्य मे प्राय: सभी प्रतीक कुछ न कुछ पाये जाते है। लेकिन इन्होंने भी अन्य कवियों की तरह रूढ़ प्रतीकों की अपेक्षा नवीन प्रतीकों का प्रयोग किया है। परन्तु रूढ़ प्रतीक भी इनके काव्य मे पाये जाते हैं। चातक, जलद, शलभ, दीपक, फूल, बुलबुल[88] कीर पिंजर, तिमिर, राका[89] आदि रूढ़ परम्परागत प्रतीक है। किन्तु इनके रूढ़ प्रतीकों में नवीनता और ताजगी भी है। इनकी निम्नवत पंक्तियों में प्रयुक्त प्रतीक और उनके अर्थ तो परम्परागत हैं किन्तु उनका सन्दर्भ और उनके दारा अभिव्यक्ति होने वाली सवेदना नयी है -

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ,

एक होकर दूर तन से छाह वह चल हूँ,

दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ। [90]

इन प्रतीकों की योजना में आराध्य और आराधक के एकाकार होकर भी विमुक्त होने का जो नया विरोध है वह इनका नया सदर्भ है और इस विरोधाभास-मयी स्थिति में जो व्याकुलता व्यंजित होती है वह इनके द्वारा व्यक्त होने वाली नयी संवेदना है। रूढ़ प्रतीकों की योजना के द्वारा नवीनता की सिद्धि का दूसरा प्रकार है, रूढ़ प्रतीकों को नया अर्थ प्रदान करना।

छायावादी कवियों ने प्रकृति के हर उपादानों को प्रतीक बनाया है। महादेवी के प्राकृतिक प्रतीक के विषय में कृष्ण चन्द्र वर्मा लिखते हैं - "महादेवी ने भी भावों की सूक्ष्म व्यजना के लिए प्राकृतिक उपकरणों को प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। उदाहरण के लिए वर्षा (करूणा) ग्रीष्म (क्रोध) पतझर (दुःख) वसन्त (आनन्द) रश्मि (सुख) आदि।"[91] प्रकृति से लिए गये इनके उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

निर्घोष घटाओं मे छिप, तड़पन चपला की सोती,

झंझा के उन्मादों मे, घुलती जाती बेहोशी।[92]

प्रस्तुत उद्धरण में निर्घोष घटाए गंभीरता की, चपला की तड़प, पीड़ा कसक को, झझा का उन्माद, तीव्र भावावेग को प्रतीकित करते हैं। ये प्रतीक प्रायः अन्य छायावादी कवियों में भी पाये जाते हैं। जैसे - झंझा प्रसाद और महादेवी दोनों में पाये जाते हैं। इनमें परम्परागत व नवीन दोनों प्रतीक मिलते हैं।

इसके अलावा छायावाद सास्कृतिक (पौराणिक) प्रतीकों से भी युक्त है। लेकिन "महादेवी वर्मा में पौराणिक, धार्मिक प्रतीक नगण्य है।"[93] महादेवी वर्मा का काव्य इससे अछूता ही रहा। इसके अलावा इन्होंने ललित कलाओं से भी प्रतीक ग्रहण किया है और ये नये क्षेत्र की रचना करते हैं। इसका प्रयोग इन्होंने इतना ज्यादा किया है कि ये रूढ़ बन गये है। यथा -

बिखरे हैं तार आज, मेरी वीणा के मतवाले[94]

इसमें वीणा हृदय का प्रतीक है और यही हृदय की रूढ़ प्रतीक बन गयी।

छायावादी कवि अपने प्रतीकों के माध्यम से अपनी लौकिक व अलौकिक रति भावना को प्रकट करते हैं। डॉ0 नगेन्द्र दीपशिखा की आलोचना करते हुए लिखते है कि - "अज्ञात प्रिय के भाव के मूल में तो स्पष्टतः काम का स्पन्दन है ही, जलने की भावना में असन्तोष और अतृप्ति भावना भी अनिवार्य है। वास्तव में सभी ललित कलाओं के विशेषतः काव्य के और उससे भी अधिक प्रणय काव्य के मूल में अतृप्त काम की प्रेरणा मानने मे आपत्ति के लिए स्थान नहीं है।[95] और इनकी कविताओं में यही काम प्रतीक, आध्यात्मिक प्रतीकों में बदल गये हैं। इनकी तुम और मैं कविता में भी विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से आत्मा - परमात्मा के सम्बन्धों का निरूपण है। "बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ"।[96] ये तो आध्यात्मिक सम्बन्धी प्रतीक हैं। लेकिन इसको दाम्पत्य या प्रेम व्यापार के प्रतीकों द्वारा अधिक व्यक्त किया गया है। दाम्पत्य के अतिरिक्त मेघ, सागर, सरिता, यात्रा और यात्री सम्बन्धी प्रतीकों को इन्होंने रहस्यात्मक प्रतीक बना दिया है। उन्होंने दीपक, स्वर्णलता, मकड़ी जाल, प्रलय, सान्ध्यगगन, दर्पण, घटा, नभ, रात, तेल, प्रकाश आदि तमाम प्रतीकों को रहस्यात्मक बना दिया है। इन्होंने कुछ सूफी प्रतीकों को भी अपनाया है जैसे - "मधुशाला-प्याला, हाला, साकी, प्यास[97] आदि।

जिस प्रतीक को अन्य छायावादी कवियों ने बिम्ब के रूप मे प्रयोग किया उसको उन्होंने प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है। "छायावाद की सभी अभिव्यक्तिगत विशेषताएं महादेवी वर्मा के काव्य में क्रमशः विशेषीकृत एव रूढ़ बन गयी है।"[98] यह प्रतीकों के विषय मे भी सच है। "झझा" इनका प्रिय प्रतीक है। महादेवी वर्मा के काव्य में "उपमानों और बिम्बों के क्रमशः प्रतीकों में बदल जाने के उदाहरणों के रूप में "झंझा" के समान ही दीपक, दर्पण, पिजर, शलभ, पाहुन आदि को प्रस्तुत किया जा सकता है।"[99] इसके अलावा सस्कृत काव्यों का भी प्रभाव इन पर पड़ा है। इनके काव्य में ईश्वर करूणामय है। "जिसे तम के पर्दे में आना ही भाता है।"[100] दीपक का भी प्रयोग इन्होंने प्रतीक के रूप मे किया है। इनकी प्रेम साधना का प्रतीक दीपक है। दीपशिखा मे तो ये दीप रूप मे ही उतरी है। यह उनकी अजस्र साधना की प्रतीक है। इससे साधक की आत्मा का पूर्ण स्वरूप अभिव्यक्त होता है। इसके बाद ध्यानरत रात पर आता है। वसन्तरजनी रूपसि, मिलन यामिनी, सुकेशिनी, विभावरी आदि को इन्होंने रात के प्रतीक के रूप में रखा है।

इस प्रकार महादेवी का काव्य सांकेतिक अधिक है। प्रतीको के विधान गे काव्यानुभूति की बनावट नियन्त्रित होती है। कवयित्री के मानसिक विकास के साथ प्रतीक का परिवेश कम होता गया और भाव-चित्रण बढ़ता गया। भाव-साधना के चोटी पर पहुँचकर इनकी भावहीनता मूर्छित हो गयी तथा धूप गन्ध रूप मे अवतरित हुई। जिसकी सुवास से हिन्दी साहित्य अभिषिक्त है। महादेवी ने प्रतीकों के विषय में काव्य के माध्यम से ही व्यक्त किया, गद्य के माध्यम से नही अभिव्यक्त किया है।

बिम्ब-विधान ·

अन्य छायावादी कवियों की तरह महादेवी भी नयी प्रक्रिया पद्धति को अधिक अपनाती हैं। छायावादी बिम्ब नया और मौलिक है। इनकी कविता में छोटे-मोटे सुकुमार बिम्ब दिखायी देते है। लेकिन ऐसा नही कि विराट बिम्ब हो ही नहीं। इसके अलावा काल्पनिक व रहस्यात्मक बिम्ब भी इनकी कविता में दिखायी देते हैं। "तिर्यक बिम्बों की सबसे अधिक सख्या महादेवी वर्मा और पन्त के काव्य मे है।"[101] मिश्रित संश्लिष्ट बिम्ब तो प्राय. सभी छायावादी कवियों में पाये जाते हैं। इन्होंने इसका अधिकतर प्रयोग अपनी कविता में किया है। "धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी[102] अथवा "रूपासि तेरा घन-केश-पाश[103] जैसे गीतों के बिम्बों मे एकाधिक ऐन्द्रिय बोधों का समिश्रण ही नही, बल्कि उनका समाकलन भी है। इसके साथ-साथ उनके काव्य बिम्बों में वर्ण वैभव का भी आभास मिलता है -

कनक से दिन, मोती-सी रात
सुनहली साझ गुलाबी प्रात।[104]

वर्ण बोध भी इनकी अपनी विशेषता है। इनमें रंगो की संख्या अधिक नहीं है, किन्तु इन्होंने सीमित रगो का ही कुशलतापूर्वक प्रयोग किया है। इनके काव्य में रंगो की सख्या क्रमश कम होती चली गयी है, किन्तु श्वेत रग "नीहार" से लेकर दीपशिखा तक बराबर बना रहा है। चाँदनी, आसू, तारे, मोती, रजत, रश्मियां, सिकता-कन, ओस, रजत प्याल मोम, सीप, नीर, हिम, चन्दन, स्मित, शख आदि जिन पदार्थो से उनके अधिकांश बिम्ब निर्मित हुए है वे अधिकतर श्वेतवर्णी हैं।

इसके अलावा इन्होंने घ्राण, स्वाद, गन्ध, ध्वनि और दृश्य आदि बिम्बों का भी सफल प्रयोग किया है। तथा इन्होंने मनोभावों को बिम्बात्मक रूप में सफलतापूर्वक

वहन किया है।

चित्र भी इनकी कला का एक अंग है। जिस प्रकार के चित्र दीपशिखा में रक्षित है उसी ढंग का एक चित्र यामा के बिल्कुल प्रारम्भ में दिया गया है जिससे यह आभास मिलता है कि दीपशिखा की रूप रेखा यामा के प्रकाशन के समय ही उनके मस्तिष्क में अंकित हो गयी थी। यामा के चित्र वाह्य प्रकृति से सम्बन्ध रखते हैं और दीपशिखा के आतरिक हलचल से। मेरे विचार से इनके काव्य के आलोक में चित्रों की आभा मन्द पड़ गई। जितना श्रेष्ठ कवि के रूप में लोग उन्हें जानते हैं, उतना उत्कृष्ट चित्र कर्ती के रूप में नहीं । रस के क्षेत्र मे महादेवी के काव्य मे करूण रस ही दिखायी पड़ता है।

महादेवी के काव्य की भावगत तथा कलागत विशेषताओं का विश्लेषण करने के बाद काव्य का मूल्यांकन भी जरूरी लगता है। इनके काव्य के भाव पक्ष में निराश और वेदना, करूण और अवसाद प्रकृति का मानवीकरण रहस्य भावना सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति आदि हैं तो कलापक्ष में नवीन अलकार विधान, प्रतीक, बिम्ब, लाक्षणिक शब्दावली, नवीन छन्द का प्रयोग हुआ है। इन दोनों के मूल में व्यक्तिवाद का स्वर है। एक नारी होने के कारण इन्होंने अतृप्त प्रेम को खुलकर व्यक्त करने की अपेक्षा प्रतीक-पद्दति का आश्रय लिया है।

सन्दर्भ - सूची

क्र0स0	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1	यामा (अपनी बात)	महादेवी वर्मा	10-11
2	महादेवी का विवेचनात्मक गद्य	"	97
3	यामा (भूमिका)	"	12
4	यामा	"	210
5	यामा	"	130
6	यामा	"	6
7	यामा	"	147
8	दीपशिखा	"	74
9.	यामा (भूमिका)	"	8
10.	आधुनिक कवि	"	83
11	हिन्दी सा0 का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	410
12	छायावाद का पुर्नमूल्यांकन	पंत	94-95
13	छायावाद का विश्लेषण और मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	226
14	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	महादेवी वर्मा	9
15	यामा	"	174
16	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	"	17
17.	यामा (अपनी बात)	"	8
18	यामा	"	76
19	आधुनिक कवि	"	36
20.	छायावादी कवियों का आलोचना	शीला व्यास	141
21.	दीपशिखा	महादेवी वर्मा	75
22	साहित्य का आस्था तथा अन्य निबंध	"	121
23	दीपशिखा	"	77

क्र0सं0	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
24·	यामा {अपनी बात}	महादेवी वर्मा	7
25	दीपशिखा	"	69
26·	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	"	45
27	आधुनिक कवि {भूमिका}	"	21-22
28	दीपशिखा	"	98
29	दीपशिखा	"	
30	आधुनिक कवि	"	20
31	आधुनिक कवि	"	76
32·	सुमित्रानन्दन पंत	डॉ नगेन्द्र	8
33·	नीहार	महादेवी वर्मा	48
34·	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध	"	28-29
35·	दीपशिगा	"	69
36	यामा	"	149
37	यामा	"	149
38	यामा	"	55
39·	छायावादी कवियों का आलोचना साहित्य	शीला व्यास	142
40	यामा {अपनी बात}	महादेवी वर्मा	12
41	यामा {अपनी बात}	"	12
42	छायावाद पुर्नमूल्याकन	पंत	84
43	यामा	महादेवी वर्मा	260
44	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निंबध	"	177
45	छायावाद पुर्नमूल्याकन	पंत	93
46	सान्धिनी	महादेवी वर्मा	63
47·	अतीत के चलचित्र	"	भूमिका
48	दीपशिखा	"	69

क्र0स0	पुस्तका का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ [illegible]
49	छायावाद-पुर्नमूल्यांकन	पंत	5[illegible]
50·	दीपशिखा	महादेवी वर्मा	[illegible]
51·	अतीत के चलचित्र	"	22[illegible]
52·	यामा	"	3[illegible]
53·	शृंखला की कड़िया	"	11[illegible]
54	छायावाद-पुर्नमूल्यांकन	पंत	95-[illegible]
55·	यामा	महोदवी वर्मा	55
56·	अभिनन्दन-ग्रन्थ	विश्वम्भर मानव	56
57·	हि0 सा0 का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	650
58	राधिनी	महादेवी वर्मा	20
59·	कवयित्री महादेवी वर्मा	शोभनाथ यादव	219
60·	"	"	222
61	"	"	223
62	साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध	महादेवी वर्मा	59
63	आ0 हि0 कवियों के काव्य सिद्धांत	सुरेश चन्द्र गुप्त	421
64	छायावाद युग	शंभू नाथ सिंह	86
65·	छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	225
66·	आ0 हि0 कवियों के काव्य-सिद्धांत	सुरेश चन्द्र गुप्त	422
67	महादेवी का विवेचनात्मक गद्य	महादेवी वर्मा	55
68	आधुनिक कवि	"	10
69·	आधुनिक हिन्दी कविता का अभिव्यंजना	डा0 हरदयाल	308
70·	यामा	महादेवी वर्मा	181
71·	आ0हि0 काव्य में छन्द-योजना	पुत्तू लाल	348
72·	यामा	महादेवी वर्मा	89
73·	यामा	"	76
74·	सधिनी	"	20
75·	छायावादी कवियों का आलोचना साहित्य	शीला व्यास	188

क्र0सं0	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	[illegible]
76	छायावाद विश्लेषण तथा मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	[illegible]
77	यामा	महादेवी वर्मा	14[illegible]
78	दीपशिखा (भूमिका)	"	[illegible]
79	यामा	"	27
80.	यामा	"	138
81	यामा	"	203
82	यामा	"	218
83	दीपशिखा	"	23
84	नीरजा	"	29
85	यामा	"	189
86.	महादेवी	इन्द्रनाथ मदान	136
87.	श्रीशारदा वर्ष 1 खण्ड 1 सं0 6		
88	यामा	महादेवी वर्मा	143
89	यामा	"	242
90	यामा	"	143
91	छायावादी काव्य	कृष्ण चन्द्र वर्मा	357
92	यामा	महादेवी वर्मा	24
93	महादेवी की रचना प्रक्रिया	कृष्णदत्त पालीवाल	130
94.	नीहार	महादेवी वर्मा	4
95.	विचार और अनुभूति	नगेन्द्र	116
96.	नीरजा	महादेवी वर्मा	143
97.	यामा	"	163
98	छायावाद की प्रासंगिकता	रमेश चन्द्र शाह	96
99.	छायावाद का सौन्दर्य-शास्त्रीय अध्ययन	कुमार विमल	280
100	आ0 हिन्दी काव्य शिल्प	डा0 मोहन अवस्थी	293
101.	आधुनिक कवि (च0सं0)	महादेवी वर्मा	49
102	यामा	"	134
103	यामा	"	144
104	यामा	"	73

अध्याय - 7

अन्य छायावादी कवियों का काव्य और उनका काव्य-चिंतन

प्रमुख छायावादी कवियों के काव्य-चिंतन का अध्ययन करने के पश्चात ग अन्य महत्वपूर्ण कवि इस युग में ऐसे मिलते हैं जिन्होंने छायावाद को आधार बनाकर काव्य सृजन तो अवश्य किया किन्तु उनके काव्य में वह पूर्णता, जो छायावादी का वैशिष्ट्य मानी जा सकती है, नहीं आ सकी। छायावाद के प्रमुख प्रणेताओं आलोचकों ने भी इसी मत का समर्थन किया। शुक्ल जी, मुकुटधर पाण्डेय और मैथिली गुप्त को हिन्दी नई कविता का सूत्रधार मानते हैं, लेकिन उनके काव्य में द्विवेदीयुग काव्य तत्व का ही प्राधान्य है। इनके शब्दों में - "हिन्दी कविता की नई धारा प्रवर्तक इन्ही को विशेषतः मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को समझना चाहिए"।[1] प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी आदि प्रमुख छायावादी कवियों की गणना के बाद आचार्य शुक्ल ने रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, मोहन लाल महतो "वियोगी", नरेन्द्र शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनाथ सुमन, नगेन्द्र, जानकी बल्लभ शास्त्री, गोपालशरण सिंह, सियाराम शरण गुप्त आदि कवियों का नाम लिया है। ये नाम मुकुटधर और मैथिली गुप्त के अतिरिक्त है। छायावाद का आरम्भ किस कवि की किस रचना से हुआ यह निर्दिष्ट करना कठिन है। लेकिन छायावाद की व्याख्या का आरम्भ आचार्य शुक्ल से ही हुआ है। छायावाद में रहस्यात्मकता खोजने की प्रवृत्ति पहले से ही प्रचलित थी। मुकुटधर पाण्डेय 1920 में शारदा में प्रकाशित अपने छायावाद विषयक लेख में बंगला साहित्य की रहस्यवादी रचनाओं और छायावाद में तारतम्य स्थापित कर चुके थे। मुकुटधर ने छायावाद की धर्म, भावुकता और अध्यात्मिकता की स्थापना आचार्य शुक्ल से पहले ही की थी। उनका विचार था कि - "यहां छायावादिता से आत्मिकता तथा धर्म भावुकता का मेल होता है।'[2] मनुष्य के वास्तविक जीवन के यही दो मुख्य अवलम्ब हैं। अतः छायावादी कवि इन दोनों अवलम्बों से बहुत कम ही दूर हट सकते हैं। हिन्दी साहित्य में आध्यात्मिकता तो पर्याप्त नहीं है, लेकिन छायावाद काल के आने से उसमें वृद्धि अवश्य हुई। उनके अनुसार - "छायावादी कविता मन बुद्दि से परे एक अज्ञात प्रदेश में ले जाती है।"[3] इसके अलावा मुकुटधर पाण्डेय ने जगह-जगह पर छायावाद की अभिव्यंजना, अस्पष्टता तथा भाषा के असामान्य प्रयोग आदि गुणों का संकेत किया है।

इस तरह मुकुटधर पाण्डेय को साहित्यकार छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं। कवि पंत अपने **आधुनिक काव्य प्रेरणा के स्रोत** शीर्षक निबंध में मुकुटधर पाण्डेय के विषय

मे लिखते है - "श्री मुकुटधर पाण्डेय की रचनाओं में छायावाद की सूक्ष्म भावव्यंजना तथा रंगीन कल्पना धीरे-धीरे प्रकट होने लगी थी, जो आगे चलकर पुष्पित, पल्लवित होकर एक नूतन चमत्कार एवं चेतना का संस्कार धारण कर, हिन्दी काव्य के प्रागण में नवीन युग के अरूणोदय की तरह मूर्तिमान हो उठी।"[4] सारस्वती के माध्यम से प। मुकुटधर पाण्डेय की रचनाओं से परिचित हुए। आचार्य शुक्ल भी मुकुटधर पाण्डेय का रचना छायावाद के सूत्रधारों में करते हैं। "पूजाफूल" नामक इनके काव्य सकलन में छायावादी कविता की तरह ही प्रगीतात्कता, स्वानुभूति मूलकता और अनाख्यान की प्रचुरता है। मुकुटधर पाण्डेय के छायावाद लेख से यह पता चलता है कि 1920 के पहले से ही छाया शब्द यत्र-तत्र प्रयुक्त होने लगा। लेकिन उसको एक आन्दोलन का रूप देने वाले मुकुटधर, मैथिलीशरण गुप्त आदि रहस्यवादी कविताएं लिखने लगे। इन लोगों पर टैगोर का प्रभाव पड़ा। इसके बाद प्रसाद जी इस युग में प्रवेश करते हैं। इस तरह मुकुटधर पाण्डेय ही को छायावाद का प्रवर्तक कह सकते हैं तथा छायावाद को नाम देने का श्रेय इन्हीं को है।

इनके काव्य में वो सारी विशेषता नही विद्यमान है जो चारों छायावादी कवियों में मिलती है, क्योंकि इन चारों कवियों की काव्य सृजनता बहुमुखी है। पद्य के साथ-साथ निबन्ध, नाटक, कहानी, संस्मरण्, उपन्यास, रेखाचित्र आदि विभिन्न क्षेत्रों में ये लोग एक साथ दिखायी देते हैं। तथा इनके काव्य में जो काव्य गुण विद्यमान है वह मुकुटधर में नहीं मिलता। क्योंकि छायावाद के चारों कवियों ने काव्य तत्त्वों का विस्तृत और समृद्ध विवेचन किया है। इनके छायावाद लेख के आधार पर ही छायावादी कवि आगे बढ़े है। लेकिन इनकी काव्य सृजनता अन्य चारों कवियों की तरह सर्वांगीण विचार लिए हुए नहीं है। इसलिए काव्य सृजन की दृष्टि से इन्हें प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कोटि में तो नहीं रखा जा सकता किन्तु छायावाद के आगमन व उसके मूल तत्त्वों के विवेचन तथा निराला, पंत, पंसाद और महादेवी जेसे कवियो कोकाव्य सृजन के लिए एक भूमिका प्रदान करने का कार्य उन्होंने किया। लेकिन एकांगी दृष्टिकोण के कारण ही इन लोगों को अन्य की श्रेणी में रखा गया।

ये कवि स्वतन्त्र चेता अधिक हैं, लेकिन विशिष्ट भावधारा से पूर्णतया नहीं जुड़े हैं। युगीन् परिस्थितियों ने इनकी चेतना धारा को अनेक दिशाओं की तरफ मोड़

दिया। सूक्ष्माभिव्यंजना, ओज, कल्पना, चित्रात्मकता, राष्ट्रीयता आदि छायावादी प्रवृत्तियों से ये सभी कवि प्रभावित थे। छायावाद के अन्य कवियों में ज्यादातर सामाजिक चेतना की अपेक्षा व्यक्तिवादिता दिखायी देती है, इसीलिए इन कवियों की रचनाओं में छायावाद का पूर्ण परिपाक नही हो पाया। क्योंकि छायावाद में कई महान भाव एक जगह मिलते हैं, यही उसकी विशेषता है। अब आगे हम इन कवियों के छायावाद विषयक धारणा के विषय में अध्ययन करेंगे कि कहां तक ये कवि छायावादी है और क्यों इन्हें अन्य की श्रेणी में रखा गया।

इन अन्य कवियों को छायावाद युग में उचित स्थान नहीं दिया गया जो कि अनुचित है। क्योंकि छायावादी कविता की चर्चा केवल चार कवियों तक सीमित कर दी गयी है। नलिन विलोचन शर्मा अन्य कवियों का महत्व स्वीकार करते हुए लिखते है कि - "महान लेखकों से अधिक महत्व उन गौणों का है जिनसे विस्तार निर्मित होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इन महान गौणों की उपेक्षा हुई है। और इसका कारण यह है कि शोध ने अपने वास्तविक कर्तव्य का पालन नही किया है। यह उन पथ चिन्हों तक ही सीमित रहा है, जो वस्तुतः आलोचना का विषय हो।"[5]

इससे यह सिद्ध होता है कि आलोचक अन्य कवियों के विवेचना की आवश्यकता तो महसूस किए परन्तु उदार और व्यवस्थित ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अभाव में केवल रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी आदि का नाम जोड़ दिया। इससे यह इतिहास नही पूरा होता है। इस विषय में पंत जी का यह विचार उचित ही मालूम होता है - "छायावादी काव्य को कवि चतुष्ट्य तक सीमित कर देना मुझे विचार की दृष्टि से सगत नहीं प्रतीत होता। अभिव्यंजना, शैली, भाव सपदा सौन्दर्य बोध तथा काव्य वस्तु आदि की दृष्टि से उस युग के आगे पीछे अन्य भी अनेक समृद्ध कवि हुए हैं, जो छायावाद के उद्भव और विकास में सहायक हुए हैं। उनमें से माखनलाल जी, मुकुटधर, रामनरेश त्रिपाठी, नवीन जी, सियाराम शरण जी, मोहन लाल महतो, उदय शकर भट्ट, डॉ0 रामकुमार वर्मा, नगेन्द्र, जानकी वल्लभ आदि अनेक लब्ध प्रतिष्ठ कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं।"[6]

अन्य कवियों के काव्य में भी राष्ट्रीय चिंतन और प्रगतिशील चिंतन दिखायी पड़ता है। माखनलाल चतुर्वेदी कवि कर्म के अतिरिक्त स्वयं भी राष्ट्रीय आन्दोलनों में

सक्रिय भाग लिया। इनका काव्य राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। इनका राष्ट्रीय भावना उदात्त सांस्कृतिक परिवेश धारण किये हुए है। इन्होंने प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की तरह तटस्थ नीति नहीं अपनायी। छायावादी दृष्टि का उपयोग उन्होंने मुख्यतया उग्र राष्ट्रीय भावनाओं के क्षेत्र में किया। भारत और भारतीय परिवेश ही इनकी कविताओं में आया है -

पतन स्वीकार था।

हे हिम शिखर।

तुमको लगा जो निम्न पथ

मेरे लिए हरद्वार था ?

मुझको पतन स्वीकार था।[7]

मातृभूमि के प्रति मोह और उसे विदेशियों के चंगुल से मुक्त करने की ललक कवि में विद्यमान दिखायी पड़ती है -

मां के घर

रहना ही होगा

करके कठिन मजूरी

मोहन देते नहीं अभी

अपने घर की मंजूरी।[8]

कवि संघर्षरत जीवन जीकर भी अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है। यह उसके प्रगतिशीलता का द्योतक है -

मैं पथ के अवरोधों से

पथ भला रुक जाता हूँ

भारी प्रवाह होकर भी

विषयों में चुक जाता हूं।[9]

चतुर्वेदी जी अपने काव्य में राष्ट्रगत कृत्रिम सीमाओं को हटाना चाहते हैं -

उठ, अब, ऐ मेरे महाप्राण

आत्मकलह पर

विश्व सतह पर।[10]

झरना में कवि अपनी ही वेदना को पाकर उससे यों प्रश्न करता है -

किस निर्झरणी के धन हो ?

पथ भूले हो किस घर का ?

है कौन वेदना ? बोलो ।

कारण क्या करूण स्वर का ?[11]

स्पष्ट होता है कि कवि छायावादोचित भाव और कल्पना के आधिक्य को अपने कर्मत्व जीवन में बाधक नहीं बनने देता। छायावादी विरासत को जनसंघर्ष एव मुक्ति आन्दोलन के बीच रहकर उपयोग करता है। इस प्रकार प्रेरणा के स्थलों को खोजना आत्मशोधक शैली में प्रश्न करना, भाषा को जन जीवन से जोड़ना आदि तत्व कवि की लगभग सभी रचनाओं में समान रूप से आया हैं। कवि की रचनाओं में एकपक्षीय दृष्टिकोण मिलता है। इनकी रचनाओं में तात्कालिक परिवेश भी मिलता है। जिस तटस्थता, उच्चाशयता एवं काव्य सृजन की उच्च धर्मिता को लेकर प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी ने काव्य सृजन किया, यह सब चतुर्वेदी जी की कविताओं में नही मिलेगा। इन्होंने छायावादी दृष्टि का उपयोग एक पक्षीय किया है। इसीलिए इनकी कविता में छायावाद भास है, छायावाद नही।

माखनलाल के अलावा और अन्य कवियों की रचनाएं छायावाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय भावना से युक्त दिखायी देती हैं। लेकिन इनकी कविताएं राष्ट्रीयता की भावना से बहती हुई वर्गीय विषमता के प्रति उन्मुख होती है और मुक्ति की कामना करती हैं। बालकृष्ण शर्मा "नवीन" भी इस भावना से प्रेरित दिखायी देते हैं। यथा - "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओं जिससे उथल-पुथल मच जाये"[12] इसमें कवि की आक्रामक प्रवृत्तिया नहीं है बल्कि व भारतीय युवा मानस की बेचैनी है, जो मुखर हो उठी है। और जब सत्याग्रह आंदोलन की निष्फलता से उनका मन टूट जाता है, तो वे पराजय गीत गाते हैं -

आज खडग की धार कुंठिता

ओ खाली तूणीर हुआ।[13]

नवीन जी की तरूणाई ही राजनीतिक संघर्ष में बीती। इसलिए इनकी रचनाएं राष्ट्रीयता से परिपूर्ण हैं। लेकिन इन पर छायावाद का प्रभाव कम है। क्योंकि ये फक्कड़पन पर

ज्यादातबदेते है, नवीन के काव्य में निजी जीवन का उतार चढ़ाव है। इनके काव्य के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि कौन रचना किस काल में हुई है। "क्वासि" में इन्होंने रहस्यात्मक और आध्यात्मिक रचनाएं भी की है। जिसमें छायावाद की झलक दिखायी पड़ती है। यथा -

मेरी वीणा में एक तार,
गायक तू भी यह छवि निहार।[14]

क्वासि में छायावादी वेदना वाद भी मिलता है -

मेरी वेदना सहेली है,
बचपन से वह संग खेली है।[15]

सामाजिक कर्त्तव्य एवं व्यक्तिगत कामना उनके काव्य में मिलती तो है, लेकिन उनका मन क्षत-विक्षत भी हो जाता है। लेकिन ये रचनाएं अधिक संख्या में नहीं है। "साकी" इसका सर्वोत्तम उदाहरण हैं, जो बहुत प्रसिद्दि तो नहीं प्राप्त कर सकी, परन्तु अत्यन्त सफल है। नवीन जी मात्र राजनीतिक नहीं बल्कि समाज में भी बदलाव चाहते हैं। शिल्प के सम्बन्ध में भी नवीन जी छायावादी कवियों से मेल खाते है, वे ब्रज भाषा के अभ्यास के कारण सरस पद की रचना करते हैं। इन्होंने यदि एक ओर ब्रज भाषा के दोहों की रचना की है तो दूसरी ओर "उर्मिला" जैसे महाकाव्य की। और प्राय· छायावादी शैली के प्रगीत है। "क्वासि" आदि रचनाएं उनके सच्चे मन की रचनाएं हैं। इसमें इन्होंने ग्रामीण मुहावरों और उर्दू के पदों का भी प्रयोग किया है। इनके शुद्ध भाषा के प्रयोगों से मुहावरों और उर्दू में भी सहजता पायी जाती है। इन्होंने अपनी रचनाओं को सही समय व सही ढग से प्रकाशित नहीं करा पाया इसी वजह से इनके काव्य का विधिवत अध्ययन न हो सका।

भगवतीचरण वर्मा का अन्य कवियों में महत्वपूर्ण स्थान है। ये अपने काव्य में नवीन से भिन्न है। विषम परिस्थितियों में जन्म होने के कारण इन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में ज्यादा ध्यान नहीं दिया और इन्हें समाज में सही स्थान बनाने में ही सारा समय बीत गया , इसीलिए इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता नहीं है। लेकिन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों से ये चाहे जितना कतराते रहे हों, लेकिन उससे वे मुक्त नहीं हो सके। अतः इनके काव्य में अभिव्यक्ति और भाव दोनों ऐसे स्तर पर है, जो उन्हें छायावादी कवियों के निकट लाती हैं। "मधु कण" जिसका प्रकाशन 1932 में हुआ।

उसमें वर्मा जी ने कामनाओं और सपनों का रग चढ़ाया है। और ये लगातार मै का प्रयोग करते हुए दिखायी देते है यथा -

> हम दीवानों की क्या हस्ती
> है आज यहां कल वहा चले।[16]

'मैं' की यह अभिव्यक्ति अन्य कवियों से भिन्न प्रकार की है। हिन्दी साहित्य में इन्हें अहवादी लेखक की सज्ञा मिली। अपने काव्य में ये कर्मवीर या विद्रोही के रूप में नहीं आते बल्कि सामाजिक परिस्थितियों से चूर असहाय रूप में दिखायी पड़ते हैं - "मैं अपनी कमजोरी से टकरा जाता हू बार-बार" (स्मृति से) इसी तरह रोमांटिक प्रणय का कवि होते हुए भी इनमें हीन भाव है। जिसे वे पाप व पुण्य कहते हैं, वस्तुत. वह याग और भोग ही है। इनका तारा व चित्रलेखा उपन्यास इसे सिद्ध करता है। इसी तरह शिल्प विधान में इन्होंने "मैं" शैली तो अपनायी है, लेकिन भाषा के क्षेत्र मे ये पिछड़ जाते हैं। और इसी एकांगिता के कारण इन्हें अन्य कवियों की कोटि में रखा गया है।

नरेन्द्र शर्मा की अधिकांश रचनाएं छायावादोत्तर प्रगतिवाद के दौर में पढ़ी है। अत अपने प्रारम्भिक दौर में ये छायावादी रचनाएं करते थे, परन्तु उत्तरोत्तर प्रगतिवादी हो गये। नरेन्द्र में देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण नया उत्साह विद्यमान था। अतः वे व्यक्तिगत कामनाओं को न तो विद्रोह का स्वर देते हैं न उससे अलग ही होना चाहते। ये एक ऐसे कवि है जिनकी रचना में हमारे दैनिक कार्यकलाप भी महत्वपूर्ण स्थान पा जाते हैं। इनकी रचनाओं में कच्चे सपनों की ताजगी हैं तो यौवन के सौन्दर्य और प्रणय का भी मर्मस्पर्शी चित्र है। इसी कारण ये प्राकृतिक दृश्यों की छोटी-छोटी सुन्दरताओं को भी शब्द देने मे भी सफल हो जाते हैं। "कर्णफूल" और "शूलफूल" इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनके अन्य काव्य सग्रह 'पलाशवन', 'प्रभातफेरी' और 'प्रवासी के गीत' में लौकिक प्रणय लीला के मनोरम और बेझिझक चित्र देखने को मिलते हैं। इनमें यौवन का स्वरूप मासल और दार्शनिकता से मुक्त है यथा -

> गुन गुन प्रियके गुण गाने
> बन गया मधुप मन कर्ण फूल।[17]

इसी कारण इनकी भाषा मार्मिक होते हुए भी बोल-चाल की भाषा से दूर नहीं है। इनकी शब्द रचना कोमल और संयत है। वे अपने बिम्ब, प्रतीक, उपमान को भी आस-

पास के जगत से ले लेते हैं। इस प्रकार इनमें भाव गम्भीर तो है, लेकिन उसमें आवेग का वेग नही है। समय के थपेड़ों में पड़कर वे काव्य के उस पथ पर जाते हैं जो कर्म और संघर्ष की ओर जाता है और समाज के प्रति आकर्षित होते हैं। और ये छायावाद के कवि की श्रेणी में स्थान पा जाते हैं। नवीन के काव्य मे उग्रता दिखायी देती है तो दिनकर के काव्य में राष्ट्रीयता। छायावाद की विशेषता यह है कि इसमें कई भाव एक साथ दिखायी देते हैं। डॉ0 राम कुमार वर्मा का योगदान इसमें महत्त्वपूर्ण है। अपनी अधिकाश कविताओं में ये रहस्यवाद की ओर उन्मुख दिखायी देते हैं -

यह तुम्हारा हास आया

इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया।[18]

इनकी कविता में समर्पण की भी भावना विद्यमान है। वीर हम्मीर, कुल ललना, चित्तौण की चिता, अभिशाप, निशीथ, रूप राशि, चित्ररेखा आदि रचनाओं पर छायावाद का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। कुल ललना में स्त्रियों की दशा का भी चित्रण करते हैं। अधिकतर इनके काव्य में कल्पना का साम्राज्य है। कल्पना का एक दृश्य यहाँ दृष्टव्य है -

इस सोते ससार बीच,

जगकर, संजकर रजनी बाले

कहाँ बेचने ले जाती हो

ये गजरे तारों वाले।[19]

केवल रचना की ही दृष्टि से नहीं, काव्य सिद्दान्त की दृष्टि से भी इनकी रचनाए महत्त्वपूर्ण है। पत की तरह इन्होंने भी कल्पना को विशेष महत्त्व दिया है। इसका स्पष्ट प्रमाण रूपराशि की भूमिका में मिलती है। इनकी रचनाएं अनुभूति परक है। चित्ररेखा के परिचय में ये लिखते हैं - "मैं पहले कल्पना का उपासक था, मेरी रूपराशि तो अधिकतर कल्पना से अधिक रूचिकर है।"[20] रूपराशि नामक कविता सग्रह के प्राक्कथन में भी इनका कल्पना के प्रति झुकाव देखने को मिलता है - "कविता में कल्पना मुझे सबसे अच्छा मालूम होता है। वही एक सूत्र है, जिसको पकड़कर कवि संसार से उस स्थान पर चढ जाता है, जाह उसकी इच्छित भावनाओं द्वारा एक स्वर्ण संसार निर्मित रहता हैं। कवि में निर्माण करने की शक्ति कल्पना द्वारा ही आती है।"[21]

इनकी कविता में छायावादी किशोर भावना व रहस्य कल्पना [illegible] [illegible] में अवतरित है। जो छायावादी काव्य की मुख्य विशेषता है। इनकी कविता में [illegible] के सभी पहलू तो नहीं मिलते लेकिन उसकी स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। [illegible] विषय में पन्त जी लिखते है - "प्रायेत कवियों को कुछ आलोचक वृहतत्रयी तथा लघुत्रयी अथवा वर्मात्रयी के नाम से सम्बोधित करते हैं। जहां भगवती बाबू में छायावाद का स्वतन्त्र चेता मानववादी रूप विकसित हुआ वहां डॉ0 रामकुमार वर्मा ने अपने उत्कृष्ट, पुष्कल कृतित्व से जिसकी ओर अभी आलोचकों का ध्यान नहीं गया - छायावाद को सम्पन्न बनाने में महत्वपूर्ण योग दान दिया।"[22]

छायावाद के अन्य कवियों में आरसी प्रसाद सिंह का भी नाम उल्लेखनीय है। इनकी रचनाओं में प्रकृति वर्णन तो मिलता ही है, इसके साथ-साथ इन्होंने प्रेम सौन्दर्य रचना भी किया है। कलापी में यह भाव स्पष्ट रूप से विद्यमान है। इनकी शब्द शय्या और छन्द योजना भी छायावादी है। यथा -

आज, छाया मधुमास ....

आज रे छाया नव मधुमास

चतुर्दिक हर्ष हुलास।[23]

इनकी कविता में छायावादी भाषा-शैली तथा रहस्ययुक्त प्रकृति चित्रण देखने को मिलता है। अतः इन पर भी छायावाद की छाप पड़ी है।

लक्ष्मी नारायण मिश्र भी इस दौरान अच्छी रचना किये हैं। लेकिन "अन्तर्जगत्" इनकी एक भाव रचना है। उसमें कल्पना के प्रति विशेष आकर्षण दिखायी देता है। यथा-

मनस्तत्व का निपुण पारखी

तन्मयता का नेमी

अमर कल्पना का स्रष्टा

... ...

रहता है मेरे मन में।[24]

अन्तर्जगत में हमें आंसू की तरह आत्म निष्ठता और विषादपूर्ण वर्णन दिखायी देता है। "लक्ष्मी नारायण मिश्र का यह दावा है कि अंतर्जगत् के तीन वर्ष बाद आँसू प्रकाशित

हुआ और उस पर अंतर्जगत् की छाप है।"[25] इससे यह सिद्ध होता है कि ... छायावादी काव्य की मूल दृष्टि है। क्योंकि आँसू की रचना पर इसका छाप ... दिखायी देती है।

छायावादी कवियों ने अमूर्त व जड़ वस्तुओं को मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयुक्त किया है। छायावाद सांस्कृतिक चेतना का आन्दोलन था। तथा सभी छायावादी कवि प्रेरणा स्रोतों के खोज में थे। अन्य छायावादी कवियों में सियाराम शरण गुप्त की कविताए सास्कृतिक चेतना से प्रेरित व संस्कृतनिष्ठ हैं। पथ को सम्बोधित करते हुए वे लिखते है -

हे अलक्ष्य गामी पथ
आये हो कहां से तुम ?
करके मनोरथ यहां से तुम
किस दिन माया जाल तोड़ के?[26]

इस प्रकार एकनिष्ठता व कल्पना शीलता भी उनकी कविता में दिखायी देती हैं। जो कि छायावाद की मुख्य विशेषता है।

गोपाल शरण जी की कविताएं भी छायावाद की भावना से प्रेरित दिखायी देती है। "कुसुम कली के प्रति" सहानुभूति रखते हुए वे व्यक्त करते हैं -

क्यों कुसुम की कली मुरझा गई ?
थी लता की गोंद में सुख से मिली,
प्यार करती थी उसे विपिन स्थली
मान लेती थी उसे मधुपावली
चित्त में क्या सोचकर घबरा गयी।[27]

लक्ष्य विशेष को दृष्टि में रखते हुए कवि ने प्रतीकों का सहारा लिया है, पर उनकी भाव धारा बाहर ही बाहर चक्कर लगाती है, लेकिन मर्म स्पर्शी नही बन पाती है। क्योंकि कवि द्विवेदी युगीन मोह को एकदम त्याग नहीं पाया।

मोहन लाल महतो वियोगी भी छायावादी कवि के अन्तर्गत आते हैं। ... तारा और निर्माण्य ये दोनों कविता पुस्तकें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने भी अपनी

कविता में कल्पना को विशेष महत्व दिया है -

कर प्रवेश कल्पना लोक में

कविता उत्स प्रवाहित कर।[28]

आध्यात्मिकता जो कि छायावाद का प्रबल पक्ष है, इन्होंने अपनी कविता में दर्शाया है। "मैं तो हूँ नीरव वीणा" इसमें आध्यात्मिकता का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है। इनकी साहित्य साधना पर टैगोर का प्रभाव है। उन्हीं के प्रभाव से इनका ध्यान छायावादी कविता की ओर आकृष्ट हुआ। लेकिन जो लाक्षणिकता और सूक्ष्मता छायावादी कविता में हैं, वह इनकी कविता में नहीं दिखायी देती है। लेकिन "एक तारा" में वियोगी जी छायावाद की मुख्य पीठिका को स्पर्श करते हैं -

वेदना को छंदो में बाँध,

मिटाया था जो अंतर्दाह।

पुनः स्मृति से दूँ उसको जगा,

लगा चेतनावर्ति की ओर।

छोड़ दूं कविताओं के दीप,

अतल जल में अनंत की ओर।[29]

इसमें वेदना, अंतर्दाह और अनंत की ओर आदि छायावाद की ही देन हैं। इसमें एकाकीपन, व्यक्तिकता, रहस्यमयी भावना, आध्यात्मिकता आदि विद्यमान है। डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में - "इस एक तारा से छायावाद की कल्पनाश्रित सूक्ष्मानुभूति और संतो की साधनात्मक सूक्ष्मानुभूति के बीच की प्रच्छन्न श्रृंखला उभर कर सामने आ गयी।"[30]

डॉ० नगेन्द्र भी अपना कवि जीवन छायावादी काल में ही शुरू करते हैं। इनके काल में छायावाद उच्च अवस्था में था। "वनमाला" का संग्रह सन् 1937 में हुआ। वनमाला में छायावादी भाव बोध और अभिव्यक्ति की भंगिमा दिखायी देती है।

"छदमयी" में भी छायावादी स्वर सुरक्षित है। इसी तरह जानकी वल्लभ शास्त्री भी अन्य कवियों की परम्परा में आते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में आध्यात्मिकता, शास्त्रीय व शृंगारिकता का समावेश कराया है।

इसके अलावा बच्चन, जर्नादन नाथ झा द्विज, नेपाली, रामनाथ समन आ
कवियों की रचनाओं में छायावाद की छाप मिलती है। परन्तु इन अन्य कवियों में छायावाद
का गुण कहीं-कहीं दिखायी देता है लेकिन छायावाद की पूरी छाप नहीं पड़ती है। अभिव्यक्ति
की नवीन शैली, चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता, प्रकृति का मानवीकरण, सूक्ष्म अभिव्यंजना
प्रेम का उदात्त स्वर आदि बातें सभी अन्य कवियों में थोड़ी बहुत दिखायी देती है। लेकिन इन
कवियों ने छायावादी भाव धारा को पूरी निष्ठा के साथ नहीं निभा पाया। इसीलिए इन
कवियों का काव्य अनेक दिशाओं की ओर विकसित हुआ। जिस तरह छायावादी चारों कवि सृष्टि
को विस्तृत भूमि में उतारते थे तथा उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रख
काव्य रचना की, वह इनके काव्य में क्षीण होने लगा। क्योंकि जब छायावाद का उदय हु
तो बहुत से कवि पूर्वाग्रहों के साथ छायावादी रचनाएकरने लगे, इसीलिए छायावाद ने इन
शरण नही दी और अन्य दिशाओं की ओर बह गये। ये कवि छायावादी प्रवृत्ति को छुट-
पुट कहीं भी खींच ले जाना चाहते थे। इसीलिए युग द्रष्टा कवि ही इस क्षेत्र में बने रहे
और ज्यों ही निखार का समय आया। अन्य कवि इस क्षेत्र से हट कर इधर-उधर हो गये।

सन्दर्भ - सूची

क्र0सं0	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1	हि0 सा0 का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	650
2.	हि0 सा0 का वृहत्त इतिहास	डॉ0 नगेन्द्र	128
3.	श्री शारदा 1920 लेख छायावाद	मुकुटधर पाण्डेय	
4.	शिल्प और दर्शन	पंत	167
5.	साहित्य का इतिहास दर्शन बिहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना 1960	नलिन विलोचन शर्मा	119
6.	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	106
7.	माता	माखन लाल चतुर्वेदी	103
8.	माता	माखन लाल चतुर्वेदी	111
9.	हिम किरीटनी	माखन लाल चतुर्वेदी	10
10.	"	"	70
11	"	"	52
12.	हि0 सा0 का वृहत्त इतिहास	नगेन्द्र	355
13.	"	"	365
14.	क्वासि	बालकृष्ण शर्मा "नवीन"	73
15.	क्वासि	बालकृष्ण शर्मा "नवीन"	76
16.	हिन्दी सा0 का वृहत्त इतिहास	नगेन्द्र	368
17.	पलाशवन	नरेन्द्र शर्मा	29
18	पुष्करिणी	डॉ0 रामकुमार वर्मा	432
19.	आधुनिक कवि	"	86
20.	चित्र रेखा	"	1
21.	रूप राशि	"	1
22.	छायावाद पुर्नमूल्याकन	पंत	21-22
23.	कलापी	आर0सी0 प्रसाद सिंह	57
24.	अर्न्तजगत्	लक्ष्मी नारायण मिश्र	16
25.	हि0 सा0 का वृहत्त इतिहास	डॉ0 नगेन्द्र	248

26	छायावादी कवियों में लोक मगल की भावना	डॉ0 अम्वादत्त पाण्डेय	341
27·	पुष्करिणी	सकलनकर्ता- सं0ही0 वात्सायन	183
28·	एकतारा	वियोगी	59
29·	एकतारा	वियोगी	38
30·	हि0 सा0 का वृहत्त इतिहास	डॉ0 नगेन्द्र	247

अध्याय - 8

उपसंहार

मानव अपने प्रकृति के अनुसार नवीनता के प्रति आकर्षित तथा अनुकरण प्रिय होता है। वह प्रायः प्रत्येक वस्तु को नवीन सौन्दर्य देने की चेष्टा करता है। इसीलिए उसकी समस्त अभिव्यक्तियां नवीन सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त होती दिखायी देती हैं। साहित्य में वीर गाथा काल से लेकर आज तक हमें इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु-युग तक आते-आते काव्य, ब्रज और अवधी की सीमाओं से दूर हटकर खड़ी बोली के क्षेत्र में अवतरित हुआ। यानी खड़ी बोली हमारी समस्त अभिव्यक्तियों का माध्यम बन रही थी। समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि विषयों का मुख्य रूप से समावेश साहित्य में होने लगा। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने देश काल की सीमाओं को निकटला दिया। अतः भारत भी विश्व के सम्पर्क में आने लगा। अंग्रेजों के शासन के कारण अंग्रेजी साहित्य और उनकी संस्कृति का प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ने लगा। विभिन्न राजनैतिक तथा सामाजिक क्रान्तियों ने मानव-मन को स्वच्छन्द गति प्रदान की। भारतेन्दु और द्विवेदी युग में कवियों ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। प्रारम्भ में इन कवियों ने कविता के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया है। मातृभूमि और मातृभाषा को कविता का मुख्य विषय प्रायः इनके समय की आवश्यकता बन गयी थी। द्विवेदी-युग निरन्तर परिष्कार की ओर बढ़ रहा था, फिर भी उसमें हमें विशदता के दर्शन नहीं होते हैं। क्योंकि वह सुधारों का युग था, स्थूल प्रवृत्ति ज्यों की त्यों विद्यमान थी।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भाव समृद्धि पर ज्यादा जोर दिया, रूप-विन्यास पर उनका ध्यान बहुत कम गया है। काव्य की आत्मा, प्रयोजन, अभिव्यंजना आदि के विषय में उनकी धारणाएँ रीति कालीन काव्य शास्त्र के लिए नितान्त परिचित हैं। समाज चिन्तन, भक्ति-भावना और राष्ट्र-प्रेम ही काव्य का मुख्य मुद्दा था। लेकिन आधुनिक काल केकवियों में रीतिकाल की विलासिता नहीं आ पायी। इस काल की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक हलचल ने कविता को विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ने में बहुत सहायता पहुँचाई। इस समय गद्य के भी माध्यम से जन-जीवन के चित्रण में सहायता मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि उस

मानव अपने प्रकृति के अनुसार नवीनता के प्रति आकर्षित तथा अनुकरण प्रिय होता है। वह प्रायः प्रत्येक वस्तु को नवीन सौन्दर्य देने की चेष्टा करता है। इसीलिए उसकी समस्त अभिव्यक्तियां नवीन सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त होती दिखायी देती हैं। साहित्य में वीर गाथा काल से लेकर आज तक हमें इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु-युग तक आते-आते काव्य, ब्रज और अवधी की सीमाओं से दूर हटकर खड़ी बोली के क्षेत्र में अवतरित हुआ। यानी खड़ी बोली हमारी समस्त अभिव्यक्तियों का माध्यम बन रही थी। समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि विषयों का मुख्य रूप से समावेश साहित्य में होने लगा। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने देश काल को सीमाओं के निकटला दिया। अतः भारत भी विश्व के सम्पर्क में आने लगा। अंग्रेजों के शासन के कारण अंग्रेजी साहित्य और उनकी संस्कृति का प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ने लगा। विभिन्न राजनीतिक तथा सामाजिक क्रान्तियों ने मानव-मन को स्वच्छन्द गति प्रदान की। भारतेन्दु और द्विवेदी युग में कवियों ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। प्रारम्भ में इन कवियों ने कविता के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया है। मातृभूमि और मातृभाषा को कविता का मुख्य विषय प्रायः इनके समय की आवश्यकता बन गयी थी। द्विवेदी-युग निरन्तर परिष्कार की ओर बढ़ रहा था, फिर भी उसमें हमें विशदता के दर्शन नहीं होते हैं। क्योंकि वह सुधारों का युग था, स्थूल प्रवृत्ति ज्यों की त्यों विद्यमान थी।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भाव समृद्धि पर ज्यादा जोर दिया, रूप-विन्यास पर उनका ध्यान बहुत कम गया है। काव्य की आत्मा, प्रयोजन, अभिव्यंजना आदि के विषय में उनकी धारणाएँ रीति कालीन काव्य शास्त्र के लिए नितान्त परिचित है। समाज चिन्तन, भक्ति-भावना और राष्ट्र-प्रेम ही काव्य का मुख्य मुद्दा था। लेकिन आधुनिक काल केकवियों में रीतिकाल की विलासिता नहीं आ पायी। इस काल की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक हलचल ने कविता को विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ने में बहुत सहायता पहुँचाई। इस समय गद्य के भी माध्यम से जन-जीवन के चित्रण में सहायता मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि उस

मानव अपने प्रकृति के अनुसार नवीनता के प्रति आकर्षित तथा अनुकरण प्रिय होता है। वह प्रायः प्रत्येक वस्तु को नवीन सौन्दर्य देने की चेष्टा करता है। इसीलिए उसकी समस्त अभिव्यक्तियाँ नवीन सौन्दर्य की ओर प्रवृत्त होती दिखायी देती हैं। साहित्य में वीर गाथा काल से लेकर आज तक हमें इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

भारतेन्दु - युग तक आते-आते काव्य, ब्रज और अवधी की सीमाओं से दूर हटकर खड़ी बोली के क्षेत्र में अवतरित हुआ। यानी खड़ी बोली हमारी समस्त अभिव्यक्तियों का माध्यम बन रही थी। समाज सुधार, राष्ट्रीयता आदि विषयों का मुख्य रूप से समावेश साहित्य में होने लगा। आधुनिक वैज्ञानिक विकास ने देश काल की सीमाओं के निकटला दिया। अतः भारत भी विश्व के सम्पर्क में आने लगा। अंग्रेजों के शासन के कारण अंग्रेजी साहित्य और उनकी संस्कृति का प्रभाव हमारे साहित्य पर पड़ने लगा। विभिन्न राजनीतिक तथा सामाजिक क्रान्तियों ने मानव-मन को स्वच्छन्द गति प्रदान की। भारतेन्दु और द्विवेदी युग में कवियों ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। प्रारम्भ में इन कवियों ने कविता के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया है। मातृभूमि और मातृभाषा की कविता का मुख्य विषय प्रायः इनके समय की आवश्यकता बन गयी थी। द्विवेदी-युग निरन्तर परिष्कार की ओर बढ़ रहा था, फिर भी उसमें हमें विशदता के दर्शन नहीं होते हैं। क्योंकि वह सुधारों का युग था, स्थूल प्रवृत्ति ज्यों की त्यों विद्यमान थी।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने भाव समृद्धि पर ज्यादा जोर दिया, रूप - विन्यास पर उनका ध्यान बहुत कम गया है। काव्य की आत्मा, प्रयोजन, अभिव्यंजना आदि के विषय में उनकी धारणाएँ रीति कालीन काव्य शास्त्र के लिए नितान्त परिचित है। समाज चिन्तन, भक्ति-भावना और राष्ट्र-प्रेम ही काव्य का मुख्य मुद्दा था। लेकिन आधुनिक काल केकवियों में रीतिकाल की विलासिता नहीं आ पायी। इस काल की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक हलचल ने कविता को विशिष्ट दिशा की ओर मुड़ने में बहुत सहायता पहुँचाई। इस समय गद्य के भी माध्यम से जन-जीवन के चित्रण में सहायता मिली। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि इस

समय के महान आलोचक हुए। उस समय का कल्पना राष्ट्र की दीवारों से दूर मानव ऐक्य की भावना तक पहुँचने लगी। भारतीयता को व्यापक सन्दर्भ में देखा जाने लगा। मिश्रबन्धु, भगवान दीन, कृष्ण बिहारी मिश्र, पद्म सिंह, श्याम सुन्दर, गुलाब राय आदि लेखक छायावाद से पहले खड़ी बोली की परम्परा में चले आ रहे थे। खड़ी बोली में गद्य के पूर्ण रूप से विकसित होने से लोक जीवन की स्थिति साहित्य में अधिक विश्वसनीय बनी। कविता, कहानी, उपन्यास, एकांकी, प्रहसन, निबंध आदि साहित्य के सभी अंगों में धूम सी मच गयी। गोदान, गबन, तितली आदि उपन्यासों की रचना से अनेक सामाजिक कुरीतियों, अत्याचारों और रूढ़ियों का पर्दाफाश हुआ। भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन काव्यकार मर्यादा और कोरे आदर्शों का शीघ्र त्याग करने में सकोच कर रहे थे। सामंती व्यवस्था की समाप्ति के बाद पूंजीवादी युग का सूत्रपात हुआ। इससे अनेक दुष्परिणाम (भुखमरी, सामाजिक विषमता, असन्तोष) आदि पैदा हुए। महायुद्धोत्तर कालीन सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों ने भारतीय जनता के बीच अवसादमय वातावरण उत्पन्न कर दिया था। इसका प्रभाव साहित्य में भी परिलक्षित होने लगा। अतः उनकी रागात्मक प्रवृत्तियों ने अभिव्यक्ति का दूसरा माध्यम निश्चित किया। यह नवीनता लाक्षणिक प्रयोगों, ध्वन्यात्मकता एवं अन्योक्ति प्रधान शैली के रूप में व्यक्त हुई। कहीं-कहीं इसी शैली में लोक जीवन से ऊबे हुए मानव-हृदय की आध्यात्मिक भावनाएँ भी व्यंजित हुई लेकिन संकेतात्मक रूप में। काव्य साहित्य के इस नवीन रूप को छायावाद नाम दिया गया। छायावादी कवियों ने अपने को मर्यादा और थोथे आदर्शों से दूर रखा। व्यावहारिक क्षेत्रों में जो कुछ हो सकता है उसे उन्होंने काव्य का विषय बनाया। छायावादी कवियों ने समाज को एक नवीन दिशा में सोचने की दृष्टि दी। यह सत्य दिनो दिन उजागर होने लगा कि - "बीसवीं शताब्दी में जब कविता का क्षेत्र राजदरबारों से हटकर साधारण जनता में आ गया, तब नायिका-भेद कविता का विषय न रह सका और उसके स्थान पर सामान्य मानवता काव्य का विषय हो गयी। अतः आधुनिक काल में काव्य का विषय ईश्वर से लेकर सामान्य मानवता तक विस्तृत हो गया।"[1] अट्ठारहवीं शताब्दी में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में भारत भी उस भावना से प्रभावित होने लगा। परिणामतः आधुनिक हिन्दी काव्य का प्रधान

1· आ0 हिन्दी सा0 का विकास, डॉ0 कृष्ण लाल पृ0 45

विषय {1} मानव {2} प्रकृति और {3} राष्ट्र प्रेम स्वीकार कर लिया गया। छायावाद ने इन तीनों को अपने काव्य में स्थान दिया। उन्हे केवल मानव मात्र की चिन्ता थी और आधुनिक छायावादी कवि यह जानते थे कि संसार में व्याप्त परिवर्तन सम्पूर्ण संसार को प्रभावित कर सकता है। इसलिए छायावाद के दृष्टि पथ में संकीर्णता रह ही न गयी। एक तरफ तो उसने व्यक्ति का पूर्ण विकास किया और दूसरी तरफ नवीन विश्व समाज व विश्व संस्कृति का निर्माण किया। छायावादी कवियों के काव्य चिंतन का अध्ययन करने के बाद यह अध्ययन आवश्यक है कि उनके काव्य चिंतन में मौलिक दृष्टि कहां तक विद्यमान है तथा उन्होंने हिन्दी काव्य शास्त्र को प्रगति में किस सीमा तक योगदान किया है। छायावादी कवियों की रचना पर विभिन्न आलोचकों ने अनेको तरह की टिप्पणी की। किसी ने इसको पाश्चमी देशों की नकल माना तो किसी ने अस्पष्टता को संज्ञा दी। आलोचकों की आलोचना को देखकर छायावादी कवियों को स्वयं अपने काव्य के विषय में कुछ कहने की आवश्यकतामहसूस हुई। इसका प्रमुख उदाहरण पल्लव की भूमिका है। इसी तरह प्रसाद, निराला और महादेवी ने भी अपने काव्य के विषय में उन बातों के ओर आलोचकों तथा पाठकों का ध्यान आकृष्ट कराने की चेष्टा भी कर रहे थे, जिस पर उनकी दृष्टि नहीं जा रही थी। इसी प्रयोग में छायावाद के सम्बन्ध में कुछ आलोचकों के कथन द्रष्टव्य है जिनके आधार पर छायावादी कवियों के काव्य चिंतन सम्बन्धी तर्क पूरे काव्य को एक बार से समझने की दृष्टि प्रदान करते हैं -

"छायावाद का सामान्यतः अर्थ प्रस्तुत के स्थान पर उसको व्यन्जना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।"[1] नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्‌गम और स्वतन्त्र दर्शन की नियोजना का प्रतिफलन है, मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान छायावाद है। इसमें भावुकता, सांकेतिकता, रहस्य दुरूहता कोमल कान्त पदावली, प्रकृति प्रेम, उच्छृंखलता अनेक वस्तुएँ सम्मिलित है।"[2]

1· हिन्दी सा0 का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 669

2· जयशंकर प्रसाद, नन्द दुलारे बाजपेयी, पृ0 17

"छायावादी कविता की आत्मीयता प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य भावना, संवेदनशीलता, अथक जिज्ञासा, जीवन की लालसा, जीवन की आकांक्षा और इन सबके लिए संघर्ष करने की अनवरत प्रेरणा, छायावादी कविता का स्थायी सन्देश है।"[1] "छायावादी काव्य रीति-काव्य-परम्परा से नितान्त भिन्न है तथा उसमें अभिव्यंजना गत नवीन रूप प्राप्त होता है।"[2]

यह महत्त्वपूर्ण है कि छायावादी कवियों ने अपने काव्य के विषय में बहुत कुछ कहा है और आक्षेपों का उत्तर भी दिया है। सर्वप्रथम हम प्रसाद को लेते है। वैसे तो समस्त छायावादी कवियों ने काव्य के स्वरूप, काव्य भेद, काव्य-तत्त्व काव्य-वर्ण्य, काव्य-शिल्प, छायावाद, रहस्यवाद, आदर्शवाद के विवेचन पर ध्यान दिया हैं। इन्होंने छायावाद के अन्तर्गत अन्तःसंस्कार, प्रकृति दर्शन, कल्पना, सूक्ष्म सौन्दर्य का वर्णन किया है। रहस्यवाद के अन्तर्गत इनका दार्शनिक दृष्टिकोण आता है। आदर्श यथार्थ के अन्तर्गत देश, कालानुरूप संस्कृति, समाज, राष्ट्र, इतिहास, मानवता आदि का वर्णन है। काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध प्रसाद जी का प्रसिद्ध निबन्ध-संग्रह है। कामायनी, लहर, झरना, आँसू आदि की भूमिकाओं में इन्होंने विशेष रूप से तो कुछ नहीं लिखा है। लेकिन काव्य और कला उनके जीवन और कला उनके जीवन और काव्य सम्बन्धी धारणाओं को समझने में विशेष रूप से सहायक है। नन्ददुलारे वाजपेयी काव्य और कला के प्राक्कथन में लिखते हैं - "कुछ लोग श्रेय और प्रेय से विज्ञान और काव्य का विभाजन करते हैं, किन्तु प्रसाद जी का स्पष्ट मत है कि यद्यपि विज्ञान या दर्शन में श्रेय रूप से ही सत्य का संकलन किया जाता है और काव्य में प्रेय रूप की प्रधानता है, किन्तु श्रेय और प्रेय दोनों ही आत्मा के अभिन्न अंग है। काव्य के प्रेम में परोक्ष रूप से श्रेय निहित है। काव्य की व्याख्या में उन्होंने कहा है कि - काव्य को संकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से जो मेरा तात्पर्य है उसे भी समझ लेना होगा।"[3]

इस प्रकार मूर्त और अमूर्त की द्विविधा हटाकर प्रसाद ने श्रेय और प्रेय के झगड़े को दूर कर दिया है। वे शास्त्र और काव्य में केवल व्यावहारिक अन्तर मानते हैं।

---

1. छायावाद, नामवर सिंह पृ0 145
2. श्री शारदा मुकुटधर पाण्डेय {1920}
3. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे बाजपेयी पृ0 36

उनका विचार है कि आत्मा का विशुद्ध स्वरूप आनन्दमय है और उस विशुद्धता में सम्पूर्ण प्रकृति सन्निहित है। उनके अनुसार - "आदि वैदिक काल में इस आन्मवाद के प्रतीक इन्द्र थे, और यही धारा शैव और शाक्त आगमों में चलकर बही। यही विशुद्ध आत्मदर्शन था जिसमें प्रकृति और पुरुष की द्वयता विलीन हो गयी।"[1] छायावादी काव्य इसी विराट समन्वय का प्रतिफल है। उनका दर्शन जीवन में पूर्ण रूप से व्यावहारिक और उपयोगी है। मनु की जीवन यात्रा श्रेयोन्मुखी है। प्रेय के आत्यंतिक स्वरूप के कारण उन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा और दुःख उठाना पड़ा लेकिन जब श्रेय का पथ उनके सम्मुख प्रशस्त हुआ तो वे आनन्द में लीन हो गये। प्रसाद काव्य में मौलिक अनुभूति की प्रेरणा को ही मुख्य मानते हैं। मौलिक रूप से जो अनुभूति कवि हृदय में है, काव्य प्रणयन के क्षणों में उसी की सत्ता सर्वोपरि होगी। उनका साहित्य में काव्य का आनन्द उसकी रस-चेतना अथवा भावात्मक सत्ता पर आश्रित है। इन्होंने जीवन की भाँति काव्य में भी आनन्द साधना को विशेष महत्व दिया है। अतः प्रसाद काव्य जीवन और दर्शन में आनन्द रस की समाहितता स्वीकार करते हैं। प्रसाद लोक शिक्षा को भी उसका निश्चित लक्ष्य मानते हैं - "संसार में काव्य से दो तरह के लाभ पहुँचते है - मनोरंजन और शिक्षा। शिक्षा का अंश साहित्य के सब अंशों से सम्बन्ध रखता है। अतः वह अंश रूप से प्रायः सत्कवित् में मिलेगा।"[2] प्रसाद ने अपने निबन्ध में छायावाद के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चर्चा की है। छायावाद की आवश्यकता क्यों पड़ी इस ओर संकेत करते हुए वे लिखते हैं - "अभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा बाह्य स्थूल आकार में भी कुछ विचित्रता उत्पन्न करती है। सूक्ष्म अभ्यन्तर भावों के व्यवहार में प्रचलित पद योजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली या वाक्य-विन्यास आवश्यक था।"[3] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रसाद के अनुसार ध्वन्यात्मकता, सौन्दर्य, प्रतीक विधान, लाक्षणिकता और उपचार वक्रता छायावाद की प्रमुख कलागत विशेषताएँ हैं। प्रसाद वेदना की छाया में कवि अनुभूति के प्रकटीकरण को ही छायावाद मानते हैं - "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।"[4] छायावाद के उदय के साथ-साथ आलोचनाएँ भी

1· काव्य और कला -प्रसाद पृ0 9
2· इन्दु - प्रसाद - पृ0 181-182
3· काव्य और कला - प्रसाद पृ0 122
4· काव्य और कला - प्रसाद पृ0 123

उत्पन्न हुई। प्रसाद जी उन आक्षेपों के उत्तर में लिखते हैं - "कुछ लोग इस [illegible] में अस्पष्टतावाद का भी रंग देख पाते हैं। हो सकता है जहां कवि ने अनुभूति [illegible] तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहां अभिव्यक्ति विशृंखल हो गई हो, शब्दों का [illegible] ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया [illegible] परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट, [illegible]-मात्र हो, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है। हाँ मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है। प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आकर छायावाद की सृष्टि होती है, यह सिद्धान्त भी भ्रामक है। यद्यपि प्रकृति का आलम्बन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य धारा में होने लगा है, किन्तु प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"[1] इस तरह के अनेक उद्धरण मिल जाएंगे जहां प्रसाद छायावाद के विषय में अपनी मान्यता तथा आस्था को व्यक्त करते हुए देखे जा सकते हैं। उनकी दृष्टि में छायावाद क्या है और उसकी विषय वस्तु क्या है इसको समझने में भी सरलता होती है।

प्रसाद के काव्य में लौकिक प्रेम और [illegible] भावना का भी वर्णन मिलता है। राष्ट्रीयता को वे काव्य का गुण मानते हैं। प्रसाद के प्रायः सभी नाटक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत है। और यह राष्ट्रीयता इतिहास से जुड़ी हुई है क्योंकि इनकी सभी रचनाओं पर प्रायः इतिहास की छाप है। राष्ट्रीयता के विषय में वे कवि और कविता नामक लेख में लिखते हैं - "श्रृंगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तियां शिथिल और अकुला गई है। इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय संगीतमयी वृत्ति स्फुरणकारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली और गम्भीर पद विक्षेपकारिणी शान्तिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिए।"[2] इस तरह प्रसाद सौन्दर्य-व्यंजना का तिरस्कार नहीं करते।

---

1. काव्य और कला - प्रसाद - पृ0 127-28
2. इन्दु - प्रसाद पृ0 24

प्रसाद, भाषा के क्षेत्र में नूतन प्रयोग को सार्थक बताते है। उनका विचार है कि एक शब्द अनेक स्थूल व सूक्ष्म अर्थो को प्रकट करता है। वे शब्द-विन्यास के इस मर्म को उद्‌घाटित करते हुए लिखते है - "इस नए प्रकार की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों की योजना हुई, हिन्दी में पहले वे कम समझे जाते थे, किन्तु शब्दों में भिन्न प्रयोग से एक स्वतन्त्र अर्थ उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप के शब्द भी उस शब्द विशेष का नवीन अर्थ द्योतन करने में सहायक होते हैं। भाषा के निर्माण में शब्दों के इस व्यवहार का बहुत हाथ होता है।"[1] छायावादी कवियों में आन्तरिक भावों का प्राधान्य है। अलंकार, शैली, छन्द रस, बिम्ब और प्रतीकों के विषय में भी प्रसाद का आग्रह प्राचीनता से आधुनिकता की ओर अधिक है। इस विवेचन में इन्होंने ऐतिहासिक पद्धति अपनायी है। रस के विषय में वे लिखते है - "इन्हीं नाट्योपयोगी काव्यों में आत्मा की अनुभूति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुई है।"[2] इस तरह प्रसाद के काव्य में अभिव्यंजना वृहत रूप से समन्वय युक्त है। प्रसाद की कविता एक नवीन संस्कृति और दार्शनिकता को जन्म देती है। इनके काव्य में संकीर्णता नहीं है। इनमें उन तत्त्वों का समावेश है जो जीवन में संतुलन रखने में सहायक हुई है।

निराला मुक्ति दूत के रूप में काव्य क्षेत्र में प्रवेश करते है। उनका यह मुक्ति आंदोलन काव्य में ही नहीं विद्यमान था, वे समाज को भी प्राचीन रूढ़ियों से मुक्त करना चाहते थे। मुक्त काव्य के विषय में वे लिखते है - "मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"[3] निराला का काव्य संगीतमय है। गीतिका में इसकी स्पष्ट छाप है। प्रसाद जी गीतिका के प्रारम्भ में लिखते हैं - "निराला जी हिन्दी कविता की नवीन धारा के कवि है, और साथ ही भारती-मंदिर के गायक भी है। उनमें केवल पिक की पंचम पुकार ही नहीं, कनेरी की सी एक मीठी तान ही नहीं, अपितु इनकी गीतिका में सब स्वरों का समारोह है।"[4] संगीत के महत्व के विषय में निराला स्वयं लिखते है - "जहां आनन्द को लोकोत्तर कहकर विज्ञों ने निर्विषयत्व की व्यंजना की है - संसार से बाहर ऊंचे रहने वाले किसी की ओर इंगित किया है - आनन्द की अमिश्र सत्ता प्रतिपादित की है, वहां संगीत का यथार्थ रूप अच्छी तरह समझ में आ जाता है।"[5]

1· काव्य और कला, प्रसाद पृ0 124 2· काव्य और कला, प्रसाद पृ0 44
3· परिमल, निराला भूमिका पृ0 12 4· परिमल, निराला, भूमिका पृ0 12
5· गीतिका निराला भूमिका पृ0 10-21

निराला समाज में किसी प्रकार की भेद-भावना नहीं स्वीकार करते हैं। वे मनुष्य का विश्व व्यापी रूप देखना चाहते थे। वर्ण-व्यवस्था की संकीर्णता की आलोचना करते हुए वे लिखते है - "इस प्रकार के देशव्यापी बल्कि विशद भावना द्वारा विश्व व्यापी मनुष्य आगे चलकर आप ही अपनी जाति का सृजन करेंगे। जहां ब्राह्मण सज्जन और वैश्य सज्जन की एकता में फर्क न होगा। उस स्वतन्त्र भारत में उस वर्ण-व्यवस्था से केवल परिचय ही प्राप्त होगा, उच्च-नीच निर्णय नहीं।"[1]

निराला ने जीवन में सदा विरोध ही पाया। लेकिन उनके स्वाभिमान में कमी नहीं हुई। निराला भारतीय संस्कृति के शक्ति पक्ष पर विशेष बल देते थे। लेकिन शक्ति और ओज के उपासक होने के कारण वे सौन्दर्यान्वेषी और कोमल भावनाओं के धनी थे। उनके काव्य में शक्ति रीढ़ की हड्डी की तरह है, तो संगीत यशस्विनी की तरह। वे दोनों में सामंजस्य चाहते थे तथा इनमें जरा सा भी अन्तर आ जाने पर तिलमिला उठते हैं।

निराला ने काव्य की सामयिकता का सजग निर्वाह किया है। उनका विचार है कि कवि को विविध दृश्यों को स्वानुभूति के आधार पर प्रकट करना चाहिए। इस विषय में वे लिखते हैं - "साहित्यिक संसार की अच्छी चीजों का समावेश अपने साहित्य में करते हैं और उनके प्राणों के रंग से रंगीन होकर वे चीजें साधारणों को भी रंग देते है।"[2] और इसी को वे काव्य का प्रयोजन व काव्य-हेतु मानते हैं।

काव्य-शिल्प के विषय में निराला भाषा , छन्द तथा अलंकारों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। लेकिन उनके बिम्ब, प्रतीक व शैली पर भी छायावाद की स्पष्ट छाप है। भाषा के विषय में उनका विचार है कि कवि को भावानुरूप भाषा प्रयोग करनी चाहिए। यत्र-तत्र क्लिष्टता को वे दोष नहीं मानते हैं। इस विषय में वे लिखते हैं - "किसी भाव को जल्दी और आसानी से हम तभी व्यक्त कर

1· प्रबन्ध प्रतिमा निराला, पृ0 344-45
2 गीतिका, निराला - भूमिका पृ0 5
3· चयन, निराला पृ0 26

सकेंगे जब भाषा पूर्ण स्वतन्त्र और भावों की सच्ची अनुगामिनी होगी।"[1] संस्कृत के तत्सम शब्दों को ग्रहण करने में वे भाषा में क्लिष्टता नहीं स्वीकार करतें। उनकी भाषा पांडित्य पूर्ण भी है। काव्य-भाषा के विषय में इनका मत इस तरह है -

"अलंकार-लेश-रहित, श्लेष-हीन,
शून्य विशेषणों से,
नग्न नीलिमा-सी व्यक्त,
भाषा सुरक्षित वह वेदों में आज भी।"[2]

इससे स्पष्ट होता है कि वे भाषा में कृत्रिमता का विरोध करते हैं। निराला मुख्यतः मुक्त छन्द के समर्थक है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वे अन्य भाषाओं के छन्दों की अवहेलना करते हैं - इस निमित्त बेला के आवेदन में लिखते हैं - "नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजले भी है, जिनमें फारसी के छन्दः शास्त्र का निर्वाह किया गया है।" उनकी मुक्त काव्य सम्बन्धी प्रेरणा से यह प्रमाणित होता है कि वे उद्भावक कवि की प्रतिभा से काव्य रचना करते हैं इसका मतलब यह नही कि वे अन्य छन्दो की अवहेलना करते हैं। लेकिन मुक्त छन्द की महत्ता पर वे विशेष बल देते है। परिमल की भूमिका में वे लिखते है - "मुक्त काव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"[3] निराला के अध्येताओं ने निश्चय ही इन्हीं तथ्यों के आधार पर श्रेय उन्हें दिया है। निराला के मुक्त छन्द का छन्द-शास्त्र में विशेष महत्व है। निराला काव्य में बिम्ब प्रतीकों व अलंकारों के विषय में कुछ चिन्तना करते हुए ही नहीं दिखायी देते हैं बल्कि इन्होंने इनके नवीनीकरण का भी प्रयास किया है। इनका अभिव्यंजना-शिल्प छायावादी भावना से ओत-प्रोत है। इन्होंने गीति काव्य के क्षेत्र में अधिक विशदता दर्शायी है। प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा निराला प्रगीत मुक्तकों की रचना में विशेष सफल रहे हैं। संस्कृत काव्य-शास्त्र, प्राचीन भारतीय दर्शन, बौद्ध

---

1. चयन, निराला, पृ0 26
2. परिमल, निराला, पृ0 214
3. परिमल भूमिका निराला पृ0 14

संस्कृति, पाश्चात्य साहित्य शास्त्र, रवीन्द्र साहित्य अरविन्द दर्शन, कर्मवाद आदि के चिन्तन के उपरान्त इन्होंने अनेक मार्मिक उद्भावनाएं की है। छायावाद के कवि के लिए समाज विश्व का पर्याय बन गया है, उसने मानव को विश्व मानव का रूप दिया है। उनकी दृष्टि से मानव समाज समस्याओं से रहित तभी हो सकता है, जब उसकी भेद-बुद्धि नष्ट हो जाय। छायावादी कवियों ने एक नवीन जीवन दर्शन स्थापित किया। धर्म, सस्कृति, सभ्यता, सुरुचि, संस्कार आदि की उसने नवीन व्याख्या की और उसी व्याख्या के परिप्रेक्ष्य में विश्व जीवन के भविष्य की रूप रेखा निश्चित की। इन्हीं मानदण्डों को लेकर उसने अपनी यात्रा शुरू की।

छायावाद और छायावादी काव्य दोनों पर सबसे अधिक चर्चा सम्भवतः पंतजी ने की है। पल्लव की भूमिका इसका सबसे बड़ा साक्ष्य है। यद्यपि पंत ने अपनी सभी रचनाओं की भूमिका में छायावाद और कविता के विषय में चर्चा की है, लेकिन पल्लव की भूमिका में इस तरह के उदरण सहज ही खोजे जा सकते हैं। पंत अपनी कविता पर पाश्चात्य कवियों के प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखते हैं - "पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः शेली, वर्डसवर्थ, कीट्स और टेनिसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि उन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा और पश्चिम की मशीन-युग की सौन्दर्य कल्पना ही में परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम में उनके युग का स्लोगन रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूँ।"[1] पन्त की कविता पर उक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। पूर्व और पश्चिम के मेल से उन्होंने एक नयी दृष्टि प्रदान की है। अध्यात्म की स्थिति को वे मानव जीवन में अनिवार्य समझते हैं। ये जीवन की बाह्य और आन्तरिक गतियों में समन्वय चाहते हैं। पंत राजनीतिक या (राष्ट्रीय) आर्थिक, आभ्यंतरिक (सांस्कृतिक व आध्यात्मिक) सामाजिक दृष्टिकोण में समन्वय व सुधार के प्रतिपादक है। इस विषय में वे लिखते हैं - "लोक कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (संप्रीत, राजनीतिक, आर्थिक) और

1· आधुनिक कवि - पंत पृ0 19

आभ्यंतारिक (सांस्कृतिक आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है। मात्रा और गुण दोनों में संतुलन होना चाहिए। जहाँ एक ओर नग भूमि का उद्धार करना जरूरी है वहाँ पिछली संस्कृतियों के विरोधों एवं रीति नीतियों की संकीर्णता से मुक्त होकर मानव चेतना को युग उपकरणों के अनुरूप विकसित लोक-जीवन के निर्माण करने में संलग्न होना है।"[1]

पंत जी छायावाद को मूल्य निष्ठ काव्य मानते हैं - "छायावाद व्यक्ति निष्ठ न होकर मूल्य निष्ठ रहा है। उसका आदर्श विगत युगों की एक देशीय उदात्तता को अतिक्रम कर विश्व मुखी औदात्य से अनुप्राणित रहा है।"[2]

ये काव्य को सामाजिक पुनर्निर्माण का साधन मानते हैं - "साहित्य अपने व्यापक अर्थ में मानव जीवन की गम्भीर व्याख्या है।[3] और यही इनके काव्य का स्वरूप भी है। वेदनानुभूति से ही काव्य का उद्भव स्वीकार करते हैं -

> वियोगी होगा पहला कवि,
> आह से उपजा होगा गान।
> उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
> वही होगी कविता अनजान।।[3]

छायावाद क्या है ? इसके बाद छायावाद का पराभव क्यों हुआ ? इसके उत्तर में वे लिखते हैं - "छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रह कर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।"[4] पंत छायावाद में विश्व भावना का भी दर्शन करते हैं जो छायावाद की प्रमुख विशेषता है। पंत प्रकृति के चितेरे भी कहे जाते हैं। क्योंकि पंत का बाल्यकाल

---

1. युगवाणी, पंत पृ0 10
2. छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ0 106
3. गद्य पथ, पंत पृ0 205
4. पल्लव, पंत पृ0 13
5. आधुनिक कवि भाग-2, पंत पृ0 11

प्रकृति के गोद में ही बीता। उनके काव्य पर प्रकृति की स्पष्ट छाप है और इसे वे स्वीकार करते हैं - "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्माचल प्रदेश को है।"[1]

पल्लव की विस्तृत भूमिका में पंत भाषा, परिष्कार, शब्द-सौन्दर्य, भाव सौन्दर्य और अभिव्यंजना की प्रभावशाली शक्ति पर बल देते हैं। ब्रज-भाषा में यह सम्भव नहीं था। इसीलिए खड़ी बोली को उन्होंने काव्य में स्थान दिया क्योंकि यह महान संभावनाओं को चरितार्थ कर सकती थी। प्रसंगानुकूल शब्द के अनेक रूपों के अलग-अलग प्रयोग और नवीन शब्दों की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। ये शब्दों में प्राणों का संगीत भरना चाहते थे। चित्र-भाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते हैं - "कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है उसके बाद शब्द होना चाहिए, जो बोलते हो, सेव की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके। चित्र भी गाता हुआ हो। जिस प्रकार निर्झर में गति और स्वर मिलकर एक हो जाते है उसी प्रकार भाषा और भावों में सामंजस्य होना चाहिए।"[2] इस तरह वे भाव और भाषा में मेल चाहते थे।

पंत पूर्णतया अलंकारवादी नहीं थे, लेकिन वे अलंकारों के महत्व को स्वीकार करते हैं। पल्लव की भूमिका में वे लिखते हैं - "कविता में भी विशेष अलंकारों से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है।"[3] अलंकारों के अलावा छन्द के स्वरूप विवेचन में इन्होंने विविध छन्दों, सवैया, कवित्त, मुक्त और छन्द के अंगों (तुक और लय) का विवेचन किया है। लेकिन इन्होंने मात्रिक छन्दों को श्रेष्ठ और उपयुक्त माना है - "हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है।)[4] निराला की भाँति ये मुक्त छन्द को काव्य में स्थान देने पर विशेष बल देते हैं और लिखते हैं -

खुल गये छन्द के बंध, पाश के रजत पाश[5]

1· आधुनिक कवि भाग-2, भूमिका - पंत, पृ0 1
2· पल्लव की भूमिका, पंत - पृ0 30-31
3· पल्लव, पंत - पृ0 19
4· पल्लव, पंत - पृ0 22-23
5· युगवाणी, पंत पृ0 3

छन्द की रचना में ये तुक और लय की भी विवेकपूर्ण ढंग से विवेचन करते हैं। इस ... में उनका विचार है कि - "तुक राग का हृदय है, जहाँ उसके प्राण ... विशेष रूप से सुनायी पड़ती है।[1] इसके अलावा इन्होंने बिम्ब व प्रतीकों का ... ढंग से निर्वाह किया है तथा अपने काव्य में स्थान दिया है। इसके साथ-साथ ... जी कल्पना को काव्य का मुख्य उपादान स्वीकार करते हैं। सत्य और शिव के ... को स्वीकार करने के बाद इनका विचार है कि सौन्दर्य को भी काव्य में स्थान ... जाय। इसके लिए उन्होंने कल्पना को काव्य का मुख्य उपकरण माना है - "मैं कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ और उसे ईश्वरीय प्रतिभा का अंग भी मानता हूँ।"[2] अतः इससे यह सिद्ध होता है कि कल्पना के प्रति कवि का आग्रह सौन्दर्य की पुष्टि में सहायक होता है।

महादेवी के काव्य का एक पहलू आस्था और विश्वास है। उन्होंने जिस जीवन दर्शन की व्याख्या अपने काव्य में की है उसमें आत्मोत्सर्ग और विश्वास दिखाई पड़ता है। दीपशिखा की भूमिका में वे लिखती है - "दीपशिखा में अविश्वास का कोई कम्पन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका स्थान रहे, ऐसी कामना नही, पर रात की सघनता को इनकी लौ झेल सके यह इच्छा तो स्वाभाविक ही रहेगी।"[3] इसके अलावा भारतीय दर्शन भी इनके काव्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। छायावाद का सूक्ष्म न वर्गगत है, न सम्प्रदायगत और न तो बहुत अध्यात्मपरक ही है। इसलिए महादेवी विश्व जीवन में एक स्वस्थ संस्कृति के निर्माण के लिए काव्य में उसका प्रतिपादन चाहती है। सूक्ष्म की विवेचना करती हुई वे लिखती है - "वह सूक्ष्म जिसका आधार एक कुत्सित से कुत्सित, कुरूप से कुरूप और दुर्बल से दुर्बल मानव वानर या वनमानुष की पंक्ति में न खड़ा होकर सृष्टि में सुन्दरतम ही नहीं शक्ति और बुद्धि में श्रेष्ठतम मानव के भी कन्धे से कन्धा मिलाकर उससे प्रेम और सहयोग

1· पल्लव {भूमिका} पंत, पृ0 29

2· आधुनिक कवि भाग-2, पंत पृ0 6

3· दीपशिखा - महादेवी, पृ0 64

की साधिकार याचना कर सकता है। वह सूक्ष्म जिसके सहारे जीवन की विषम अनेकरूपता में भी एकता का तन्तु ढूँढ़कर हम इन रूपों में सामजस्य स्थापित कर सकते हैं, धर्म का रूढ़िगत सूक्ष्म न होकर जीवन का सूक्ष्म है। इससे रहित होकर स्थूल अपने भौतिकवाद द्वारा जीवन में विकृति उत्पन्न कर देगा जो अध्यात्म परम्परा न की थी।"[1]

छायावाद का सूक्ष्म नारी उत्थान की भावना के सर्वथा अनुकूल था। भारतीय नारी हमेशा उपेक्षा की शिकार रही है। महादेवी जी एक स्त्री होने के कारण स्त्री की दयनीय स्थिति से भली-भाँति परिचित हैं। उनका विचार है कि बिना नारी के विकास के भारत का सास्कृतिक विकास अधूरा ही रहेगा। नारी के विषय में उनका विचार इस तरह है - "भारतीय पुरुष जीवन में नारी का जितना ऋणी है उतना कृतज्ञ नही हो सका। अन्य क्षेत्रों के समान साहित्य मे भी उसकी स्वभावगत सकीर्णता का परिचय मिलता रहा है। आज का यथार्थ इस सनातन अकृतज्ञता का ब्योरेवार इतिहास बनकर तथा पुराने अधिकारो की आवृत्तियाँ रचकर ही उऋण होना चाहता है तो यह प्रवृत्ति वर्तमान स्थिति में आत्म घातक सिद्ध होगी।"[2] उन्होंने युगों की स्थितियों के अध्ययन के बाद ही स्त्रियों के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है।

महादेवी की कविता का एक प्रमुख तत्व है कि वे मनुष्य को कविता मानती है और काव्य के स्वरूप निर्धारण में यह सहायक है। क्योंकि काव्य की उत्कृष्टता किसी विशेष विषय पर आधारित नही है। वे मानव जीवन के जड़-चेतन प्रक्रिया का विश्लेषण करती हुई लिखती है - "मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द-चित्र मात्र है। जिससे उसका व्यक्तित्व और ससार के साथ उसकी एकता जानी जाती है।"[3]

महादेवी के काव्य मे दु:खवाद, पीड़ावाद, निराशावाद आदि की अभिव्यक्ति का निरूपण प्राय सभी आलोचको तथा स्वय महादेवी ने भी किया है। वैसे तो महादेवी

---

1 आधुनिक कवि महादेवी वर्मा पृ0 21-22

2 दीपशिक्षा (चिन्तन के कुछ क्षण) महादेवी वर्मा पृ0 52

3 यामा - महादेवी, पृ0 10-11

का पूरा काव्य वेदना पर आधारित है, यानी वेदना ही इनकी काव्य प्रेरणा है। क्योंकि इन्हें मिलन की अपेक्षा विरह अधिक प्रिय है। लेकिन यह पीड़ा जो उन्हें अत्यन्त प्रिय है, वह उसे छोड़ना नही चाहती हैं। महादेवी सुख से ज्यादा दु ख को महत्व देती है और उनका विश्वास है कि दु ख ही मानव-मात्र को एक दूसरे के निकट लाने का साधन है। उनका मन्तव्य है कि - "दु ख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है जो सारे ससार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढी तक भी न पहुँचा सके किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को मधुर अधिक उर्वर बनाये बिना नही गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेले भोगना चाहता है, परन्तु दु ख सबको बाँटकर। विश्व जीवन में अपने जीवन को विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।"[1]

वेदना की अभिव्यक्ति के लिए महादेवी ने दो विधियों को अपनाया है। एक में उनकी आत्म वेदना का स्पष्ट कथन है और दूसरे में प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से पीड़ा की अभिव्यक्ति है। इसलिए वेदना महादेवी के काव्य का अर्थ है, और करुणा को इसका मेरुदण्ड कह सकते हैं तथा इनकी वेदना का चरम रूप भी।

महादेवी के काव्य का अभिव्यक्ति पक्ष सम्भवत· उतना ही सबल अथवा प्रभावपूर्ण है। जितना उनका वैचारिक चितन। भाषा की सकेतात्मकता को स्वाभाविक मानती हुई लिखती है - "इस प्रकार की अभिव्यक्तियों में भाव रूप चाहता है, अत शैली का सकेतमयी हो जाना सहज सम्भव है।"[2] इनकी यह धारणा पल्लव की भूमिका के काव्य भाषा सम्बन्धी विचारों से साम्य रखती है। इन्होंने रूढ़ शब्दों को नवीन रूप दिया है, और नवीन शब्दों की सृष्टि भी की है। इस विषय में महादेवी लिखती है - "छायावाद ने नये छन्द बन्धों में, सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति का जो रूप देना चाहा, वह खड़ी बोली की सात्विक कठोरता नही सह सकती थी।

---

1 दीपशिखा, महादेवी (चिन्तन के क्षण)

2 महादेवी का विवेचनात्मक गद्य - महादेवी, पृ0 92

अत कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँटकर तथा कुछ नये शब्द गढ़ कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलवर दिया।"[1] इन विशेषताओं का उल्लेख पन्त और प्रसाद ने भी किया है। छायावादी अन्य कवियों की तरह इन्होंने प्रसगवश छन्द विवेचन भी किया है। इनका विचार है कि एक भाषा के छन्द को दूसरे में ग्रहण नही किया जा सकता - "छन्द तो भाषा के सौन्दर्य की सीमायें हैं अत भाषा विशेष से भिन्न करके उनका मूल्याकन असम्भव हो जाता है।"[2] इसलिए भाषा के अनुरूप छन्दों को नवीन रूप प्रदान करना इनके लिए समयानुकूल था। इसी तरह इनके अलकारो, बिम्बो व प्रतीको पर भी छायावाद की स्पष्ट छाप है। महादेवी द्वारा प्रयुक्त छन्द, बिम्ब, प्रतीक आदि काव्य विशेषताएँ छायावादी कविता के धरोहर बन गये।

इन प्रमुख चारो छायावादी कवियों के अलावा कुछ अन्य कवि भी छायावादी कवियों की श्रेणी में गिने जाते हैं। इन कवियों में मुकुटधर पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, माखन लाल, गोपाल शरण सिह, सियाराम शरण गुप्त, नवीन, दिनकर, वियोगी, रामकुमार वर्मा, भगवती चरण आरसी प्रसाद सिह आदि के नाम उल्लेखनीय है। आचार्य शुक्ल, मुकुटधर पाण्डेय और मैथिली शरण गुप्त को छायावाद का प्रवर्तक मानते हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "अत हिन्दी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्ही को विशेषत. श्री मैथिली शरण गुप्त और मुकुट धर पाण्डेय को समझना चाहिए।"[3] गुप्त जी के काव्य में दिवेदी युगीन् प्रवृत्तियाँ दिखायी देती है, इसलिए हम उन्हें उद्भावक नही मान सकते। मुकुटधर पाण्डेय सरस्वती में प्रकाशित अपने लेखों व कविताओं में छायावाद की विशेषता (सूक्ष्म अभिव्यजना, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति, कल्पनातिरेक) की ओर सकेत तो अवश्य किया है पर वास्तव में छायावाद का व्यापक स्वरूप प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी में ही मिलता है।

प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी छायावाद के क्षेत्र में पदार्पण किया है। ये अन्य कवि काव्य रचना के लिए स्वतन्त्र

---

1 महादेवी विवचेनात्मक गद्य, महादेवी, पृ0 65
2 उपरोक्त, पृ0 55
3 हिन्दी सा0 का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 650

तो है, लेकिन विशिष्ट भाव धारा से संलग्न कम। इन कवियों में सामाजिक चेतना की अपेक्षा व्यक्तिवादिता अधिक है। इनकी रचनाओं में छायावाद का पूर्ण परिपाक नही हो पाया है। जिन तत्वों के कारण छायावादी काव्य अमर हुआ, उसका इनमें पूर्ण स्पर्श नही हो पाया। चित्रात्मकता, अभिव्यक्ति की नवीन शैली, प्रतीकात्मकता, प्रकृति का मानवीकरण, सूक्ष्म अभिव्यजना, प्रेम का उदात्त स्वर तो सभी छायावादी कवियों में मिलेगा, लेकिन ये कवि वत्त चित होकर लम्बे समय तक इस क्षेत्र में टिक नही सके। परिणामत· इन कवियों का काव्य-विकास आगे चलकर विभिन्न दिशाओं में हुआ। क्योंकि जब छायावाद का विकास होने लगा तो इन प्रमुख अन्य कवियों में कुछ पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण करने लगे और कुछ कवि छायावाद के अलावा दूसरी धारा की तरफ मुड़ने लगे। आत्माभिव्यक्ति और आत्माभिव्यंजना कवि की स्वतन्त्र उपज है और जो कवि हृदय और मस्तिष्क से जितना स्थिर होगा उतना ही उसका रचनात्मक विकास होगा। यह बात अन्य कवियों मे नही मिलती।

छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं को व्यापक अनुभूति, शब्द-सोष्ठव, मनोरंजनकारी, काल्पनिक, चित्र-विधान एव तन्मयकारिणी भाव-धारा प्रदान की हैं। छायावादी कवियों ने चितन की जो परम्परा अपनायी उसका प्रभाव आगे आने वाले कवियों पर भी दिखायी पड़ता है।

पुस्तक सूची

पुस्तक सूची मूल-ग्रन्थ

1·	अयोध्या का उद्वार	जयशकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी तृतीय सं0
2	अजात शत्रु	जयशकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी प्रथम सं0
3·	आँसू	जयशकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी द्वितीय सं0
4·	उर्वशी	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन प्रसाद मंदिर प्रथम स0
5·	करूणालय	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार इलाहाबाद द्वितीय सं0
6·	कानन कुसुम	जयशकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी प्रथम सं0
7·	कामायनी	जयशकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी द्वितीय सं0
8·	काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन गोवर्धनसरायं प्रथम सं0
9·	चन्द्रगुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार इलाहाबाद नवम् सं0
10·	झरना	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार इलाहाबाद सातवां सं0
11·	ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार इलाहाबाद सं01990
12·	प्रेम पथिक	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाशन वाराणसी प्रथम सं0
13	प्रेम राज्य	जयशंकर प्रसाद	प्रसाद प्रकाश वाराणसी प्रथम सं0
14·	लहर	जयशंकर प्रसाद	भारती भण्डार लीडर प्रेस दसवां सं0
15·	स्कन्धगुप्त	जयशंकर प्रसाद	भारती भंडार लीडर प्रेस उन्नीसवां सं0
16·	अनामिका	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	भारती भंडार प्रयाग प्रथम स0
17·	अर्चना	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	भारती भंडार प्रयाग प्रथम सं0
18·	अपरा	निराला	भारती भडार प्रयाग सातवां सं0
19·	अणिमा	निराला	युग मंदिर उन्नाव द्वितीय सं0
20	आराधना	निराला	साहित्यकार सदन प्रयाग प्रथम सं0
21·	कुकुरमुत्ता	निराला	लीडर प्रेस इलाहाबाद प्रथम सं0
22	गीतिका	निराला	भारती भण्डार इलाहाबाद छठवां सं0
23	चाबुक	निराला	कला मन्दिर प्रयाग 1954 ई0
24·	चयन	निराला	पटना, बिहार ग्रंथम बुक प्रथम सं0
25·	तुलसीदास	निराला	लीडर प्रेस इलाहाबाद चतुर्थ सं0

26·	नये पत्ते	निराला	निरूपमा प्रकाशन प्रथम सं0
27·	परिमल	निराला	गंगा पुस्तक माला लखनऊ चतुर्थ सं0
28·	प्रबन्ध प्रतिमा	निराला	लीडर प्रेस, इलाहाबाद प्रथम स0
29·	बेला	निराला	हिन्दुस्तानी पब्लिकेशन इलाहाबाद प्रथम सं0
30·	रवीन्द्र कविता कानन	निराला	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी प्रथम सं0
31·	सरोज स्मृति	निराला	लीडर प्रेस इलाहाबाद आठवां सं0
32·	आधुनिक कवि	सुमित्रा नंदन पंत	राजकमल प्र0 छठां सं0
33·	कला और बूढा चांद	पंत	राजकमल प्र0 प्रथम सं0
34	गद्य पथ	पंत	साहित्य भवन इलाहाबाद प्रथम स0
35·	ग्राम्या	पंत	भारती भण्डार इलाहाबाद प्रथम स0
36·	ग्रन्थि	पंत	इण्डियन प्रेस लि0 प्रयाग प्रथम स0
37·	गुंजन	पंत	लीडर प्रेस इलाहाबाद प्रथम सं0
38·	चिदम्बरा	पंत	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
39·	छायावाद पुनर्मूल्यांकन	पंत	लोकभारती प्रकाशन तृतीय सं0
40	पल्लव	पंत	भारती भण्डार इलाहाबाद आठवा सं0
41·	पल्लविनी	पंत	राजकमल प्रकाशन अष्टम सं0
42·	युगान्त	पंत	लीडर प्रेस प्रयाग द्वितीय स0
43·	युगवाणी	पंत	लीडर प्रेस प्रयाग प्रथम सं0
44·	रश्मि बध	पंत	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
45·	लोकायतन	पंत	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
46·	वाणी	पंत	भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी प्रथम सं0
47·	वीणा	पंत	लीडर प्रेस इलाहाबाद प्रथम सं0
48·	शिल्प और दर्शन	पंत	लीडर प्रेस इलाहाबाद द्वितीय सं0
49·	स्वर्णधूलि	पंत	राजकमल प्रकाशन दिल्ली पंचम सं0
50	स्वर्ण किरण	पंत	लीडर प्रेस इलाहाबाद चतुर्थ सं0
61	साठ वर्षः एक रेखांकन	पंत	लीडर प्रेस इलाहाबाद चतुर्थ सं0

62.	आधुनिक कवि भाग-1	महादेवी वर्मा	साहित्य सम्मेलन प्रयाग आठवां सं0
63.	दीपशिखा	महादेवी वर्मा	भारती भण्डार इलाहाबाद चतुर्थ सं0
64.	नीहार	महादेवी वर्मा	भारती भंडार प्रयाग प्रथम सं0
65.	नीरजा	महादेवी वर्मा	भारती भंडार प्रयाग द्वितीय सं0
66.	पथ के साथी	महादेवी वर्मा	भारती भंडार प्रयाग प्रथम सं0
67.	यामा	महादेवी वर्मा	भारती भडार इलाहाबाद चतुर्थ सं0
68.	रश्मि	महादेवी वर्मा	साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद चतुर्थ सं0
69.	सन्धिनी	महादेवी वर्मा	लोकभारती प्र0 इलाहाबाद द्वितीय सं0
70	सप्तपर्णा	महादेवी वर्मा	राजकमल प्र0 दिल्ली द्वितीय सं0
71.	सान्ध्य गीत	महादेवी वर्मा	भारती भंडार प्रयाग द्वितीय सं0
72.	साहित्यकारी की आस्था तथा अन्य निबंध	महादेवी वर्मा	लोकभारती प्र0 इलाहाबाद तृतीय सं0
72	क्षणदा	महादेवी वर्मा	लोकभारती प्र0 इलाहाबाद आठवा स0
73.	आधुनिक कवि	रामकुमार वर्मा	चाँद प्रेस प्रयाग प्रथम सं0
74.	चित्र रेखा	रामकुमार वर्मा	चाँद प्रेस प्रयाग प्रथम सं0
75.	रूपराशि	रामकुमार वर्मा	चाँद प्रेस प्रयाग प्रथम स0
76.	अर्न्तजगत्	लक्ष्मी नारायण मिश्र	
77.	कलापी	आरसी प्रसाद सिंह	ग्रथ माला कार्यालय पटना प्रथम सं0
78.	हिम किरीटिनी	माखन लाल चतुर्वेदी	सरस्वती प्रेस प्रयाग 19 सं0
79	हिम तरंगिणी	माखन लाल चतुर्वेदी	भारती भंडार लीडर प्रेस प्रयाग
80.	एक तारा	मोहन लाल महतो "वियोगी"	हिन्दी पुस्तक भंडार लहेरियासरायं प्रथम सं0
81.	क्वासि	बालकृष्ण शर्मा "नवीन"	भारती भण्डार प्रयाग प्रथम स0
82	फ्लाश वन	नरेन्द्र शर्मा	भारती भण्डार प्रयाग प्रथम स0

आलोचनात्मक ग्रन्थ

क्रम	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1·	अभिनन्दन ग्रन्थ	विश्वम्भर मानव	किताब महल इलाहाबाद द्वितीय स0
2·	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आलोचना	डॉ0 राम विलास शर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली चतुर्थ सं0
3·	आस्था के चरण	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं0
4·	आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियां	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली तृतीय स0
4	आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प	डॉ0 मोहन अवस्थी	हिन्दी परिषद प्रकाशन हिन्दी विभाग विश्वविद्यालय प्रयाग, प्रथम सं0
5·	आधुनिक काव्य रचना और विचार	नन्ददुलारे बाजपेयी	35 साथी प्रकाशन आगरा, प्रथम सं0
7·	आधुनिक साहित्य	नंद दुलारे बाजपेयी	भारती भंडार इलाहाबाद चतुर्थ सं0
8·	आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान	केदार नाथ सिंह	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0
9·	आधुनिक साहित्य सृजन और समीक्षा	नन्ददुलारे बाजपेयी	प्र-दि मैक मिलन कंपनी आफ इंडिया लि0 प्रथम सं0
10·	आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत	डॉ0 सुरेश चन्द्र गुप्त	हिन्दी सा0सं0 दिल्ली, प्रथम सं0
11·	आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना	डॉ0 पुत्तू लाल शुक्ल	लखनऊ वि0वि0 2094 वि0
12·	कवि प्रसाद की काव्य साधना,	रामनाथ सुमन	छात्र हितकारी पुस्तक माला प्रयाग प्रथम स0
13·	कवि निराला	नंददुलारे बाजपेयी	वाणी वितान ब्रह्मनाल वाराणसी प्रथम स0
14·	कविता के नये प्रतिमान	डॉ0 नामवर सिंह	राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0
15·	काव्य का स्वरूप	सचदेव चौधरी	
16·	कवियत्री महादेवी वर्मा	शोभनाथ यादव	बोरा एण्ड कं0, बम्बई प्रथम सं0
17·	काव्य का देवता निराला	विश्वम्भर मानव	लोकभारती प्र0 इलाहाबाद द्वि0 सं0
18·	काव्य [illegible]	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं0

19·	चिन्तामणि	रामचन्द्र शुक्ल	इंडियन प्रेस प्रा0 लि0 प्रथम सं0
20	छायावाद	डॉ0 नामवर सिंह	राजकमल प्र0 प्रा0 लि0 नई दिल्ली चतुर्थ सं0
21·	छायावाद का पतन	डॉ0 देवराज	वाणी मंदिर प्रेस छपरा, प्रथम सं0
22·	छायावादी कवियों में सौन्दर्य चेतना	डॉ0 कृष्ण बिहारी मिश्र	प्रगति प्र0 आगरा प्रथम स0
23·	छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन	डॉ0 सुरेश चन्द्र त्यागी	अनुराधा प्र0 मेरठ प्रथम सं0
24·	छायावाद युग	शम्भूनाथ सिंह	सरस्वती मंदिर वाराणसी द्वितीय सं0
25·	छायावादोत्तर काव्य	सिद्धेश्वर प्रसाद	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं0
26·	छायावादी कवियों का आलोचना साहित्य	शीला व्यास	हिन्दी प्रचारक सस्थान पिशाच मोचन वाराणसी प्रथम सं0
27·	छायावाद और वैदिक दर्शन	प्रेम प्रकाश रस्तोगी	आदर्श साहित्य प्रकाशन दिल्ली प्रथम स0
28·	छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन	दीनानाथ शरण	नवयुग ग्रंथाकार लखनऊ प्रथम सं0
29·	छायावादी काव्य और निराला	डॉ0 शान्ति श्रीवास्तव	ग्रन्थम रामबाग, कानपुर प्रथम सं0
30·	छायावाद में आत्माभिव्यक्ति	डॉ0 शशि मुदीराज	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
31	छायावाद की समाजशास्त्र	डॉ0 शशि मुदीराज	परिमल प्रकाशन इलाहाबाद 1988 प्रथम सं0
32·	छायावाद का पुनर्मूल्यांकन	राम दरश मिश्र	
33·	छायावाद की प्रासंगिकता	रमेश चन्द्र शाह	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0
34	छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन	कुमार विमल	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
35·	छायावादी कवियों मे लोक मंगल की भावना	डॉ0 अम्बादत्त पाण्डेय	प्रेम प्रकाशन मंदिर दिल्ली प्रथम सं0
36·	जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला सौन्दर्य	रामेश्वर खण्डेलवाल	नेशनल पब्लिशिग हाउस दिल्ली प्रथम स0
37·	जयशंकर प्रसाद	रमेश चन्द्र शाह	साहित्य अकादमी दिल्ली प्रथम सं0
38·	जयशंकर प्रसाद	नन्द दुलारे बाजपेयी	भारती भण्डार इलाहाबाद प्रथम सं0

39·	देव और बिहारी	कृष्ण बिहारी मिश्र	गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ
40·	निराला व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व	डॉ0 एस0 एन0 गणेश	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
41·	निराला: व्यक्ति व और कृतित्त्व	डॉ0 प्रेम नारायण टण्डन	हिन्दी साहित्य भंडार लखनऊ प्रथम सं0
42·	निराला काव्य पर बंगला का प्रभाव	इन्द्रनाथ चौधरी	राजकमल प्रकाशन प्रथम सं0
43·	निराला काव्य और व्यक्तित्त्व	धनजंय वर्मा	विद्या प्रकाशन मंदिर दिल्ली 1960
44·	पंत का काव्य और छायावाद	यशदेव शैल्य	किताब महल प्रकाशन प्रथम सं0
45·	प्रगतिवाद	शिवदान सिंह "चौहान"	प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद प्र0सं0
46·	प्रसाद का काव्य	डॉ0 प्रेमशंकर	भारती भडार लीडर प्रेस इलाहाबाद पांचवा सं0
47·	प्रसाद की कला	गुलाब राय	सा0र0मं0, आगरा, प्रथम स0
48·	पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त	दिनकर	
49·	पत साहित्य आत्मकथात्मक परिदृश्य	डॉ0 निर्मल खत्री	राष्ट्रभाषा प्रकाशन प्रथम सं0
50·	प्रबन्ध पद्म	गंगाधर पाण्डेय	गगा पुस्तक माला लखनऊ, प्रथम सं0
51·	पुष्करिणी	ले0स0ही0 अज्ञेय	साहित्य सदन चिरगाव झासी प्रथम सं0
52·	बिहारी सतसई तुलनात्मक अध्ययन	पद्म सिंह शर्मा पंडित	ज्ञानदीप प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0
53·	बालमुकुंद गुप्त निबंधावली	बालमुकुंद गुप्त	गुप्त स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन
54·	भाषा और संवेदना	रामस्वरूप चतुर्वेदी	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन कलकत्ता प्रथम स0
55	भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिह	श्यामा प्रकाशन संस्थान इलाहाबाद प्रथम सं0
56·	भरत और भारतीय नाट्य कला	डॉ0 सुरेन्द्रनाथ दीक्षित	राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0

57·	महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग	डॉ0 उदय भान सिंह	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
58·	महाप्राण : निराला	गंगाप्रसाद पाण्डेय	साहित्यकार सं0, प्रयाग
59	महादेवी	इन्द्रनाथ मदान	राधाकृष्ण प्र0 दिल्ली तृतीय स0
60	महादेवी की रचना प्रक्रिया	कृष्णदत्त पालीवाल	पूर्वोदय प्रकाशन दिल्ली, प्रथम सं
61·	रस सिद्धांत और सौन्दर्यशास्त्र	डॉ0 निर्मला जैन	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दि प्रथम स0
62·	रामचरित मानस	तुलसीदास	गीता प्रेस गोरखपुर 88वां सं0
63·	राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध	नन्द दुलारे बाजपेयी	विद्या मंदिर ब्रह्मनाल वाराणसी, प्रथम सं0
64	रीति विज्ञान	विद्या निवास मिश्र	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रथम सं0
65·	रोमांटिक साहित्यशास्त्र	डॉ0 देवराज उपाध्याय	
66·	विचार और अनुभूति	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली द्वितीय सं0
67·	विवेकानन्द चरित	डॉ0 सत्येन्द्रनाथ मजूमदार	आत्मा0 सं0स0 1948 ई0
68·	विश्व प्रपंच	रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा 1977 स0
69·	विक्रमांक देव चरित चर्चा	महावीर प्रसाद	इंडियन प्रेस प्रयाग प्रथम सं0
70·	व्यक्ति विवेक	रेवा प्रसाद त्रिपाठी	लोकभारती प्रकाशन प्रथम सं0
71·	सुमित्रा नन्दन पंत	डॉ0 नगेन्द्र	साहित्य रत्न भंडार आगरा नवम सं0
72·	साहित्य चिंतन	रामकुमार वर्मा	किताब महल प्रथम सं0
73·	साहित्य की मान्यताएं	भगवतीचरण वर्मा	हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद प्रथम स0
74·	सुमित्रानंदन पंत	डॉ0 रामजी पाण्डेय	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं0
75·	सूरदास	रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रथम सं0
76·	संस्कृति और साहित्य	रामविलास शर्मा	किताब महल इलाहाबाद द्वितीय सं0
77·	सुमित्रानंदन पंत तथा आधुनिक कविता में परम्परा और नवीनता	डॉ0 ई0 पेलिशेव	राजकमल प्रकाशन, प्रथम सं0

78·	सुमित्रानंदन पंत जीवन और साहित्य	शान्ति जोशी	राजकमल प्रकाशन प्रथम स0
79	सुमित्रानंदन पंत	राम रतन भटनागर	स्मृति प्रकाशन महाजनी टोला प्रयाग प्रथम सं0
80·	साहित्य का इतिहास का दर्शन	नलिन विलोचन शर्मा	विहार राष्ट्र भाषा परिषद पटना प्रथम सं0
81·	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ0 नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिग हाउस दरियागंज दिल्ली, सं0 1987
82·	हिन्दी साहित्य का इतिहास	रामचन्द्र शुक्ल	काशी नागरी प्रचारिणी सभा प्रथम सं0
83·	हिन्दी आलोचना बीसवीं सदी	डॉ0 निर्मला जैन	नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्रथम सं0
84·	हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी	नन्ददुलारे बाजपेयी	हिन्दी साहितय सम्मेलन प्रयाग प्रथम स0
85·	हिन्दी के आलोचक	शचीरानी गुर्टू	आत्माराम एण्ड सस दिल्ली द्वि0 सं0
86·	हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य	प्रेम शंकर	भारती भण्डार, इलाहाबाद, प्र0सं0
87·	हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी	नन्ददुलारे बाजपेयी	लोकभारती प्र0 इलाहाबाद प्रथम सं0
88	हिन्दी आलोचना का इतिहास	डॉ0 रामदरश मिश्र	काशी हिन्दू वि0वि0 वाराणसी प्रथम सं0
89	हिन्दी साहित्य	श्यामसुन्दर दास	काशी नागरी प्रचारिणी सभा नवम0सं0
90·	हिन्दी आलोचना	डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी	राजकमल प्र0 दिल्ली प्रथम सं0
91	संक्षिप्त हिन्दी नवरत्न	मिश्र बन्धु	गंगा पुस्तक भण्डार लखनऊ पथम स0

---000---

संस्कृत-ग्रन्थ

1·	ऋग्वेद	गीताप्रेस गोरखपुर	सं0 डॉ0 हरिदत्त शास्त्री	
2·	काव्यालंकार	भाम	मोती लाल बनारसी दास प्र(	सं0 तृतीय 1990
3·	काव्यालंकार	सूत्र, वामन	चौखम्बा सीरीज वाराणसी	व्या0 विश्वेश्वर
4	काव्यादर्श	दण्डी	चौखम्बा सीरीज वाराणसी	व्या0 रामचन्द्र मिश्र तृतीय
5	गीता		गीता प्रेस गोरखपुर	88वां संस्करण
6·	ध्वन्यालोक आनन्दवर्धनाचार्य		राम नरायण लाल बेनीमाधाव प्र0 इलाहाबाद	तृतीय सं0 1987
7·	नाट्यशास्त्र	भरतेन	विद्या विलास प्रेस	सं0 1929
8·	मनुस्मृति	छविनाथ राय	हिन्दी पुस्तकालय मथुरा	प्रथम सं0
9·	महाभारत	व्या	गीता प्रेस गोरखपुर	तृतीय सं0
10·	यजुर्वेद	जय॰ शर्मा	आर्य सा0 मण्डल लि0, अजमेर	
11·	वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तक डॉ0राधेश्याम मिश्र §व्याख्या§	चौखम्भा सीरीज वाराणसी	

पत्र-पत्रिकाएँ

1· आलोचना
2· श्री शारदा
3· माधुरी
4· समालोचना
5· नवभारत-टाइम्स
6· श्री सम्मेलन
7· इन्दु